ॐ

नवेदवेदं नसवेदसवेद्यं सर्वं वेदवेद्यं किलवेदवेदम् ।
वभौच वेदात्सकलं जगद्गतं भविष्यदृश्तिस्फुट मन्त्रतन्मतम् ॥ १ ॥

रहस्य लवलहरी प्रथम भाग

याने

ईशावास्योपनिषत् की मतप्रदर्शनी

॥ संस्कृत और भाषा टीका ॥

जिस में कणाद, गौत्तम, न्याय, सांख्य, योग, विज्ञान-भिक्षु, २ शङ्करा चार्य, मीमांसक, माध्व, रामानुज, वल्लभ, भट्टभास्कर, निम्बादित्य, पाशुपत, शैव, माहेश्वर, शाक्त, साहित्य, शांभव, दयानन्द, समीक्षक, मतसे जुदा २ अर्थ हरिदत्त शर्मा त्रिवेदी ने मन्त्राक्षरों से निकाले हैं दयानन्द समीक्षा का भी मन्त्रार्थ जुदा है ?

रहस्यलहरी सिद्धान्त निर्विशेष पर्यवसायि शुद्धाद्वितीय

आखिर समीक्षा मत का अर्थ है

जिस को

ला० जीवनमल्लने शीघ्रता होनेसे नेशनलप्रेस अमृतसर
में बाबु हरजी राम के प्रबन्ध से प्रकाशित कराया

प्रथम बार १००० सं० १९७२ मूल्य इशतार में दिया है

ॐ श्रीशो विजयते तराम्

स्पन्द मानजगत्सर्वं मिथ्या कल्पै कसंश्रये संविद्रूपेपरे
शम्भौ भैरवेसर्वगेरतिः

प्रायो दृश्यते हिवादिनां सत्य प्यास्तिक मतश्रद्धादार्ढ्यं
सर्वेषांचर्त्तज्ञाना न्मुक्तिरिति सिद्धान्ते परस्परमत विद्वेषोना
नाविधकुपथकुलकं मर्कट परिभ्रंशित सुमतिल तानवलम्ब मानम्
ुचेत स्थितिरिति नात्रकारणं वेदार्थानव बोधरूपमन्तरान्यतसं
भावयितुं शक्यते यद्यपिशाक्तशैवसौर माध्वरामानुज निम्बा
र्कहृदयवल्लभशाङ्करभाष्याणिसमुपलभ्यन्तेशारीरकसूत्रेषुउपनिषद्धी
तासुचनितरांशङ्करादे रसिततमांसुभावितं भाष्यं तथापिमतान्त-

ॐ श्रीशो विजयते तराम्

स्पन्द मात्र जामें जगत् मिथ्या कल्पन मात्र संविद्रूपसदा
शिव वह हरि भैरव मेरा मित्र ॥

धर्म व मोक्ष इन्हीं को परम पुरुषार्थ सब लोग मानते हैं
उन्हीं के साधन के लिये सब शास्त्रकार प्रवृत्त हुए हैं अर्थ काम
तो धर्म कोटि में रहकर रखना यही शास्त्र कारों का सिद्धान्त
है इसी लिये सब आचार्य आस्तिक मत पै श्रद्धा रखकर उसी
के संपादनके लिये धर्ममोक्षके कारण को ढूंढने लगे जिसमें वेदमें
मोक्ष का हेतु ज्ञान ही है यह आस्तिकों का परम सिद्धान्त है
तो भी वह ज्ञान भक्ति का ही नाम है या और इसी संदेह से
नाना प्रकारों के मत परस्पर द्वेश से बढ़ गये परन्तु ठीक वेद

राणिसमुपलभ्यबहुभेदेनप्रतीयमानानिवेद प्रामाणिकानामेवै-
ति खेद खिन्नेन मुझलिस्थकरपाशकपायाशितम् इतिअनुपलभ्य
मानशाङ्करेतर मतानुसारि प्रक्यार्थ प्रदर्शन पूर्वकं सर्व वादिनां तात्पर्यभूतार्थस्य प्रदर्शनेनचशाङ्करस्ययथाभाष्यलेखं तद-
र्थव्याख्यानेनचसर्वे वामतप्रदर्शिनीनामटीका सिद्धान्त रहस्यल-
वलहरीत्यभिधावितन्यते नहिशास्त्राणां भेदएवमतानां तात्पर्य
मिति साधोयस्तरचरम् सर्वैरेव वेदानुयायित्वस्वपक्ष सिद्धान्त
त्ववेदतात्पर्यज्ञान प्रयोज्य फल प्रयोज कत्वैः स्वस्वमतस्योरी
कृतत्वात् यद्यपिप्रतितन्त्रसिद्धान्त श्सर्वतन्त्र सिद्धान्तोऽधिकरण
सिद्धान्तो भ्युपगम सिद्धान्त श्चेति चतुर्धागोतमेनमुनिनानानि
सिद्धान्त स्तथापिस्वस्वसिद्धान्त स्यसर्वतन्त्र सिद्धान्तत्वस्वीकारे
वेदतात्पर्य विषयत्वे चाभ्युपगते सर्वेषा मेकत्र सिद्धान्त वस्तुनि

के अर्थ का निष्पक्ष निर्धारण न होना यही एक इन के संदेह वा
विरोधका मूल कारण है यद्यपि ब्रह्मसूत्र(जो कि वेदों केउपनि-
षत्काण्ड के तत्व का प्रधानतयानिर्णय ही के लिये व्यास जी
ने निर्माणकिया) पर शैवशाक्त और माध्व रामानुज निम्बादित्य
वल्लभ शाङ्कर इत्यादि बहुत से भाष्य मिल रहे हैं।

परन्तु ब्रह्मसूत्र गीता उपनिषत् इन में एक शंकराचार्य
ही का भाष्य मिल रहा है तीनो प्रस्थानो में और किसी आचार्य
का भाष्य नहीं मिलता इस में शङ्कराचार्य से अन्य मत
वालों को वेद प्रमाण की न्यूनता आपादन कर सकते हैं तोभी
उन के आचार्य ग्रन्थों को देखने वाले निष्पक्ष यह सभी मत वेद
वादियों के वेद प्रमाण से पुष्ट हैं यही निर्णय करते हैं परन्तु
तत्तन्मत क अनुकूल वेदार्थ का निर्णय होकर सभ का विरोध

विकल्पासंभवात् समुच्चयस्य विरुद्धत्वात् भाष्यवद्द्वयपूर्वोत्तरक्रम भेदेनपक्षकोषावतरणन्यायेनहेयोपादेयोपदेश विवेकैर्हैयंपरिहाय सर्वैषांयत्र तात्पर्यं सएवसर्वतन्त्र सिद्धान्त इतिबाढतरमृततश्चतद नुसारित तत्सिद्धान्त भेदप्रतितन्त्र सिद्धान्त रीत्याशाङ्करभाष्य व्याख्याने नसहव्याख्यायो पनिषदः सकलविवेचनेनहेयं प्रति-तन्त्रसिद्धान्त भेदांशमभ्युपग सिद्धान्तत्वेन अन्या चायसम्मत मितियथा स्थलं प्रदर्श्यो पायं सर्वतन्त्र सिद्धान्त तत्वमेकम वि-कल्पितं संक्षिप्य प्रदर्शयितु मुपक्रम्यते तत्रयजुषः सर्वयज्ञ प्रवृत्ति मूलत्वेन यज्ञस्यमात्रां विमिमीते उत्वइतिश्रचाप्रदर्शि तत्वेना भ्यर्हि तत्वात्तदी योपनि षत्प्रथमं व्याख्यायते, अभ्यर्हित वेदांश त्वेनांशि वृतिधर्माक्रान्तत्वात्

हटकर जिस से संदेह रहित यथार्थ बेदार्थ का निर्णय होना बगैर सभ मतानुसारी टीका के नहीं हो सकता इस लिये मैंने वैशेषिक गौतम, मिश्रित प्राचीन तार्किक, नवीनतार्किक, दया-नन्दि, सांख्य, विज्ञान भिक्षु, योग, मीमांसक, शङ्कर, माध्व, रामानुज, भट्टभास्कर, निम्बादित्य, वल्लभ, नकुलीश, पाशुपत, माहेश्वर प्रत्यभिज्ञादार्शनिकशांभव, शाक्त, साहित्य, मतों के तत्व को पकड़ कर सरल संस्कृत में ही भाष्य पहले ईशावास्य में किया जिस में शङ्कराचार्य का भाष्य यथावत् अक्षर वैसे ही लिख कर उसकी आनन्द गिरि से विलक्षण पक्षपात रहित टीका भी की है और अन्त में सभ आचार्यों के मतों की समीक्षा कर जिस में सभ के अविरुद्ध एक तात्पर्य का निर्णय हो ऐसा समीक्षक मत का अर्थ भी लिखा है दयानन्द के मत की साथर भी समीक्षा की है दयानन्द अपनी बनाई यजुर्वेद भाष्य के

ईशोपनिशत् की टीका का इस में अक्षर २ लेख नहीं किया क्यों कि किसी मत प्रवर्त्तक के अक्षर लिखकर अगर खण्डन किया जाय या समीक्षा से तत्व ही पकडा जाय तो उसके मतावलम्बि द्वेष कर जाते हैं और मेरा तो विरोध हटाकर शास्त्र तत्व बताना इसी में तात्पर्य है इस से तत्व मात्र सभ मतों का ग्रहण कर केवल अपनी ही बुद्धि से अर्थ किये हैं शाङ्कर मत प्रायो मेरे मतसे मिलताहै इसलिये सकलशास्त्र अविरुद्ध उसकी टीका ही की गई है आनंद गिरि टीका में गृहस्थ धर्म शास्त्रादि व्यवस्था और स्मृत्यन का शदोष प्रसङ्ग इति चेन्नान्य स्मृत्यनव का शदोष प्रसंगात् । ३ । १ । १ । इस सूत्र के शाङ्कर भाष्यके अनुसार सभ स्मृति के अविरुद्ध अर्थ नहीं होसकता वहभी कहीं कहीं जहां शाङ्कर के अक्षरों पै संन्यास के पक्षपात का भ्रम पड़ता है वहां समीक्षा से दिखाया है परन्तु संस्कृत भाषा अति सरल होने पर भी सभ मनुष्य को जो संस्कृत से परिचय नहीं रखते हैं लाभ होना कठिन है इस लिये उस संस्कृत की क्रम से ही भाषा इस में लिखी जाती है निर्मत्सरलोग इसे निष्पक्ष होकर देखेंगे और जिस २ मत की टीका है उस २ मत में कैसे पक्के होकर बताई है ऐसा देख ग्रन्थ कर्त्ता की निष्पक्षता निर्मत्सरता की ओर ध्यान देते हुवे समीक्षा बिनासिद्धान्त एक नहीं हो सकता और वेदान्त सिद्धान्त एक वस्तु विकल्प समुच्चय विरुद्ध होने से संभव नहीं इस लिये गौतमके दिखाए सर्वतन्त्रा विरुद्धसिद्धान्त भेद की उपपत्ति प्रति तन्त्र सिद्धान्त को अभ्युपगम वाद में रखकर हेयोपादेयांश विवेक से जो वहां समीक्षा है उस समीक्षाकी ओर जरूर दत्तचित्त होंगे ॥

आशाकर्त्ता—हरिदत्त त्रिवेदी

तदस्याः प्रथमामन्त्रः

ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किं चिज्जगत्यां जगत् तेनत्यक्ते नभुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् १

ईशावास्यो पनिषत (जिस की व्याख्या कर ते हैं) उस का पहला मन्त्र यह है ।

ईशेति तार्किकाणां वैशेषिकाभेदञ्जीवेशयोरभ्यु— पगम्येशं सर्वव्यापक निराकारं जीवादृष्टवशेन कदाचि त्स्वीकृता कारं दुःखसुखादि जन्य गुणरहितं स्वीकुर्वते प्राञ्चोनित्येच्छा- कृतिजा तानियथा समयभाविकार्यं विषयाणि महेश्वरस्यचिकीर्षा वशादित्यादिसृष्टिसंहारविध्यु पदेशपर गौतम भाष्येणस्फुटतया प्रतीयतएवैषो र्वानव्यस्तु नि त्यसुखमीश्वरस्ये च्छन्ति सत्यज्ञा मानन्द मितिश्रुतावानन्द पदस्यानन्द वदर्थ मूरीकृतवन्तः तन्मतेनात्रोम प्रथममर्थः

वैशेषिक मत में जीव और ईश्वर भिन्न२ माने जाते हैं और दोनों सर्व व्यापक और निराकार माने जाते हैं जीव अपने अदृष्ट से बने शरीर के संबन्ध से सुख दुःख भोगता है ईश्वर भी कभी सब जीवों के मिले हुए अदृष्ट से शरीर संबन्ध रूप अवतार लेकर मनुष्यों को उपदेश व उन के दुःख का उद्धार करता है परन्तु स्वयं जन्य सुख दुःखादि स्वाभाविक गुण जीव की तरह नहीं यह प्राचीन लोग औरउन के अनुगामी कहतेहैं नूतन सुख भी उस का नित्य स्वाभाविक मानतेहैं इसी में सत्यं ज्ञान मान-

ईशेन सर्वमिदं जगत् इत्यादृश्य भेदेनद्विधा नित्यकार्या त्मकमआ वास्यम् व्याप्तं व्याप्ति शास्यसर्व मूर्त्त संयोगलक्षणा वैशेषिके भाष्ये विभूनां संयोगस्य युतसिद्धयो:संयोग इतिवदलानिषे धेनाकाशादिभि:संयोगानङ्गीकारात रत्नकोषकृता नित्य संयोगो विभूनाम पिस्वी कृत इतिन्तामणि किरणा वल्यादि ग्रन्थजातै: प्रतीयते भाष्य विरुद्धत्वेन,मुन्यसंम तत्वात्संयोगस्यक्रि याजन्य

न्दं ब्रह्म इस जगह आनंद पदका आनंद वाला यह अर्थ कहा है इसी अनुसार पहले वैशेषिक मत से अर्थ करते हैं।

ईशा ईशने दृष्य महाभूत पृथिव्यादि द्यणु कादि ब्रह्मा ण्डान्त अनित्य और दृश्य परमाणवाका शादि नित्य यह जो कुछ जगती(ब्रह्माण्ड त्रिलोकी) में जगत् वह सभी व्याप्त है व्याप्ति सब मूर्त्त यानि परिच्छिन्न द्रव्यों के साथ संयोग का नामहै काला काशादिक जीव परमात्मा रूप अपरिच्छिन्न द्रव्योंका पर स्पर(आपस में)संयोग वैशेषिक मतमें निषेध किया है रत्न कोष कार विभु द्रव्यों का नित्य संयोग मानते हैं परन्तु वह भाष्य और युक्ति विरुद्ध होने से चिन्ता मणिकार गंगेशोपाध्यायादि कों ने खण्डन कियाहुवा है संयोगक्रिया हीसे पैदा होताहै अपरि छिन्नआकाशादिकों का क्रिया नहोने से संयोग होना दुर्घट है आकाश वत्सर्वगत श्चनित्य इस श्रुति से आकाशऔर परमात्मा दोनो सर्व संयुक्त हुए तो चलेंगे वहां चलना ही क्रिया है चलना त्मकं कर्म वैं सूत्र है क्रिया नहो तो संयोग कैसे हो सकता है इस लिये परिच्छिन्न घटादिपार्थि ववाम लीय तैजस वाय वीय पदार्थों के और मन के साथ संयोग का नाम ही वैशेषिक मत में व्यापकत्व है श्रुति का तात्पर्य यह हुआ कि जगदीश्वर सब

त्वस्यान्वय व्यतिरेकसहचारेणाव धारणा त्संयोग त्वक्रियाजन्य त्वयोव्यो प्तिलाभेनक्रिया जन्यत्वविशेषणव्यापके मविभुत्वं योग त्वाभावाव धारणा त्वीपसिद्धान्तो नातो बसंमतइत्यु पेक्ष्यते सहि गदीशः सर्वसंयुक्तो ऽयंस्वसंयोगेण जी वादृष्ट सहायेन स्वस्वादृष्टव दात्म संयोगासमवायिकारण क्रियां मुत्पाद्य स्वस्वकार्येण तत्तदु पभोगक्षमां संपादय तीती भावः किंभूतजगत् यत्किंचित्जग त्यासंसारे प्राय मात्रं किंचत्

क्रिया वाले द्रव्यों के साथ संयुक्त होकर वैसे संयुक्त जीव के अदृष्टों को सहाय लेकर उस में क्रिया को पैदा कर द्रव्यान्तर अवयवि जीव के उस २ अदृष्ट के भोग के लायक बना देता है फिर उसके साथ भी संयुक्त रहता है अर्थात् इसीकार्य रूप संसार के भोग के लिये उत्पन्न करने वाला अदृष्टों का नि यामक फल दाता निमित्तकारण कर्त्ता कार्यं सकर्तृकं कार्य त्वात् घटादिवत् इस अनुमान से माना जाता है इस लिये कुसुमाञ्जलि में उदय नाचार्य ने लिखा है कर्त्ता रूप से कार्य संसार के पैदा करने वाला और उस के लिये सृष्टिपूर्व क्रिया करने वाला तारा आदि का धारण करने वाला वेदवाक्यों का उच्चरण करनेवाला सृष्टि के नाश करने वाला सब व्यवहारों का पहले पहल बताने वाला वेद के यथार्थ ज्ञान का हेतु यथार्थ कहना वगैरह प्रामाण्य रखने वाला द्व्यणुकादि अदृश्य पदार्थों की सृष्टि के आदि द्वित्वादि संख्या के कारण अपेक्षा बुद्धि करने वाला इनकी उत्पत्ति के लिये ईश्वर मान जाना चाहिये। यहां मन्त्र में सर्वशब्दसें कार्य मात्र में करता होकर संयुक्त है ऐसी व्याप्ति ताई यत्किंचित इस पद से एक २ विशेष कार्य व्यक्ति के साथ

पदव्यहाव्यवर्यर्यताव तात एवतकार्यसमतापीतितेनैंवहिसंसारिक दृश्य कार्य जाते ना कारण केणव लत्संयोगिनि मित्तभूत ईशो ऽनुमीयते इतिभावः तदुक्तं कुसमाञ्जलौ कार्यायो जनधृत्यादे पदात्प्रत्ययतः श्रुतेवाक्या त्संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वजिद व्यय इति अत्र सर्वं मिति शब्देनकार्यत्वव्याप्तिरी शानुमाहेतुः कर्तृकारण जन्यत्वेन प्रदर्शिता यत्किं चित् इति तद्रू पेण

इलहदा २ संयोग विशेष रूप विशेष व्याप्ति बताई इस से ईश्वर साधारण कारण और किसी विलक्षण अङ्कुर अपूर्वावतार वगैर ह विशेष कार्य के लिये साधारण कारण किसी २ पुण्या पुण्य के फल लिये बताया है

अथवा इदम् इस समक्ष वाचि शब्द से प्रत्यक्ष जो देखरहे हैं । बताया और, यत्किं चित् से जो कुछ अदृश्य (जोनहीदे-खते) बताया ऐसे विशेषव्याप्ति किसी असाधारण काम के लियेसाधारण व्याप्ति रूपसामान्य संयोग बताया इस परश-ङ्का होती है कि जगत्कर्त्ता को ईश्वर और मन्त्रों में द्यावा भूमिजनयन् देवएक आकाश भूमिवगैरह के पैदा करने वाला एक कोई प्रकाश कस भव्यवहारों का बताने वाला है ।

ऐसे बताया है तो हम उसे क्या करे रहो हे कर्त्ता तो हो इस का उत्तर तेनत्या क्तेन भुञ्जी था

उसके अर्पण करो उपभोग करे अर्थात् जिससे यह तम्हारे बनाये ने साधारण और अपने में असाधारण इस तरह सभ के बनाने वाला है तो वह सभका मालिक है उसकी अपनी जरखरीद है तो तुमअपने साथ भी संयुक्त समक्ष कर उसी के अर्पण करो जैसे और मन्त्र में लिखा है-कोदात्, कस्मा, कालोदाता कामः

प्रतिव्यक्ति संयोगेनविशेषव्य क्तेः क्वाचित्क धनादिज नित योग्यादि संबन्धि विशेष कार्यं सद्भावश्च प्रकटित इति अतएवत त्तद्व्यक्ति विशेषभेदः प्रदर्शितः अथवा इद मिति दृश्यं यत्किं चिदिति अतीन्द्रियं द्व्यणु कादि लक्षणं कार्यं तत्तद्व्यक्तिरूपेण प्रदृश्यंततत्संयुक्तं सर्वं मिति सामान्य व्याप्तिं प्रदर्शयितुं नीश्वरआ- चष्टे वेद भगवान् एतेनकिं ज्ञातमस्मा भिरस्तु ! कश्चनेश्वरः सर्व

निग्रहीता, कौन देता है किसे देताहै कामना को पूरण करता सब काम्य देता है वही कामना को करता हुआ लेता है इसी तरह अर्पण करना चाहिये ।

इसी में दृष्टान्त है कि जैसे अपनीर प्रारब्धके मुताबिक अपने २ पुरुषार्थ से खेती वगैरह व्यवहार करते हैं और उसका फलपाते हैं परन्तु जब तक राजा को मालगुजारी (कर) नदें तब तक उसके उपभोग, स्वीकार के हकदार नही होते और अपना हक्क विना करदिये नही समझते इसी तरह देवता पितर आदि परमात्मा र्पण किये विना अपना हक्क भी न समझकर मौके मौके में नये अन्न होंने से जैसे हवनादि लिखे हैं उसी तरह परमात्मा र्पण पूर्व कही सब वस्तु का उपभोग करो उसमें अर्पण की ऐसी ही भावना है यह सब उसी का है हमभी उसी के हैं जैसे अतीव प्रेम संबन्ध होने से पुत्र पिता का ही आत्मा कहाता है ऐसे हम भी वही हैं जैसे राजा का बेटा राजा ही (प्रिंस) है मागृधः ऐसे परमात्माकी सभी वस्तु होने से लोभ (सब हमारा ही है इस में किसी के अर्पण या किसी को देने की जरूरत नहीं) मत करो इस में कारण कहता है कस्य स्विद्धनम् त्याग अर्थात् जिस मौके अर्पण करोगेतब वह धन कि

कस्तौ द्यावाभूमी अन्यन् देव एक इत्या दी पृसिद्धोमन्त्रान्तरे किं तेन अतआह तेने तित्यक्ते नास्वकीयेमतेनजगतातेनहेतुनावात्य क्तेनममस्वमिति बुध्याकोऽदात् कस्मादास् कामोदाते त्यादि मन्त्रान्तर दर्शितया भुञ्जीथाः जगदितिकर्माध्याहार्यं स्वरवाद्दृष्ट यथेनजनिसमपिराज्ञो भागमपूदाय सस्यादिकार्यं स्वसंपादितम पिनोपभोक्तुं शक्यते तथेश्वरस्वात्करण रूपस्वस्य त्यत्यागेनसम येर नयाक होमदानादिपरत्करं दैवंसंशोध्य तदीयंमिदंतदीयावयं भुञ्जमहितेएवेतितदो परवाद्राजकुमारोराजेति वत्तद्भावनयो पभुञ्जीथा इत्याकृतम् मागृधास्तथासतिलोभं सर्वमस्मदीयं नकस्मै चिद्देय मितिमा कुर्वीथास्त्यागेहिकस्य स्विद्धनंत्या गकाले नकस्यापीत्यर्थःकारण मनतरोत्पत्यभावेनहठादत्यागेनकस्यचिद्धनं स्वंभवति कार्यकर्तुं स्वत्वात् अथवा तरकस्य कर्तुः प्रजायाएवे त्यर्थः कामोदातेति श्रुति रपिकाम्यं सुःखं तद्वन्तभी श्वरमाहनू तनैर्मि त्यसुखस्वीकारात् कामयति कामं साधय तिसएवेशः र-

---

सकातु सारे में से किसी एक का नही होसकता अगर तुम हठ से अर्पणन भी करो तोभी वह वस्तु बनाने वाले (साधारण कारण)राजा की तरह मालिक परमात्माही कीहै तुम्हरेमें स किसी की नहीं अथवा वहधनक अर्थात्—
प्रजापति परमातमा का है कामोदाता श्रुति भी यही कहतीहै काम्य सुःख के देने वाले का नाम कहैं और सुख वाले का नाम भी होता है नवीनतार्किक भी इस लिये नित्य सुख परमा त्मा का गुण मानते हैं और श्रुतियों में भी (रसोवैस)रसंलब्धान न्दीभवति एषवा नन्दयाति,वह आनन्द वालाहैआनन्द कालाभकर आनन्दी कहलाता है जीवों को भी आनन्द देता है

इष्टं ये वायंलब्ध्वानन्दी भवतिएवएवानन्दयालो सिन्धुतेयतस्तु सार्थैवस्वीयकामो युक्त इति तदाशयः १

अथगौतमीयेमते ईश्वरः कारण मितिसू त्रेणप्रदर्शित ईश्वरो जीवा दृष्ट फल दाता तत्कारि त्वादहेतु रितिसूत्रेण प्रदर्शित स्तस्यवात्स्यायनेनभाष्ये नात्मकल्पादन्यः कल्पोऽस्ती त्यारभ्या- ति शययोग संपादित पुण्यमयो जीव विशेष इति प्रदर्शितंस्फुटम्

ऐसा ही लिखा है।

यह वैशेषिक मत से मन्त्र का भावार्थ हुआ १

गौतम मत में ईश्वरः कारणम् सूत्र में बताया हुआ ईश्वर जीवों के अदृष्ट के फल का दाता तत्कारि त्वाद् हेतुः इस सूत्र के वात्स्यायन भाष्य में जीव विशेष बताया है वहां लिखा है नात्मकल्पादन्यः कल्पोऽस्ति जीव वर्ग से और श्रेणि (क्लास) में ईश्वर नहीं किसी योगादि सामर्थ्य से धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य जिस में सब से अधिक होगया है वह अपने योगादि के धर्मादि फल का भोगने वाला सब का मालिक कोई जीव सृष्टि का ईश्वर कहाता है तो उस मत से ईश्वर जो योगादि प्रभावसे सब का मालिक ईश्वर जीव विशेष है उस नेयह सब व्याप्त है।

(व्याप्ति वगैरह पूर्व की तरह समझनी चाहिये) इस लिये उसी योगेश्वर जीवके अर्पण कर उपभोग करो बिना अर्पण के तो तुम्हारा हक्क ही नहीं समझना चाहिये और अर्पण करने पर भी उसी की सब वस्तु है इस से लोभ मत करो यहां कश्यपद से प्रजा पति भी वेही जीव विशेष सृष्टि २ के आदि में होने वाले परमात्मा प्रजा के पालन करने वाले मानने चाहिये परम सृष्टि के आदि जो होचतुर्वदन कहाते हैं और भी

तथा चतन्मतेन ईंशे इति ईट्योगादिसमाधिजनित मिरति शयैश्वर्यं विशिष्टोजीवस्तेने दंसर्वं व्याप्त मित्यर्थोन्य स्सर्वं पूर्ववत् अत्रकस्यचिदिति तत्कल्प भेदेन ब्रह्माणं वेदाद्युप देष्टारंप्रजापतिं निरतिशयैश्वर्यं विशिष्टंजीवमाह कल्पादावस चतुर्वेदनः इद्वत्सरसं वत्सरादिवर्षपञ्चक भेदेनद्वादशगुणि तैर्वत्सरै रुद्रविंशतिविष्णु विंशति ब्रह्मविंशतिभे देनान्योवाकथ्यनी

इद्वत्सर संवत्सर इदावत्सर अनुवत्सर परिवत्सर यह पांचों वर्ष क्रमसे बारह दफा आनेपर ब्रह्मविंशति विष्णुविंशति रुद्रविंशति यह एक सृष्ट्यवान्तर कल्प है इस के मालिक योगेश्वरको भी प्रजा पति व परमात्मा पदवी वात्स्यायन भाष्य मुताबिक होती रहती है योवै ब्रह्माणं इत्यादि श्रुति में ब्रह्मा के बनाने वाला उसी परम सृष्टि के परम आदि योगेश्वर का वर्णनहै ब्रह्मा शब्दसे ये ६ वर्ष के कल्प के स्वामी योगेश्वर भी ले सकते हैं इस श्रुति में यज्ञ में ब्रह्मा ऋत्विक्की तरह प्रजापति मात्र का नाम गौत्तम के मत से समझना चाहिये २ उदयनाचार्य गङ्गेशोपाध्याय चिन्तामणिकार आदि तार्किकोंने न्याय वैशेषिक दोनों एक कर परमात्मा जीव से भिन्न वैशेषिक मत का माना है और जीव समान तन्त्र सिद्धान्त रीति से तुल्य दोनो का है इस लिये वैसा ही माना है जीव विशेष योगेश्वर गौतम का प्रतितन्त्र सिद्धान्त है दोनों की एक वाकयता करने में उन्हों ने उसे अभ्यु पगवाद ठहरा कर त्याग दिया पूर्वोत्तर पक्ष की तरह सबल निर्बलयुक्ति के दो ऋषि मत आजायें तो एक वाकयता करने का यही रास्ता है पूर्व पक्ष हमेशां त्याज्य ही होता है इस लिये इस मंत्र का अर्थ तो वैशेषिक के मत का ही है इन के मत में

धीवृत्तायां विदधाति तस्मै इत्युक्तः कस्यग्रन्देन दरा मर्शयितु युक्त इति विशेषइयान् । २

नूतनैः पुनश्चिन्ताम विकारो दयनाचा रेदि भिरुभयोस्ता किंकयोर्न्यायवैशेषिकयो जीं वोऽपिधिभुरीशोऽपि इति स्वीकृत्यच मानतन्त्र सिद्धान्तं जीवोहीश इति परिहाय प्रति तन्त्र सिद्धान्त त्वेनोरी कृत मप्युप गमधादत्वात् तादृशद्वेयको टीनि

भी समझलेना दुबारह लिखने की आवश्यकता नहीं ३

इन के अनुसारी सनातन लोग जीवादृष्टवश से कृष्णादि अवतार मानते हैं तो उन का तो यही अर्थ है ब्रह्मादि भी उसी के उसी तरह के अवतार होतेहैं ४ दयानन्द के मत मानने वाले परमात्मा का अवतार नही मानते वैशेषिक रीति का परमात्मा जरूर दयानन्द ने भी लिखा है इस से उसके मतसे यहां कस्य का परमात्मा ही अर्थ है दूसरा ब्रह्मा चारों वेद पढे ऋत्विक् का नाम है और अर्थ वैशेषिक से मिल सकता है देवता भी विद्वान् का ही नाम है उस ने विद्वांसो देवाः यह यह शतपथ का इसअंश में प्रमाण दिया है तो उस बात को पढकर ऐसा अर्थ हुआ कि ईश्वर सभ में व्यापक है तो उसी के अर्पण कर उसी के धन्यवाद करते हुए उपभोग करो और उस के अर्पण बिना उपभोग का लाभ मत करो यह धन किसी का नही वही मालिक है अथवा देवता अर्थात् विद्वान् गुरु माता पिता आदिका धन है उन्ही का शेष उपभोग उन की आज्ञा से करो ५

परन्तु यहां इतनी समीक्षा जरूर करनी चाहिये कि विद्वां सो हि देवा के पीछे आने क्या है शतपथ में ही वे देवा

वेश्ये को करवेन विशिषिक बन्मत एवेश्वरोऽस्मामीतिसर्वा
एवतेषामभिमतइति तद्वीत्यैवतद्व्याख्येति बोध्यमुइतत्राविं
षनजीवादृष्ट वशेनापितस्याकारधारणं पूर्योक्यशरीरादिभिः
कृष्णादिभिः पूर्योक्तकैर्हिरण्यगर्भादिभिः सूक्ष्मे ब्रह्मादिभिः
कल्पादौ स्थूलशरीरै मंन्यन्ते तेषान्तुमएवार्थः४आधुनिकाःकेचन
वदंशमुपजीव्यतच्च स्वीकुर्वते स्थूल सूक्ष्मशरीररहि तंतद्गुरु:

मनुष्य देवादेवदेवाश्च विद्वांसो हि देवा ऐसा पाठहै इसका अर्थ है कि दो देवता होते हैं एक तो मर कर मनुष्य देवता बनते हैं उन को सनातन लोग कर्म देवता कहते हैं एक देव देव जो पहले सृष्टि के आदि चतुर्वदनादि हुए जिन्हैं आजान सिद्ध बतलाते हैं देवता मूर्ख कोई नही होता हि शब्दसे एव का अर्थ लिया जाता है उसका अर्थ कि वही और नहीं सो देवा इसके साथ लगता है तो विद्वान् वह होते ही हैं और नहीं जो देव है वही विद्वां सो ही देवा:का अर्थ हुआ विद्वान ही देवताहै यह भी अक्षर का अर्थ तो होता है परन्तु रोटी के वक्त सैन्धव का अर्थ घोड़ा पीछे तो लिखा दो प्रकार के देवता और उस के आगे की पङ्क्ति में ऐसा कैसा लिखा जासकता है मेरी राय में दयानन्द का तात्पर्य यहां विद्वानों के मानने का ही है देवता विलोप का नही सो आगे धीरे धीरे पता लग जायगा मनु में भी देवताओं के नैवेद्य अर्पणादि किये विना खाने में चोर बताया है तैर्दत्तान प्रदायैभ्योयोभुङ्क्तेस्तेनएवसः मनु—
सब वें सनातन वालोंके आजान सिद्ध देवता पूजनादिकर भोग्य भोग करो ऐसा भी अर्थ यह हमारी परीक्षा में आता है ५

ग्राहेर्यत्तेन कश्चीत्स्यश्च विद्वांसोदेवा इत्युक्तदिशा देवपूजनेनस दाक्षयाचन ग्रहण मित्यर्थः संपादयितुं शक्यते ५ विद्वांसोहिदेवा इत्यस्यशतपथे द्वौवैदेवा मनुष्य देवा देव देवाश्चे त्युपक्रम्यश्रेष्ठे देव देवाविद्वांसो हिएवमनूरवा इत्यर्थकत्वलाभात् देव पदेन देवदेवाएव तेद्रष्टा ।

सम्प्रदायैश्चयोयो भुंक्तेस्तेनएवस इतिममुक्तदिशा व्यासोक्तेन मपूती केनहिम इत्यारभ्य पूतीकेन मूर्ति लिङ्गादि रूपेणोपास्य देवनैवेद्यं कृत्वाभुञ्जीथा व्यानादि मतितद्र्थं स्वीकारोऽस्मिन्पद्ये युक्त इति तत्समीसक स्त्वेनवदामः ५

सांख्यमतेपुनः प्रकृति रेवकर्त्री अजामेकांलोहित शुक्ल कृष्णांवह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाःइतिश्रुत्या अनन्तजीवास्तद

सांख्य मत में प्रकृति ही परमात्मा है वह करती है कुछ संसार को अजामेकांलो हित शुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सुरूपाः ऐसा और श्रुति में लिखा है एक नित्य सत्वरजः तमः गुण वाली प्रकृति अपने जैसी विचित्र सृष्टि को पैदा करती है और जीव बहुत से असङ्ग निर्धर्म कूटस्थ नित्य अनेक मानेहैं और तीसरा कोई चेतन कर्ता परमात्मा नहीं माना तो प्रकृति को ही परमात्मा ब्रह्म ऐसा कहना चाहिये वहो चेतन पुरुषके संबन्ध सामीप्य रूपसे रागादि अनुसार अन्तःकरणरूप से परि-णाम को पाकर अपने स्वरूप पर भी और भरती के लिये ठहरी हुई अन्तःकरणप्रति विम्ब से चेतन हुई स्वयंबनातीहै जीवकोभी बद्धकहा देतीहैं आप मुक्त हुई मुक्तकहादेतीहै इनके मतमें बन्ध मोक्ष प्रकृति का मुख्य है जैसे राजा को कैद कर देने पर जीत होती है प्रजा भी कैद करने वाले राजा की होजाती है

यतोनेश्वरश्चेतनः किंतु प्रकृतिरेवजडा ईश्वरत्वेनसंमतासकलजीवैः स्वीय संयोगेन प्रतिबिम्बभूतेषुस्वीयान्तःकरणेषुतवृत्तिधर्माशयादि वशेनरागा दिवशान् जीवान् कुर्वन्तीवतद्धतःप्रकृतिरव इहभूदिति तदर्थ संपादन समर्थ स्वादि लक्षणे सर्वदतीतयाःस्वरजंस्तमो रूपया व्याप्त मिदंसर्व जगत् कारण त्वेनानु मातव्या प्रकृति रेवेत्याशयः स्वार्थ परार्थरूप प्रयोज कान्त राभावेना संङ्ग

और छोड़ देने पर पूजा फिर छुटे हुए ही की मानी जाती है मुख्य बन्ध मोक्ष राजा कोहै इसी तरह प्रकृति जीवों का मालिक परमात्मा स्वतन्त्र है वही यहां ईश पदका अर्थ हुआ उस ने यह सारा जगत् व्याप्तहै पुरुषोंके साथ उसकास्वाम्यादि तादर्थ्यादि संबन्ध है और सभ के साथ साक्षात् परम्परा से उपादान परि-णाम भाव संबन्ध है सर्व जागत्कारणत्वेन जो तार्किकों के अनुमान हैं वे प्रकृति में ही खतम करने यह इसका अभिप्राय है क्यों कि असङ्ग पुरुष तोकोई भी कर्ता मुख्य नही होसकता और ईश्वर माना जाय तो वैषम्य वैर्घृण्य से करुणा से प्रवृत्त नही कहसकते स्वार्थ तो उस परि पूर्ण का है ही नही प्रवृत्ति स्वार्थकारुण्य के बिना होती नही इस से दयालु प्रकृति जड़ जिसको दोषादि कुछकोई और देने वाला नही वह उपकारिणी स्वाभाविक मोक्ष पर्यन्त प्रवृति शील है उस से अतिरिक्त ईश्वर मानने की जरूरत नहीं यह सांख्य सिद्धान्त हैं जिस से सभ मालिकका होताहै और उपादानके भिन्न कार्य अतिरिक्तनही दिखासकते इसी तरह यह सभ प्रकृति का ही है तो उसी के अर्पण तन्मय देवता मूर्त्तियों का नैवेद्यादि लगा कर उसी को भोग करो यह सभ हमारा ही है ऐसा लोभ मत करो भोग

चितान कर्तृत्वाद् सक्षोयं पुरुष इति प्रति पुरुषा सङ्गत्वश्रुते रीश्वरस्यैकस्य संसर्ग स्यालाभेन चैबैंकाजगदुपादान रूपा कृतृत्वेन निमित्त रूपाचतद्दात्मक मिदंसर्वं कार्यजातम् यतस्त तृवातो गौण वृत्यास्वीयत्वेन मागृधाः किन्तु प्राकृत मितिम त्वात्यक्लेनतम महाभुञ्जीधा स्तन्मते भुक्तिः पुरुषधर्मो यद्यपि बहुनोक्षभो कर्तृत्वाद्यभिमानो गौणोऽपि प्रोकृत एव तथापिस पुरुषो परमात् भुक्तिविम्बत्वेन रूपेण पौरुषीया भुक्तिरितिव्यप दिश्यते तत्रहेतु माहकस्य धनस्वत्वंरागस्य प्राकृति कत्वेनासङ्ग स्यतस्वत्वं कथम पिनभवतीत्यर्थः॥योगस्या पिद्वितीय सांख्य-स्यमतेक्लेश कर्मविपाका शयैरपरामृष्टः पुरुष विशेषईश्वर इति

यद्यपि प्रकृति का ही वृत्ति सुख का अनुभव करना धर्म है तथापि अनुभव रूप चेतन धर्म का प्रति बिम्ब का हेतु बिम्बरूप चेतन पुरुष है इस से भोगांश में चेतन की भुक्ति है इस व्यवहार को सांख्य वाले मुख्य मानते हैं कर्त्ता व्यवहार गौण मानते हैं तो राग भी प्राकृत हैं असङ्ग किसी पुरुष का स्वत्व नही यह कस्व स्वित् का भाव हुआ ६

योग के मत में मुक्त जीव और योगेश्वर जीवों में भी बिलक्षण सर्वज्ञत्व सर्व शक्ति योग आदिधर्म जिस के स्वाभाविक सब से बढ कर हे वह एक सर्वव्यापक परमात्मा माना है क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः अविद्या मिथ्या-ज्ञान अर्थात् देहात्मादि भ्रम अस्मिता तदधीन संस्कार रूप सूक्ष्म दृक्शक्ति पुरुष और दृश्यदर्शन शक्ति बुद्धि का एक स्वरूप राग द्वेष और मोह पांच क्लेश और कर्म विपाक जात्यायुर्भोग रूप अपने२ अदृष्ट का फल और आशयतज्जनित

पातञ्जल सूत्रलक्षित ईदृशेन मुक्त योगि पुरुष विलक्षणेन, स सर्वज्ञ इत्यादि श्रुत्युक्तो निरतिशया कणिमैश्वर्यसमाधि बीजपर्यन्तकाष्ठाभूतेनेदं सर्वं मायामितं स्वरचितं स्वीये नैश्वर्येण सुगन्धितं विचित्ररचना रूपमनसाऽप्य चिन्त्य वैभवमिदं सर्वं तदिय मैश्वर्य मनुमाप यदिवस्थितं तदिदं सर्वं चित्त विक्षेपजनकं 'विषयवत्योवा इतिसूत्रानुसारेण

तद्रसादि विशेष साक्षात्कारादि समाधि परिपाकाभ्यासेनैवत्यक्तेन नेदृश बाह्यविलासेना स्माकं प्रयोजन मिति वैराग्या भ्यासाभ्यां भुञ्जीथाः समाधिसंपाद् नोपभोगसविकल्पा ह्यसानन्दा स्मितादि रूपं कुर्वन्तोऽसंप्रज्ञात समाधि स्थाभवते तिअभ्या सवैराग्याभ्यांतन्निरोध इत्युक्तेः मागृधो बाह्यविषय लोभकषायरसास्वादादिलक्षणं वालोभंमाकुर्वीथाः कस्य स्विद्धनम् कस्यापि प्रतिकुलंवेत्यर्थः ७

विज्ञान भिक्षुस्तु समष्ट्यन्तः करण प्रतिफलितःसमाधि विशेषवान्

संस्कार उनसे रहित पुरुष विशेष ईश्वर ऐसासूत्रमें माना है उस ईश्वर ने संपूर्ण जगत् अपने सेरचकर अपना ऐश्वर्य जो विचित्र सृष्टि उससे सुगन्धित किया अर्थात् यह जगत् उसके सभ से बढ़कर ऐश्वर्य का अनुमान कराता उसकी विभूती रूपस्थित है इस से यह सभ विचित्र होने से चित्त विक्षेप का हेतुहै इस से विषय वतीवा प्रवृत्तिः स्थिति निबन्धनी अर्थात जिसर विषय का ध्यान पाक होगा उस का साक्षात्कार स्थिरता और उस सेवैराग्य का हेतु होगा इस सूत्र के अनुसार समाधि के परि पाक से त्याग करते हुए भुञ्जीथा अर्थात् समाधि के लायक सविकल्पा आनन्द अस्मितादिको भोगते हुए असंप्रज्ञात समाधि के लायक बनो

युत ब्रह्मादिसं ज्ञकस्तत्तद्गुण प्रादुर्भावब्रह्मविष्णु शिवसंज्ञकः स्तस्त्रेत नीलादि रूपःईश्वरस्त्रितय रूपइत्याहतन्मतेनतेनव्याप्तं तदीयमिदंतत्त्व तद्गुण प्रादुर्भावप्रयादि तारतम्य विशेषेणाव नितदीयंत्यक्तेनते नखताभुञ्जीथा माजदीय मिति कस्त्रालो भकुर्वाथाकस्यस्विज्जीश्स्येदंधन मसङ्ग स्त्वाकस्यापीत्यर्थः ८

गुणानां सागुणागुणेषुवर्त्तन्ते इतिमतवान सज्जते इत्य नुरोधेन दयानन्देन जीवव्याप्यत्व प्रकृति नित्यत्वादिक मपि विज्ञान भिक्षुमनुसरता स्वीकृत मिति

मोक्ष विषयक अथवा समाधि में कषाय रसा स्वाद रसका ढूंढना समाधि विपरीत विषय मिल जाना लय अर्थात निद्रा में झुक जाना इत्यादि समाधि प्रतिबन्धक (समधि के बिगाडने वाले) लोभ में मत फसो यह सब धन कि संयोगि का हो सकता है अथवा सब का प्रतिबन्ध कहा है ९

विज्ञान भिक्षुके मत सांख्यानुसार में प्रकृति प्रति बिम्बि जीव एक अलहदा माना गया है उसके मत में प्रकृति केसमष्टि जो गुणादि प्रधान अन्तः करणो में प्रति बिम्बित जीवों की ब्रह्मा विष्णुरुद्रादि संज्ञा है उसके मत में यह अर्थ हुआ कि समष्टिहीव्यष्टि होतीहै जैसे वन यह समष्टि एक२ वृक्ष उसी वन में व्यष्टि परन्तु वन वृक्षों सेजुदा किसी और शकल में नहीं बिना एक नकशे कि बुद्धी के (जिसे समूहालम्बन कहतेहैं)इसी तरह अवतार के बिना वह ब्रह्मादि वृक्षों कि तरह व्यष्टि रूपजीवान्तः करणो मेही माक्षितया है अवतार काल में उस के देह में भी माने जाते हैं इस से उन्होंने उस २ गुण के घटाने बढाने से पैदा किये जगत को गुणा गुणेषुवर्त्तन्ते इति मत्वान

तन्मते ईशागुणैः संरचित मावासितमिदं जगत्गन्धिक स्थैकद्रव्यान्तरयोगैः सुगन्धिनिष्ठा दनेनसुगन्धित मिवव्याप्तम् तद्गुणेषुगुणवृतिदृष्ट्यापरमात्मपारतन्त्र्येणत्यागेनोप भुञ्जीथा लोभंमाकुर्वीथानत्वा तन्त्रयेण कस्यापिभोग्यमिदं धनमितिभावो ऽपिवक्तुं शक्यते.

इदंतु अवधेयं यदत्रार्थे ब्रह्मविष्णवादि पूर्वोक्तसमष्ट्यवच्छिन्न जीवविशेषाणांरजःप्रचुरान्तः करणसमष्ट्यवच्छिन्नादीनांब्रह्मादीनां

सज्जते अर्थात् सत्वादि गुण वैसे ही विषय रूप हुए तदाकार वैसी वृत्तिओं के अनुभव में आते हैं ऐसा मानने से असङ्गनिर्माण कहाता है इसी रीति से त्याग कर उपभोग करो मेरा है ऐसा आत्मी यदृष्टि (ममता) से लोभ मत करो यह धन किसी का नहीं वह तो असंग है मालक ब्रह्मादिकों के गुणों से नहीं-र्माण किया है ऐसा अभिप्राय होता है८ दयानन्द ने भी विज्ञान भिक्षु के कुछ पीछे चलते हुए जीव को व्याप्य और प्रकृति नित्य यह माना है तो उस के मत से परमात्मा ने गुणों के द्वारा यह सारा जगत् व्याप्त है इस में गुणों की गुणों में वृत्ति समझ कर त्याग से भोगो ममता के लोभ में मत आओ जीव तो गुणों के साथ प्राकृत संबन्ध रखता है भोगने में परतन्त्र है यह भी अर्थ उस के मत से होसकता है।

इन दोनों में समीक्षा करनी चाहिये सांख्य मत में सृष्ट्युपयोग में प्रकृति से बिना और का काम नहीं और अपने आप भी वह सांख्य सूत्रों की टीका में ईश्वर मात्र नियन्ता का खण्डन कर प्रकृति को स्वतन्त्र मान चुका है, सांख्य में ब्रह्मादि समष्टि नियन्ता जीवों की क्या जरूरत सांख्य प्रक्रिया में उसे पड गई

सांख्यमते स्वीकार एव विज्ञान भिक्षोऽप्यर्थं एतद्विरुद्धस्तदनु सारेण दयानन्दस्य प्रकृति स्वीकारोऽपि निरर्थ कासंभवि नित्य परमाणुस्वीकारश्च व्यर्थः प्रतिबिम्बवादेन समर्थयितुम शक्यश्च व्याप्य त्ववादस्वीकारश्च व्यर्थ एवेति तदुभयोरकिंचित्करत्वं मिति समीक्ष कत्वेनद्वयम् मीमांसकानां मतेनकश्चनेश्वरः किन्तु जीवा अनन्ताः सर्वव्यापकाः तत्र जीवाः प्रतिशरीरं भिन्ना अपि लौकिकवत् व्याप्ता एव स्वस्वात्मभाव संसर्गभेदेन तु तद्वदेव नान्यदीयसुखदुःखा दि प्रतीतिः ईशोरावास्य मिति सपाद ईशत्वं स्वरूपमत्र व्यपे

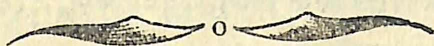
पुराणों के साथ तो फिर भी न मिला पुराण तो इन्हें जीव नही मानते और दयानन्द जीव को नित्य मानता है प्रति बिम्ब अनि त्य होता है प्रति बिम्ब मान कर भी जीव को ईश्वर का व्याप्य नही मान सकता और भी व्याप्य नही सकने में हेतु आगे आजायेंगे और प्रकृति को मानना भी उसका अपने माने हुए परमाणु नित्य है उन के गुण भी नित्य हैं इस सिद्धान्त से विरुद्ध है तो इनमतों का तत्व भी बुद्धिमान् के हृदय गड़ना असंभव है

आगे शङ्कराचार्य का जैसा पाठ संस्कृतमें लिखा है और उस की टीका भी वहां की है और आनन्दगिरि से शङ्कर के मत का भेद भी प्रकट किया है यहां तब ही का तात्पर्य अर्थ किया जाता है शङ्कराचार्य जी ने पहले उपद्घात इस उपनिषत्का कियाहै जिस में उपनिषत्का प्रयोजन अधिकारिकर्म काण्डकेफल आदि भेद बताया है वेलिखते हैं कि ईशावास्य से लेकर मन्त्रा. त्मक उपनिषत् का कर्म काण्ड में विनियोग नहीं अर्थात जैसे इस मन्त्र से यह काम करो ऐसा कर्म काण्ड उनतालिस पहले बीते अध्याय के मन्त्रों का एक २ कर विनियोग (कर्म में लगाना

साधाम् अभेदैकः व संख्यायावृत्तीभाम जिजिविषेत् जिजि विष
सेनेशवहुत्वाप्रतीतावप्ये कत्वस्याप्यप्रतीतेर्द्वित्वाद्यप्रतीतेरेवल
क्कारिकार्थस्वीकरणाभेदपद स्वारस्याहस्मात्सपूर्वपदार्थसंख्यायान
प्रतीतिर्नवारणमित्यकृतोकारेणजीवव्याप्तत्वनामप्रतीयते सामा
न्यतोविशेषतश्च मनुष्येषु शरीराणां सम्प्रतिषु शरीरेषु अन्यत्र चराचर
दोव्यापका आत्मानं इति सर्वं सर्वथा जिजिमत्स्यात्परत्वेन स्वस्वव
र्णाभिमानत्यागेन भुंजीथा इतीयमेव इतीयमन सासंयोगादि
नाचपरलोक गः जिजिनित्यात्म विज्ञान पूर्वकं परलोक भाविस्वर्गो

का त्यायनश्रौत सूत्र शतपथ ब्राह्मण में हुकम किया है ऐसे सवनिबके सो मन्त्र पढ़कर कोई काम नहीं किया जाता बगैर पाठ के और अर्थ ज्ञान के इन का इन नाही मुख्य प्रयोजन है आत्म को अकर्तृ ब्रह्मरूप जनाना क्योंकि यह आत्मा का यथार्थ शुद्ध निर्धर्म सत्यादि स्वरूप बताते हैं वह आत्मा किसी कर्म में अधिकारी नहीं तात्पर्य यह हुआ कि कर्म उसका फल दोनों अन्तःकरणावच्छिन्न को हैं कर्तृत्व भोक्तृत्व कर्म से पाऊं ऐसा माननेवाला अन्तःकरणा वच्छिन्न जीव अज्ञानि को सत्यरूप से ज्ञानि को मिथ्या रूप से प्रतीत हो रहा वही अधिकारी है उसी के किये हुए शारीर वैदिक स्मार्त्त कर्म काण्ड का फल उसी को ज्ञानि का मिथ्या रूप ही होता है अभो वास्तव में नहीं इस तरह जानते हुए अज्ञानी को ठीक है इसी तरह निष्पक्ष परमात्मा का दिया हुआ मिलता है ऐसा ही अधिकार के तत्व जानने वाले कहते हैं इस से यह मन्त्र आत्मा के कर्म काण्ड से नहोने वाले आत्मा यथार्थ स्वरूप के आवरण को भङ्ग करते हुए स्वाभाविक लोक सत्यता दृष्टि जीव स्वरूप सत्यता दृष्टि

दिफलक त्वस्ययाणि संदेह मन्त्रा यागाद्यनुष्ठानं कर्तव्यं तत्र
सुखात्म फलमुपभोग्यं मागृधस्तत्र चमदीयमेवेति स्वत्वेना
भिषङ्ग त्यागाभाव रूपलोभपूर्वोजक व्यापारा मावकुर्वीथाः
नेषतो ध्यस्ता दित्यमितिवद्भा वभाव नाबा अपिक्रिया रूप
त्वेन विध्यर्थ त्वात् तदत्रविधाय भिषङ्ग त्यागलक्षण गुणवि
शिष्टोप भोगवि धानाय फलसाधनकर्मानुष्ठानमनूद्यते यद्यपिज्ञान
काण्ड मिदम तिरिक्त मिति सार्वत्र कीकथा तथापि नैवाम्नी
नांसकसंमतसाऽत्मज्ञान स्यतऽमते कर्मविधिशेषत्वात् कस्यचिवद्ध

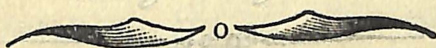


को हटाते हुए शोक मोहादि संसार धर्मी को कर्म करते उसका
फल भोगते हुए भी कर्तृत्वभोक्तृत्व धर्म से सत्यता दृष्टि
को हटाने कारण आत्माके यथा स्वरूप की वृत्ति को पैदाकरती
हैं इस तरह से कर्म भिन्न फल मुमुक्षु अधिकारि मुक्ति प्रयो
जन वाले इन मन्त्रों को व्याख्यान करते हैं ईश नाम परमात्मा
का है वह सभी कुछ अपने अख्तियार रखता है सब
प्रकार को मायाज नित चरा चर (जड चेतन) सब प्राणि
मात्र का आश्रय होने से वह सब का आत्मा है इस से जो कुछ
जगती त्रिलोकी में विद्यामान स्थावर जङ्गम में है सभी से आछा
दनीय) ढकने लायक है अर्थात् जैसे चन्दन में पैदा हुआ
दुर्गन्ध घसने से सुगन्धि पैदा कर ढका जाता है अर्थात् दुर्गन्ध
का निषेधक सुगन्धि में ही स्थिति कीजाती है ऐसे यह मायिक
जगत् अनेक प्रकार के सुख दुःख धर्मा धर्म शोक मोह भोक्तृत्व
कर्तृत्वा आदि दुर्गगन्ध से दुष्ट (परमात्मा शुद्ध ब्रह्म में) जीव
परमात्मादि ब्रह्मादि स्तम्भपर्यन्तक धर्म अन्तःकरण के बिना शुद्ध
मात्र को नही कहसकते तो अगर हम कहें की आत्मा तो जैसा

न मिति तत्रहि तुनाह पूर्वोक्त त्यागविधिजभिलाऽपूर्वैहि धनं कस्यस्विद्व कस्यापि अतोहेतोः प्रशस्ततः सोपपत्तिकः त्यागाभावा भावोनियोग विधिविषय इत्यर्थः १०
यदान्तिनतेयशङ्कर भाष्य स्यपृथगमुक्तपाठे ययोद्धांतव्याख्या स्यानःततोन्येपाम् शाङ्कर पाठश्चेत्थम् । ईशावा स्यादयोमन्त्राः कर्मस्वविनि युक्तास्तेषा मकर्मशेषस्यात्म नोयाथात्म्य प्रकाशक त्वात् याथात्म्यं चात्मनः शुद्धत्वापा पविद्धत्वैकत्वनित्यत्वा शरीरत्व सर्वगत त्वादिव क्ष्यमाणम् तच्चकर्मणा विरुध्यते इति

उपनिषत में बताया है उस जीव के विशेष भाग मात्र को क्रिया में या फल में संबन्ध नही सो वह कर्म में अधिकार कहां रखता है उसके लिये कर्म प्रवृत्ति या निवृत्ति किसी बात का हुकम नही होसकता जो भी कुछ विधि अर्थात् हुकम गृहस्थादि के लिये प्रवृत्ति या सत्यादि कलि से भिन्न युग में सन्यास का हुकम (निवृत्ति विधि) कहा है वह सभ अन्तःकरणावच्छिन्नात्मा जीव को ही है ज्ञानि ने झट सन्यास लेलेना यह तो अपने मनमानी बात बिलकुल शङ्कर के मत से विपरीत है उपनिषत् उस आत्मा का स्वरूप बताते हैं जो सन्यास के अधिकार को भी नही रखता उपनिषत् भी उस क्या बताते हैं वह तो शुद्ध प्रकाश रूप है केवल और तर्क की वृत्ति को आत्म रूप नहीं मिथ्या है ऐसा कहते हैं आत्मा को ढकने वाले अज्ञान का भङ्ग करते हैं तो कहिये उसको कहां रङ्गेक पडे पहनाओगे हां निवृत्ति चक्र में पतित जीवन्मुक्त पुरुष दृढ पतित (फिर गिरजाना) की संभावना न होने से कलियुग से भिन्न युग में सन्यास लेलिया करते थे उन को कुछ निषेध भी नही निवृत्ति का हुकम भी तो

युक्त एवैषां कर्मस्वविनियोगनः + चैवंलक्षण मात्मनोयाथात्म्यभूतया द्यं विकार्यमाप्यं संस्कार्यं वाकर्तृभोक्तृवायेन कर्मशेषतास्यात् ष्वासामुपनिषदा मात्म याथात्म्य निरूपणेनैवोपक्षयात् ? गीतानांमोक्ष धर्माणां चैवंपरत्वात् तस्मादात्मनोऽने कत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वादि चाशुद्धत्वापाप विद्धत्वादि चोपादाय लोकबुद्धि सिद्ध कर्माणि विहितानि + बोहिकर्मफलेनार्थी दृष्टेन ब्रह्मवर्च सादिन ऽदृष्टेनस्वर्गादिना चद्विजातिरहं नकाणकुब्जत्वाद्यन धिकारप्रयोजक धर्मवानित्या त्मानं मन्यते सोऽधिक्रियते कर्म स्विति ह्यधिकार विदोवदन्ति तस्मादेते मन्त्राआत्मनो याथात्म्य प्रकाशनेनात्म विषयं स्वाभाविकम ज्ञानं निवर्तयन्त इशोकत्मो हादिसंसारधर्म विच्छित्ति साधनमात्मै कत्वादिविज्ञान मुत्पादयन्ति इत्येवमुक्ताधि कार्यभिधेय संबन्ध प्रयोजनान्मन्त्रान् संक्षेपतो



शुद्र को नही विविदिषा संन्यास भी ज्ञान के लिये कलियुग से और युग में ही था शङ्कराचार्य जैसे पञ्चम भूमिका की प्रवृत्ति रखने वाले निवृत्ति चक्र पतित थे और परमात्मा के अवतार इस लिये उन्हों का दृष्टान्त बताना तो बड़ी ही भूल की बात है और विचार सन्यास के विषय में शङ्कराचार्य के ग्रन्थों के साथ विरोध आदि संस्कृत में लिखा यहां तो संक्षेप मात्र अकर्म शेष स्यात्मनो याथात्म्य प्रकाशकत्वात् इन शङ्कर के अक्षरों का बताया है शङ्कर कहते हैं याथात्म्य क्या है शुद्धत्व १ आपपविद्धत्व २ नित्यत्व ३ एकत्व ४ अशरीरत्व ५ सर्वगतत्व ६ अर्थात कारण शरीर तक संबन्धन रखना १ अन्तःकरण के धर्म पापादि से रहित एक होना २ उत्पत्ति नाश से रहीत होना ३ एक होना ४ स्थूल शरीर से रहित होना ५ सब के साथ मायिक संबन्ध

व्याख्या स्यात: ईशावास्य मित्यादि ईशा ईष्ट इतिट् तेनेशिता परमेश्वरः परमात्मासर्वस्य सहिसर्वमीष्टे सर्वजन्तूना मात्मा सन्प्रत्यगा त्मतयातेन स्वेनरूपेणात्मनेशा वास्यमाच्छादनीयम् किमृइदं मर्वं यत्किं चयक्तिं चित्जगत्यांपृथिव्यांजगत्त त्सर्वं स्वे नाऽत्मनेशेन पृत्यगात्मतयाऽहमेवेदं सर्व मिति परमार्थ सत्यं रूपेणा नृतमिदं सर्वंचरा चरमाच्छादनीयं स्वेन परमात्मना यथाचन्दनागर्वादेरुदकादि संबन्धजक्लेदादिजमौपयिकंदौर्गन्ध्यं तत् स्वरूप निवर्षणेनाच्छाद्यते स्वेनपा रमार्थि केनगन्धेन तद्वदेव स्वात्मन्यध्यस्तं स्वाभाविकं कर्तृत्व भोक्तृत्वादि लक्षण जगद्वै तरूपं जगत्यां पृथिव्यां जगत्या मित्युप लक्षणार्थत्वेन सर्व मेव नामरूप कर्माख्यं विकार जातपरमार्थ सत्यात्म भावनयात्यक्तं स्यात् एवमीश्वरात्म भावनया युक्तस्य पुत्राद्येषणात्रय संन्यासे एव

ज्ञान माया कल्पित धर्म मात्र संसार के भ्रमका अधिष्ठान मात्र होना यह परमात्मा जीव दोनो में साधारण विशेष मात्र असङ्ग आत्मा यथार्थ स्वरूपहै तो वह आत्मा उत्पत्ति नाश रहित होने सें उत्पाद्य नही कहा जाता और सभ का अधिष्ठान होने से क्रिया रहित है चला जाने की जगह नही क्रिया के विना विकार नही होता इस से विकार्य नही इसी से प्राप्य नही कहां प्राप्त नहीं सभ तो भ्रम उसी में है क्रिया से विना संस्कार दोष को हटाता है या गुण को पैदा करता है शुद्धत्व अपापविद्धत्व अशरीरत्व होने से और एक निर्गुण होने से दूसरे गुण की जगह नहीं दोष कोई है नही क्रिया भी संस्कार को पैदा करने वाली नही होती तो वह संस्कार्यभी नही कर्म या फल भोग उसका संस्कार यह उस में नही होसकते उस से

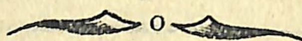
धिकारोन कर्मसुतेनत्यक्तेन त्यागेनेत्यर्थः नहित्यक्तोमृतःपुत्रो मृत्योवा आत्म संबन्धितायाअभावा दात्मानं पालयत्यतस्तत्या गेनेत्यर्थः भुञ्जीथाः पालयेथा एवंत्यक्तैषण स्त्वंमागृधः गृधिमा का ङ्क्षामाकार्षीर्धनविषयां कस्यस्विद्धनमृकस्यचित्परस्यवा-धनंमाकाङ्क्षीरित्यर्थः स्विदित्यनर्थको निपातः अथवामागृधः कस्मात् कस्यस्विद्धन मित्याक्षेपार्थोन कस्यचिद्धन मस्तियद्गृध्ये त अत्मै वेदंसर्व मिती श्वरभावनया सर्वं त्यक्तमत अत्मैवच सर्व मतोमिथ्या विषयां गृधिंमाकार्षी रित्यर्थः ! इति११

अत्रेत्यादि व्यख्यास्याम इत्यन्तपाटोनार्थ कोटौ किन्तु कर्म काण्डज्ञा नकाण्डयो रूपदेशभेदात्फल भेदादिभ्यश्च पृथक्त्वेनानु बन्धचतुष्टयसूचनायतत्र + इतिचिन्हान्तं कर्मकाण्ड भेदप्रदर्शनाय ? इति चिन्हन्त न्तद्धेतुगर्भि तोनिषद्विषयस्यात्मज्ञानस्य सूचना यपुनः + इति चिन्हान्तं कर्मनैष्फल्य परिहारायसर्वस्यैववेदस्यकर्म णांमोक्ष फलकत्वेन तात्पर्यं किन्तुज्ञानमेवमोक्षफलक मितिध्वन

वह वर्णाश्रम धर्म रूप कर्म में अधिकारिनही वह सभ अन्तः करणावच्छिन्न के है जो शरीर तक आत्माध्यास है इसी लिये उपनिषद् भी उसे ज्ञान रूप नित्यमुक्त ब्रह्म आत्मा के वैसे रूप को न पैदा करती है न बताती है किन्तु उस के आवरण को मिथ्या बताती है लेशावरण भी कई आचार्य सप्तम भूमिका तकमानलेते हैं वास्तवमें तो लेश विद्या रहती है आरण तो नष्ट होजाता है गीता और मोक्ष धर्म भी इसी बात को कहते हैं इस से आत्मा का अनेक (बहुत) होना कर्ता भोक्ताकारण शरीर अन्तः करण इन से विशिष्ट लोक साधारण मान रहे अज्ञानी और प्रवृत्ति चक्र पतित लेशा विद्या वाले ज्ञानी जो

नेनसहाधिकार प्रयोजक ताऽज्ञानस्य ज्ञानिनस्तुन प्रवृत्तौन नि-वृत्तौ वाधिकारः सकलविध्य विषयत्वात् इत्युक्तंतदनन्तरमधिका र्यादि प्रदर्शनेलो पसंहारः इति सर्वोपनि।

षदुपोद्घात विवेकः अथव्याख्या कर्मस्वविनियुक्ताइतिमी मांसका नाम्यिस्वर्गा दिफलक कर्म विधिशेषानेत्यर्थःआम्नायस्य क्रियार्थत्वे पिएषां मन्त्राणां तदसंभवा त्सिद्धभूतार्थ विज्ञानाद्वै तमात्र परत्व मिति समन्वय सूत्रे भाष्ये स्पष्टत्वात् ईशादि मन्त्राणां कर्म विधि शेषत्वा भावेहेतुमाह कर्मानुपसर्जनार्थक त्वंतेषा मिति अकर्मशेषस्यविध्यर्थोऽर्थभावनायां भाव्यभावने ति कर्त्तव्यत्वा दिनानुपसर्जनस्यएतेनात्मविशेषणेनान्तः कर णावच्छिन्नस्यैवकर्तृ त्वेनस्वर्गादिफलक प्रवृति विधि विषयता कल्यतिरिक्त कालावच्छे देन सत्यामारूढपतित त्वाभावोयदृढ संभाव नाया मातुरादिका लेवायथाकथंचित्संन्यासादितदाश्रम कर्म विधि विषयतास्व निवृत्ति विधि विषयताथानतु शुद्धस्व



बाध प्रति योगि अर्थात् भ्रान्ति काल में रज्जु सर्प की तरह है वास्तव में नहीं इसी तरह देख रहे ज्ञानी भी भ्रान्तिवश की तरह कर्म में अधिकार रखते हैं ज्ञानी वास्तव अधिकार शून्य हुए निवृत्ति चक्र में भी शङ्कराचार्य जैसे युगान्तर में हो जाते थे क्योंकि जो कुछ कर्म का फल ब्रह्मवर्चस आदि दृष्ट (ब्राह्मण तेज) और दृष्ट स्वर्गादि को मैहीन अधिक अङ्ग रहित द्वि-जाति वेदज्ञहूं ऐसा नकरेउसेहै यहां तो भावहै कि कर्मफल ब्रह्म लोकादिस्था वरपर्यन्त भ्रान्ति मात्र वास्तव मेंकभी नही इस तरहसे निषेध समानाधिकरण (निषेध का साथ होना)चेतन शुद्ध वृत्ति को पेदा कर शुद्धरूप से ढक देना चाहिये जगत पद से

रूपस्यात एवज्ञानिनां त्यक्त्वाकर्मफलासङ्ग मितिगीता पञ्चव्या-
ख्यायां कुतश्चिन्निमित्तात्कर्मपरित्यागा संभवेसति कर्मणितत्फले
चसंगरहिततये त्यादि कुतश्चिदित्यस्यकलिनिषे धारूढपतितत्वसंभा
वनाभोगेहाऽनासक्ततयायादि प्रतिनिवृत्त्यधिकृतिराहित्यादिज्ञाने
नवेत्यर्थकर्मचक्रे संस्थितानांनकर्मनिवृतिरित्ये वोक्तंविद्वत्संन्या
सस्तु पूर्वजन्म विज्ञानोत्पन्न जीवन्मुक्त दशाविशेष रुपस्य
निवृति चक्रपति तस्यश्री भगवच्छङ्करा चार्य पूज्यपाद स्येवा
दृष्टजात संन्यास तदाश्रम कर्मनुवादएव तदन्तः करणाच्छिन्नस्य
विधिविषयत्वेन परीज्ञा तत्वे ऽपितस्य शुद्धरूपेणा रम्पवृत्या लेशा
विद्यादिनामिथ्यात्वेनभ्रान्तित्व तारूपवाधितानुवृत्तेः स्वसा
क्षि विषयतया ऽवश्य नियोज्यत्व रूपाधिकार विध्य विषयत्वात्
इति बोधितम् !

तेनझटिति विदुषा सर्वं त्याज्यं संन्यासएवग्राह्य इत्यादि
आधुनिकशङ्कर भाष्यान भिज्ञवेदान्तिनामुक्तमतितुच्छमितिध्येयं

नाम और रूप सभी लेलेना ऐसा होने से यह सब कर्त्तृत्व भो
क्तृत्व (करना भोगना) की इच्छा स्वर्गादि लोक पुत्र वित्त(धन-
आदि सभीकी त्यागी जायगी अर्थात् होती हुई भी पहले
सप्तम भूमिका से वास्तव में नही शुद्ध के साथ इस का कोई
संवन्ध नहीं केवल अन्तःकरणो वच्छिन्नके साथही भ्रान्ति मात्र
है ऐसी समझी जायगी क्योंकि ऐसे आत्मज्ञ को इन एषणात्रय
इच्छा के त्यागनेसे असङ्ग रूपमें स्थित हो और युगों में संन्यास
से और कलि में संन्यास रहितभी अपने २ वर्णाश्रम के अनुकूल
नित्य वनित्य काम्य कर्मों में ही अधिकार अन्त: करणावच्छिन्न
शरीराध्यासी कोभ्रान्ति में माना गयाहै इस से ऐसा त्याग से
अपनी रक्षा करो क्यों कि मरा और देदिया छोड़ा हुआ जैसे

यम् याथात्म्यंपा रमार्थिक स्वरूपंतस्य प्रकाशक त्वमविद्याजनि तावारण भञ्जक वृत्ति जनकत्वम् तस्मादित्यर्थःज्ञानरूपात्मप्रका शक त्वा संभावाज्जडस्ये तिभावः यद्यपि आवृत्तिरस कृदुपदे शादित्यत्र वेदान्ता वृत्तिरुक्ताभाष्ये तत्काले चनावरण भङ्गोभञ्जनीया भावात् तथापि अज्ञानिनांतद्भञ्ज कत्वमक्षतं तत्काले ऽपिक्षत पूर्वगत्याच तद्व्यवहार इति दिक् यथात्मनो भाव इति निर्धर्मकस्यव्युत्प त्यर्थो नघटते किन्तुस्वार्थ व्यंजन्तार्थ एवधर्म धर्मि भावस्तु वृतिकल्पित एवेत्य तस्तथाह यथेति आत्मनः स्वरूपमेवक ल्पित धर्म धर्मि भाव रूपेणेद प्रतीयमानेव क्ष्यमाणंज्ञे यमितिशेषः अशुद्धत्वादि पापवेधादि जीव स्यैवव्यष्ट्यन्तः करणावछिन्नरूपस्ये तिभावः अप्रयोजकता शङ्का निवर्तकहेतु नाहतदिति शुद्धत्वादीत्यर्थः हेतौ कर्म क्रिया साच नित्यत्व विरुद्धा तज्जनित विकारा दिमलाः द्विविध कारण कार्यनिष्ठाःस्वाभाविकाऔपाधिकाश्चतन्मन्त्रार्थवक्ष्यमाणा शुद्धात्वापापविद्धत्वविरुद्धाकर्तृत्वफलासंङ्गित्वादिभेदलक्षणक्रि- याशेषधर्माइषे कत्वा शरीरत्व सर्वगतत्वविरुद्धायतइत्यतोहेतोः

पुत्र धन आदि दुःख काहे तुन होने से अपनी रक्षा करता है क्यों कि उस से तलुकन समझनेसे उसका चला जाना या दुःख में होना अपने को दुःख नहीं देता इसी तरह युगान्तर में सन्यासाश्रमी को और में भी ऐसे असङ्ग देखने वाले को दुःख का वैसा हेतु नहोने से पुत्रआदि का चला जाना या दुःख में होना आत्मा का रक्षा ही करता है मिथ्या दुःख दर्शी को आत्मा सत्य दु.ख संगी को तरह असंतोष नहीं होने देता इस तरह से असङ्ग आत्मा को देखता हुआ तू अपने या और के धन का लोभ मत कर अथवा तू लोभ छोड दे यह धन किसी

कर्म शेषतानात्मनः किन्तु अवच्छिन्नाध्यस्तस्यैवतस्यैव कर्मांग यित्वेन तदर्थक स्वर्ग कामादि पदानां कर्म विधि शेषत्वं जीवी याध्यस्त स्वरूपस्यतच्छेषत्वाद्युक्तमन्तःकरण वृत्ति शरीरचेष्टादि क्रियावत्वेन विकारित्वान्मल वारणा दृष्टरूप गुणाधानरूप संस्कारयोग्यत्वात्स्व स्वरूपेणप्राप्यत्वात्स्वकर्तृत्वात्फलाप्यत्वेन भोक्तृत्वाच्च स्वर्गकामादिपदैर्विधिशेषत्वेन विरोधाभावान्मिथ्या कर्तुर्मिथ्या धर्म क्रियया मिथ्या सुखादिफल संबन्धस्य युक्तत्वात नतुशुद्ध जीव रूपस्य तथा भूतपरमात्मा भिन्नस्यतद्ग्राहक चेति ननूपनिषदांतज्ज्ञापकत्वेन स्यादेवप्राप्यत्वं तत्वरूपस्येति शंकां निराकुर्वन्नाह सर्वासा मिति उपनिषदोहि शुद्ध वृत्तिजनकत्वरूप निरूपण मेवकुर्वन्तिस्थित कण्ठचामीकर समक्ष दर्पणवत् नतूत्पा दयन्ति ज्ञापयन्तिवात तद्ज्ञानं प्रकाशरूप ज्ञानात्मकत्वान्नि त्यत्वाच्चेतिभावः संवदते स्मृत्येतिहा सपुराणैस्तु वेदार्थमुपबृंह येदित्युक्ते गीतादि भिःगीतेत्यदिना कर्म काण्डवै फल्यशङ्कां

का नही मिथ्या है आनन्दगिरि वगैरह का संन्यास का व्या- ख्यान भी द्वेष छोडकर कलियुग से भिन्न युग के अनुकूल समझना चाहिये नही तो स्मृति और भाष्य का विरोध बहुत सा आपडेगा वह संस्कृत में लिखा है

मीमांसक मत संस्कृत में पहले है भाव में पीछे लिखते हैं बाध्वादिका आगे मेलभी कुछ होगा मीमांसक मतमें विधि वाक्य शेष नित्य आत्मा अनेक नैयायकों की तरह माने हैं परन्तु ईश्वर नहीं क्योंकि कर्म प्राधान्य वताने के लिये कर्म अर्थात अदृष्ट से खुद वखुद मट्टी से घट की तरह जीव आपस में फल पासकता है फिर ईश्वर एक मानना क्यों इस अभिप्राय से उन्हों

निराकुरुतेतस्मादिति लोकबुद्धिसिद्धेतिविशेषणे नज्ञानयज्ञानि लोकैः क्रियमण त्वेत्वप्रतीय माना निकर्माणि सन्त्येव मिथ्याच बावुद्धि नंतयाज्ञान काण्डीय शुद्धत्वादि बुद्धिविरोधो भिन्न विषय त्वादिति सूचितम् विहितानी त्यस्याज्ञानार्थम पूर्वत्वेन भ्रान्तित्वेन ज्ञानिश्च भ्रान्तिकल्पित रूपत्वेनज्ञान स्यार्थी भाव ना विषय स्वजन कानीत्यर्थः तेनाज्ञानिन फलार्थिज्ञानिनश्चान्तः करणावच्छिन्नएवा धिकारीनशुद्धस्वरूप मितिनतेन तज्ज्ञापकेन चतद्विरोधः तथाभूतश्चात्र प्रतिपाद्यते तदर्थंश्चज्ञानी आवृत्यर्थं ज्ञानिनोऽन्तः करणावच्छिन्नश्चाधिक्रियतेनज्ञानीतिभावः तदेवस्फु टयतियोऽन्तःकरण शरीराद्यवच्छिन्न इत्यर्थएतेनतुल्ययुक्तयाअहं

ने ईश्वर नहीं माना उस मत से इसका अर्थ होगाकि ईश्वर मन के स्वामी आत्मा ने यह सभ व्याप्त है यानि जीव इस लोक परलोकादि सभ सृष्टि में संयुक्त है इस से उस को परलोक सुख कैसे हो यह शङ्का हट गई तेन इस से उसी आत्मा को नित्य सर्व संयोगि मान कर त्यक्तेनभूञ्जीथा त्याग कर सभ शङ्काएं चार्वाकादिकों को यागादि से पाये फलों को स्वर्गादि में उपभोग करो फिर लोभ मत करो किन्तु यावत् अपने अदृष्ट में है तावत् उपभोग करो धन मद मत करो प्रारब्धबिन किसी का कुछ नहीं

अथवा लोभाभाव क्रिया व्रतकर नेक्षेतोद्यन्तं इसमें आदित्य न देखूंगा इत्यादि प्रतीज्ञाओंकी तरह नियम करफलपाओ और बिनाकियेधन किसीका नही मीमांसक सभ ज्ञान काण्ड अतिरिक्त नहीमानते किन्तु कर्म शेष उपनिषत् के आत्मा को कहतेहैं इस से उन कें मत में ऐसा अर्थ चाहीऐ

मुमुक्षुर्बन्धबाधक ज्ञान मीश्वर गुरुशास्त्र कृपया संपद्या नीत्यभि नन्द्यते सोत्रोपनिषदधिकारी तिसूचितम् फलाधिकारिणं परामृश न्नुपसंहरति तस्मादिति सोऽधिकारी शुद्धःस्वरूप वृत्ताव विद्या निवृत्यापुरावद्ध इवाध्यासप्राप्त्वेन भ्रान्तपूर्वी भ्रान्तिसपदलक्ष्य भूतंस्वरूपेणोप निषद्वेद्योऽवेद्योऽपि अविद्या निवेधाद्विरूप स्वरू पानन्द फलेन मोक्षेण नित्येन स्वरूपेणैव सिद्धएव तिष्ठ ति वेदादर्शित वृत्ति दर्पणेन कण्ठचामीकरवद् इतितदाशयः

आछादनीयम् शुद्धैक सर्वगत वृत्त्युत्पा दनेन निषेध्यत्वे नजगद्वा धसमानाधि करणत्वान्ति सत्तावत्वेन पर्यवसानतथ्यम् तद्दृष्टान्ते नस्फुटयति यथेति उपलक्षणार्थ त्वेनलोकत्रयस्येत्यर्थः नाम रूपाभ्यां सिद्धे कर्म पदं कर्म क्रियावतोऽसत्यस्य परिच्छिन्न स्यैवलद्योगोनतु अक्रियस्यनित्यस्वरूपस्ये तिसूचनायत्यक्तंस्यादि तिसंभावना लिङाऽगृही तस्वरूपस्यतद्भावःप्रतियोगितया सत्वे ऽपिस्वलक्ष्य दृष्ट्यानिषेधविषयइति द्योत्यतेसंन्यासएवाधिकार इतिकल्पनिरिस्वाव च्छेदेनारूढपतितवा दिसंभावना भावदार्ढ्य सतीतिज्ञेयम् अधिकार इति नकर्मस्वअत्रा।

निनएवंसंपाद्यंइत्यर्थः ज्ञानिनोऽन्तःकरणावच्छिन्नस्तुस्वच्छन्दो नावस्था धिकारनि योज्यत्वेन विधीविषयः किन्तु काम्यनिषिद्ध वर्जने नित्येस्वाश्रम धर्मादौ नित्यकाम्येष संन्यासादि का लेतद् प्रवृत्तावततकालेच नित्य नित्यकाम्यादिवर्ण धर्मसाधारण धर्माचारेणे हामुत्रपतत्फलाश्रय इत्याशयः आत्म संबन्धितया अभावादितिनतुस्वरूपाभावादित्यर्थःसतोपि संसर्गीममत्वलक्षणो विद्यमानोऽपि जीवो याध्यस्तस्याध्यासरूप प्रतियोगितयाऽवि द्यमानत्वाच वस्तुतएव जीवतद्धयस्यतथैव निषेध विषय त्वान्नि

ज्ञान विषयी कृतीममत्व पदवाच्यत्वं न भजतिनच तद्गन्तम पि बा न्त्राग्त मिति व्यपदेशयंकरोति दृष्टान्तेतज्जनितफलोपभोगा दि कंचन कारयति तथा लक्ष्ये भोगित्वमितित्न्रान्तिं नजनयति भुञ्जतो पिपूार व्यकर्माणि वाचयस्येतिभावः पालयेथा इति वा व्या भेदाघ्यासेन लक्ष्य स्वरूपस्य तद्वृत्तिभोगित्वाभिषङ्गलक्षण मिथ्याज्ञान जनितबद्ध स्वरूपात्न घोतादात्मानं रक्षयस्वेत्यर्थः परस्येतिवाच्यार्थोभि प्रायेणलक्ष्ये स्वत्वाभावात् लक्ष्ये प्रतियो गित्वभ्रान्ति प्रतीति विषय त्वेनस्व स्वंबाध समानधिकरणं दर्शयतिअथवेति तदेवस्पष्टयति मिथ्याविषयां गृधिमिति इति १२

अत्रानन्दगिर्यादि व्याख्यया संन्यास परत्वेन व्याख्यानं कल्पतिरिक्तकालावच्छेदेनकथंचिन्नयंतत्रत्यक्षरस्वा रस्यगवेषणेन तुभाष्यासंमता यथामति प्रकाशित स्वारस्येनै वेतिज्ञेयम् बीव त्वादेव भाष्यकारस्यपरमात्मा वतारत्वेनसमानतीये रूतत्र क्षय स्वासदभिप्रायस्य दुरवगाह स्वाघनातीव कतृ दोषमाप दयति इत्यलंपरछिद्रान्वेषणेन ।

अत्रसाध्वमते सत्यंभिदा सत्यंभिदेत्युक्ते रीशजीव। योरिश्वरजडयोर्जड जीवयोर्जीवानांजडानां चमिथोभेदपञ्चकस्यस्वी काराद्वेदान्तिवन्मत ब्रह्मस्वीकाराच्चेश पदेनविष्णु रतेनावास्यं व्यापकत्वादद्वद्वासुपर्णेति श्रुत्युक्तपक्षिदृष्टान्तेनजीवेऽकर्तृ भोक्तृ द्रष्टृमात्ररूपेणानुग्राहकेणकृपा लुरूपेणा वास्यमिदं जगत् इत्यर्थ सर्वसिलिठ्यापक रूपप्रदर्शनाय यतिकंचिदिति अंशोनानाठ्यपद् शादितिसूत्रभाष्यरीत्याराम कृष्णादिन्यूना धिकतारतम्येणपूर्ण कृष्णादिरूपविशेष ठ्यक्तिसूचनायस्वस्वामि भावभेदेनाद्राधिक्या योपास्यत्वायचावयुत्यानुवादः तेनजगतस्त्यागेन भृत्यदासभावेन

०

साध्वा चार्य के मत में सत्यं भिदा २ भेद सचा है सच है ऐसा भालवेयश्रुति (जो शङ्कर के सिद्धान्त में लोकज्ञान का अनुवाद† है) के मिलने से जीव जड का भेद ईश्वर जीव का भेद आपस में जीवों का भेद आपस में जडों का भेद इस तरह पांच प्रकार का भेद माना है और शङ्कराचार्य के मत जैसा ब्रह्म नहीं माना सगुण निर्दोष परमात्मा विष्णु माना है इस से यह अर्थ हुआ कि ईश विष्णु ने जैसे वृक्ष पर एक पक्षी अपने आश्रम में बैठ कर कुछ घास वगैरह लाना और फलादि खाना यह काम कर्ता भोक्ता हो और दूसरा पक्षी और आय बैठा उसे देखताहो इसी तरह परमात्मा प्राकृत देह वृक्ष में बैठे अपने काम करते हुए प्राकृता प्राकृतदेह (प्रकृति सत्वादि से युक्त मनुष्यादिदेह और भगवान्की भक्तिकेप्रतापसे इसेबिलकुल छोड भगवान्की

† नोट–शङ्कर के मत में कुल भेद श्रुति ऐसी मानी जाती है उपासना और निषध केलिये

सर्वं स्वामिन सत्पूरीकृत्य भुञ्जीथा उपास्तिक्रियया आत्मानं पालयेथा भक्तिरहितेनह्यात्माधोनारकादियोनीपात्यते भक्तिस्तु तस्तोरक्षिकेति भगवद्कृपा सनयापालयेथायथाहिपतन्तंभृत्यंविमुखं स्वामिनःपश्यामःसततानुरक्तंवोद्धुतमित्यर्थः अतएवोच्यतेकृष्ण कृष्णेतिकृष्णेतियोमांस्मरतिनित्यशः बिलंभित्वायथापद्मंनरका दुद्धराम्यहम् येयथा

मांप्रपद्यंन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम्एवम्भक्तिमताचपरमेश्वराद्विमुख तयाजलमात्रे ऽपिनाकाङ्क्षाकर्त्तव्याकिंपुनरन्यत्रतदाह मागृधोभक्ति राहित्येन माभिकाङ्क्षीर्नैवेद्यभक्षकोभवेत्यर्थः कस्येद्धनं नकस्यापि अभक्तस्य नहिस्वामि विमुखोर्हतिभोजनमात्र म पिलब्धुमित्याशयः यद्वाभक्त्यात्यागेन भगवदर्पणनैवेद्यादिना भुञ्जीथा मागृधः परकीये यस्यहिस्वम पिभगवदीयमित्येवसोपभोज्यं किमन्यदीयेतस्य स्वत्वमितिएवं परमवैराग्य वान्सन्

लीला इच्छा मात्र से भोग्य बना कर दुःख रहित सुख मात्र भोगने वाला स्वच्छन्द देह) में भोगते हुए को देखने को व्याप्त है व्याप्ति संयोग मात्र ही मानी जायगी प्रकाश काम तो अणु जीव की प्रभाशक्ति (धर्म ज्ञान से ही होगा) यह इदं सर्वं से जो कुछ कुल संसार यत्किं चित् कुछ, एक परमात्मा का प्रधान अंशकृष्णादि अवतार लिया है वही (स्वस्वामि) मालिक नौकर मित्र पुत्रआदि भावसे उपास्य होने से संसारमें भरा इस लिये सर्वं से इलाहदह लिखा इस हेतु से उसी बैठे देखनेवाले पक्षी की तरह(जोद्वासुपर्णा सयुजाःसखाय)इस श्रुति में (जिसका अर्थ पहले कहा है कि दो पक्षि मित्र संयुक्त एक वृक्ष में हैं जिन में एक खट्टे मिठे फल खाय दूसरें देखे हैं) लिखी मित्र दासादि भावना से उपासना कर्तत्याग उसी के अर्पण हुए अपने

किंमयि मामृधःयोगक्षे मं वहाम्यहमितिभगवान्स्वयंसेऽभिकोङ्क्षां संतुष्टस्यपूरयिष्यति कस्या सन्तुष्टस्यधनम् इति।मखलु

आत्मसंतोषमत्ताराधन मभिकाङ्क्षा निवर्तकमितिभाव:

दासपदवेद्यानाम भेदश्रुतयोमाध्वानां सायुज्ये मुक्त्यर्थं मतिसा मीप्यरूपंसर्वगतौ तादृशदृष्टिभेदेन पुरोहितो राजेतिव दभेदभाव नादाढर्यं जीवन्मुक्त स्वरूपदीक्षित दृष्ट्यनुवादकम् इतिध्येयम्॥१३

भट्टभास्कर मतेद्वैत मद्वैतंचपरमार्थं सदेवसर्वस्यपूमेयतया ऽभेदाद्द्रष्टया द्विरूपेण भेदाद्वद्वैतं तुविनाशितेन तन्मतेद्वैतेन विष्णुनाऽऽवास्यमिदं सर्वं जगत्व्यापकोपादानसा मान्य स्वरूपेण यत्किंचित्विशेषरूपंपरिच्छिन्नद्वै तद्रूपंचतद्भिन्नं प्राकृतलीलाव तारादि सर्वमभेदेन भेदेनचदृश्यमानमिहामुत्र शास्त्रादौचगोलोक तत्सर्वं विष्णु नाभिन्ना भिन्नतयोपादानेनव्याप्तत्तनुपास्यवेत्यर्थ·

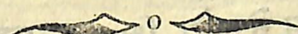
आत्मा का पालन करो भक्ति ही नहोने से नरकादिओं में वह गिरा देगा जैसे बागि नौकर को राजा अपनी पदवी से गिरा देता है इसी तरह (गवर्नमेण्ट सर्वेण्ट) दास उस परमात्मा के माध्वादि परम मित्र स्त्री पुत्रादि के सदृश भावों से उसी के बनते हम वही हैं (मेरा आत्मा पुत्र है इस की तरह) ऐसा समझो देखो भगवान् कहते हैं ये यथामां प्रपद्यन्तेतांस्तथैवभ जाम्यहम् जो जैसे भाव से मेरी शरण लेता है मैं भी उस को उसी भाव से प्राप्त होजाता हूं कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति योमां-स्मरति नित्यशः विलंभित्वायथापद्मं नरकादुद्धराम्यहम् कृष्णः कृष्ण २ ऐसे जो मेरा स्मरण करता है जैसे जमीन को उखाड कर स्थलक मल निकलता है ऐसे मैं भी उसे नरक से बाहर निका लेता हूं

तेनत्यक्तेनभगवदर्पणेनपितृपुत्रादिविभि वेदितेन भुञ्जीथाः तथा कस्य चिद्धनं मागृधः वैराग्य वृत्याधस्य वनादि वसिष्ठमा भिकाङ्क्षीरित्यर्थः १४

निम्बादित्यमतेभेदः परमार्थतो व्यावहारे प्रतीयमानो ऽपिमुक्तौ नश्यतीतिपूर्ववत्तुल्यं परन्तुविवर्त्तं तयाऽभेदाज्ञान कालेभगवल्लीलयामायवाकल्पितं तथाचत स्मलेदेशो हिरण्यस्ते नसर्वज्ञसर्वशक्ति मत्वाद्यानन्त कल्याण गुणेनेदं सर्वं स्वाभिन्नं जगतुलीला संपादितमायाख्यस्व स्वरजस्तमो गुणात्मकसत्यमाय यास्वस्मिनृज्जत्युभुजङ्गवत्परमार्थतयैवमिथ्या सोमं प्रतीतिकाले ऽभादिभेदवत्स्वभिन्नं पर्यात्कत स्थितश्चिद्धाभिन्नं व्याप्त माच्छा दितंतेनेत्युंपास्य मित्यर्थः जगत्यामित्युप लक्षणेन स्वीयगोलो कादौचलीला विग्रह मेकानेकविधं जगवद्रूपंच भिन्ना भिन्न

वेद कहता है इस तरह की भक्ति के विना अपनी पानी तक मत पीओ मागृधः मत लोभ करो नैवेद्य मात्र के भोक्ता वनो यह धन किस का है किसी का नहीं अर्पण करने से उसी का है नहीं तो वागी की तरह समझे जाओगे अथवा तेनत्यक्तेन यहांसे लेकर कुलका यहीअर्थ हुआ कि उसके अर्पण कर उसीको नैवेद्य लगाकर उपभोग करो दूसरेके धन की ओर मत देखो,जब तुम्हरा अपना भी उसी का समझा गया है तो दूसरे की तर्फ क्या देखते हो वह तो कुछ भी स्वत्व का नहीं देखो मत लोभ करो भगवान् कहतेहैं योगक्षेमंवहाम्यहम् मेरेपरायण लोगों को न मिले का मिलाने वाला मिले रखने वोला मैं खुद बनता हू लोभ से कहां तक आशापूर्त्ति होगी आशा तो समाप्तहोने की चीजनही ऐसा माध्वमतमें अर्थ होसकताहै इनके मतमेंअभेदकी

तयादीक्षिते जीवन्मुक्ते स्यात्स्य मिति व्याख्यान लाभः तेनत्य-
क्तेन त्यागेन पित्रादिवद्भग वत्सातकृतेन भुञ्जीथाःस्वशारीरकेण
कर्मणासपादितंफलमिहा मुत्रचभुञ्जीथाः कस्यचिदन्यस्यदेवस्य
मनु जस्यवाधनं मागृधोऽभिकाङ्क्षीरित्यर्थः १५
रामानुजमते द्वैतमद्वैतंद्वैताद्वैतं सर्वमेवसत तेमद्वैतद्वैता द्वैता
द्वैतविषय कसकलश्रुतीनां द्वासुपर्णासर्वंखल्विदं ब्रह्मएकमेवाद्वि
तीय मेकोऽहं बहुस्यामित्यादीनांवादानां सर्वेषांसंगतिः वैराग्योप
चायकत्वंतेषां बसावेशश्च त्थंयद्यमात्माविद्रू पोणुर्जीवोनित्य
ईशोपिचनन्तकल्याणगुणः सर्वज्ञ सर्वशक्तिमानृश्रति सकल वैष्णव
सम्मतंतत्र सूक्ष्म स्थूल भेदेनचिदंशोद्विधा द्विविधोऽपि
प्राकृता प्राकृतभेदेनद्विविधः सूक्ष्मचिदचिदंशस्य भगवतः कारण
तयासर्वानुस्यूतं कार्यं तदात्मनातत्र यथावृक्षः पत्र पुष्पशा खाक
लापम कोविशिष्टा द्वितीयस्तथा समष्टि व्यष्टि स्थूल चिदचिदा



श्रुति जितनी हैं अत्यन्त समीपदासादि और राजकुमार राजा
जैसा मान जाय इसी तरह अभेद भावना मात्र को ही बताती
हुई उसी मित्र से भक्ति दृढ़ करती हैं
भट्ट भास्कराचार्य के मत में भेद अभेद दोनो ही सत्य हैं भेद
मुक्ति में हटता है जैसे हर एक वस्तु भिन्न २ (इलाहदा और
जगत रूप से एक (सर्व पद के अर्थ की ओर ध्यान दो सब कुछ
ऐसा कहने से एक ही मालूम होगा) हीहै वैसे विष्णु परमात्मा
एक ही उपादान कारण होने से सब कार्य उसी का स्वरूप
और भिन्न २ भी है तो इस मत में ऐसा अर्थ हुआ कि वह सब
जगत् देव विष्णु ने व्यापक उपादान कारण (जैसा घडे की
मट्टी) सामान्य रूप से कुछ विशेष रूप परिच्छिन्न (थोडी
सी जगह रहने वाला) द्वैतरूपप्राकृत या अप्राकृत लीला बतारै

तम कमिदं कार्यं प्राकृतं सर्वं विशिष्टं चाप्राकृतं यत्किंचिल्ली लाविग्रहादि [ ]स्वस्वानन्य भक्तीनां तत्सर्वं ईशेन सूक्ष्मचिदचि द्विशिष्टेन भिन्नतया व्याप्त मेवमत्य प्रयत्नात्त रक्षारव्यापत्रादि भेद तुलितमेदे विशिष्टाद्वैत नारायणरूपमेव सर्वं स्वात्मात्मनी यंचदासस्वाम्यादिव दत्मापितामित्र:पुत्रश्चेत्यादिव च्चनारायण शरणमन्त्रादिदीक्षितैरुपास्यमित्यर्थ:तेनभगवच्छरणतारूपसमाश्रि तावश्यकर्त व्यरूपत्यागेन भुञ्जीथा: संसारासारापारा वारवारा निधित: स्वात्मान मुद्धरत मागृध: कस्यचिद्धनं परकीयं धनंरक्ति पूर्वकंमा काङ्क्षी: वैराग्यवान् भवनारायणानन्याशरणइत्यर्थ:१९

वल्लभमते पूर्ववदेव जीवोणु रीशस्त्वनन्तकल्याण गुणो ऽगुणोपीतात्यमनन्त सर्वज्ञ: इत्युभयविधश्रुतिश्चय: शक्ति रूपश्च क्तिमानूशक्तिरमतोरभेदात्मा शक्ति रपितद् भिन्नापि परिणा

और सभी कुछ अपने रूप से और भिन्न २ स्वरूप से (जैसे घडे रूप से और मट्टी रूप से मट्टी ने घडा व्याप्त हो) व्याप्त है ऐसी उपासना भक्ति मार्ग से करो इसी से उस के पिता पुत्र मित्र आदि की तरह अर्पण कर नैवेद्य का उपभोग करो किसी के धन की ओर दृष्टि नदो वैराग्य वृत्ति से रह कर लोभ मत करो १४

निम्बादित्य के मत में भेद परमार्थ से व्यवहार में प्रतीत (मालूम देता) है मुक्ति में नहीं यह तो पीछले मत की की तरह बरोबर है परन्तु जैसे सांप रज्जु डोरी में प्रतीत हो वैसे माया से कल्पित अज्ञानी को नहीं भाल होता है तो कल्पित ही अज्ञानी को सत्य ही वास्तव से मालूम पडता है इतना भेद (फर्क) है तो इस मत में यह अर्थ हुआ कि ईश

रपितद्भिन्नाभिन्नपरिणामिनी तेनसएवपरिणामीचनित्यश्चनतु वेदान्तिवद्ब्रह्मविवर्त्तरूपात्त्रान्तिश्चापलभ्यमानत्वात्तेनतन्मतेने ग्रो विष्णुस्तेनेदंस्वपरिणाम रूपंजगत्यांत्रिलोक्यांवर्त्तमानंजगत् सर्वंप्राकृतम प्राकृतकंचयल्लीलाख्यस्व शक्तिय भिन्न स्वपरिणा मतया चिज्जडात्मकत्वेन भासमानंनितरां शुद्धाद्वैतचिद्रूपमेव तत्सर्वं खल्विदं ब्रह्महरिरेव भगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतोनतु भिन्नतनुः इतियस्यमतिः

परमार्थगतिःसनरोभवसागरमुत्तरति इत्यभियुक्तो क्त्या आवाहयंरमणार्थंविरचय्यव्याप्तमितिव्याप्तत्वेनपुत्रदारसुतादिके गोपिकावद्भगवतः कृष्णस्यत्म भूतंतदर्पण मितिकृष्णानन्यशरणे रूपास्यमित्यर्थः तेनत्यक्तेन पुष्टिर भक्तिरीत्या कृष्णमहाराज गोस्वाम्यर्पित पुत्रदारसुतादिना भुञ्जीथाः उच्छिष्टभुक्तंसंपाद

विष्णुसर्वज्ञ सर्वशक्ति अनन्त उत्तम गुण वाले ने यह सभ संसार अपनी लीला से सत्वादि गुण स्वरूप माया करके जैसे रज्जु में साप हो वैसे भिन्न अपने रूप से अभिन्न भी अपने रूप से ज्ञानो को प्रतीत होने वाला कल्पित किया इसी तरह विवर्त्त भिन्नाभिन्न हरिकी उपासना करनीचाहिये इसीसे उसी भगवान् का पिता मित्र आदि की तरह निवेदन कर उस की कृपा से यहां और परलोक का जो कुछ अपने शारीरक वाचिक नाम स्मृति भगवद्ध्यानादि शुभकर्म का फल धर्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्या दि परमात्मा संपत् भगवान् की कृपा से मिले वह भी तन्मयत या ही भगवदर्पण करते उपभोग करना चाहिये सर्व और देवता या मनुष्य के धन की ओर लोभ मत करो रामानुज के मत में भेद और अभेद और भेदा भेद सभी सत्य है इसी से भेदवादि

येथास्तेनचात्मानं संसारार्णवात्पालयेथा मागृधोऽनिवेदितंधनं तथासतितदर्पितमनर्पितं चधनंकस्यस्वकस्यापीत्यर्थः स्वान्यदत्तं तच्छरीरैस्सर्वथाऽग्राह्यं तदुपभुक्तनैवेद्यमेवग्राह्यमित्यर्थएतदेवान न्यशरणतावैराग्यसकलर्द्धिसंपादकंपारमैश्वर्यविभूतेरिहपरत्रचसाध कमित्याकूतम्१७ माहेश्वरनकुलीशपाशुपतशैवानांतटस्थमहेश्वरपशु पतिशिवाःप्रथमानांभिन्नास्तदपरेषामभिन्नाशिवशक्तयात्मानस्त तः परेषामीशचद्वयाच्याःतेनेशेनेदंसर्वं जगत्करण तयास्वाभिन्न तयास्वा भिन्न शिवशक्ति जनितलीलासंपादित मायाजनितप्राकृ-तःलीलाविग्रहात्मकं सर्वं जगद्व्यतिकाञ्चितलिङ्गसंभवंगूढलिङ्ग मगूढलिङ्गं चतत्सर्वं तेनकारणात्मनाव्यूढमावास्यंसंयुक्तं भेदेन१ अभेदेनवाव्याप्तं२ स्वशक्तिमत्स्थूलरूपेणदत्तं बीजंतदुदरस्थमेवेत्यु पासमित्यर्थः ३

और अभेदवादि सब श्रुति यथार्थ लग जाती हैं मायावादि की मिथ्यात्व श्रुति का वैराग्य के लिये जगत को अत्यन्त तुच्छ बतानेमें तात्पर्यहै रामानुजमतमेंजैसे पत्र,पुष्प,फल,शाखा,मूलादि वृक्षमें(जुदा जुदा)भिन्न२ है और समष्टि वृक्ष एक भिन्नहै तोभिन्ना भिन्न भी होगया एक शाखा दूसरी शाखा से भिन्न और वृक्षरूप से उसी से अभिन्नहोनेसे भिन्ना भिन्नहै समष्टि वृक्षपत्र शाखादि से भिन्न अभिन्न भिन्ना भिन्न होने से विशिष्टाद्वितीय है इसी तरह जीव अणुरूप चेतन अनेक भिन्न है जडरूप स्थूल कार्य भिन्न हैं और जीवस्व रूप से जडरूप से अभिन्न है स्थूल चिद् जडकार्य विशिष्टाद्वितीय है फिर सूक्ष्मरूप जीव भी धर्म ज्ञान प्रभारूप दीपकी नाई शिखा वाला भिन्न भिन्न धर्म धर्मी के अभेद से अभिन्न और भिन्ना भिन्न है जीव धर्म ज्ञान विशिष्ट

अन्तर्बहिश्च भूतानां सर्वत्रासौपरः शिवः लिङ्गाकाराभगाकारास्तस्मान्माहेश्वरीप्रजा इत्यभियुक्तोक्तेः तथैवहि सहस्रशीर्षेति प्राहश्रुतिः तेनत्यक्तेनतत्तन्मात्र परतानन्य भक्तयाबाह्याभ्यन्तर भेदभिन्नया भस्मरुद्राक्षधारणत्रिषवणस्नानलिङ्गवेद्यर्चा लक्षणात्मार्पण रूपत्यागेन भुञ्जीथा स्तत्प्रसादादिनेहा मुत्रचोप भुञ्जीथाः फलंस्वकायकर्मणः पालयेथाश्च संसारदुःखपाताघातादात्मानंनिमज्जन्तसुदुरन्तोऽर्ण वक्लेशघोरात् कस्यचिद्धनं मागृधोमाभिकाङ्क्षी स्तन्मात्रनिष्ठा श्चिन्मात्रानन्द रत्नार्णवेमग्नाः परकीयादिद्रव्यतो भिन्नासक्ता भवतेति २७

शाक्तानांमतेशक्तिरेवदेवी मायावच्छिन्न चिद्रूपापरमार्थ सत्त्वंस्त्रंस्त्राकुमारउतवाकुमारी त्यादिश्रुत्याएकोहंबहुस्यामेकाकीनरमते इति लीलाकैवल्यसुखानु भवरूपरमणार्थं जगत्सृजति

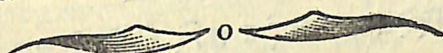
प्रत्येक भी अद्वितीय है फिर सूक्ष्म जड अपने कार्य प्रकृत से भिन्न २ रूप से और जड अपने रूप से अभिन्न होने से कार्य विशष्टा द्वितीयसूक्ष्म चित् जड विशिष्टकारणात्मक चतुर्व्यूह वासुदेवसंकर्षण अनिरुद्ध प्रद्युम्न) नारायण से अपनी मूर्ति विशिष्ट से सायुज्य से पहले जुदा २ रहते भी और सायुज्यमिल होनेसे अद्वितीय है वह सब प्राकृता प्राकृत विकार्य कारण विशिष्ट अनन्तकल्याणगुण इसीविराडाकारपरमात्माहरिविराटमायावाच्छिन्न (जोअपनी भिन्न क्रियों से अभिन्न होने से भिन्ना भिन्न है) से विशिष्टा द्वितीय है तो इससे स्थूल सूक्ष्म चिद् जड विशिष्टा द्वितीय नारायण से बिराट् नारायण का विशिष्टाद्वैत है ऐसा विशिष्टाद्वितीयसिद्धान्त है तोउसकेमतमेंस्थूलसूक्ष्मजडचिद्विशिष्टा द्वितीय नारायण माया विशिष्टा द्वितीय अनन्तकल्याण गुण ईश्व

मायाख्यालीलाख्या जडात्मिकातद्वच्छिन्न चिद्रूपाचसकल नुस्यूतादेवी यद्विरहेऽशक्तो विष्णुरीशोऽपि प्रेतमात्रपदभाजनइति सैवपञ्चपूतासना रूढामित्यत्रपृथक्त यानिदर्शनकालेवपर्यलसाई ज्ञातयाऽऽत्रास्यमाच्छादनीयमिदंसद्रूपणमिदमतत्वा शुद्धत्वपापविद्ध त्वादिभिर्ज्जगत्यांयत्किंचिदल्पंसर्वं परिपूर्णं चोत्कृष्टापकृष्टादिशि वादिकीटपर्यन्तंभगवतीप्रसादसंसेवनमृतेनखलुतद्विपरी तशुद्धत्वा दिसर्वज्ञत्व परिपूर्ण त्वादिकल्याणानन्तशक्तिगुणविशिष्टभवितु मर्हतितदाच्छादि तदोषमला अमलाएते भवन्त्यनन्त कल्याण गुणावहुविधकृत्रिम सुमजाति निषयोपरि भूसमाच्छादितोषर भूमिरिवतेन त्यक्तेन तदीयत्वेनस र्वानासक्ति रूपेणभावेनभुञ्जी- थाः नैवेद्यास्वादानन्द सन्दोहलक्षणमुपभोग मिहामुत्रच संपाद येथाउद्धरतचतद्द्रदेवता मयभावनाधः पातलाततः स्वात्मानंकस्य

ने विशिष्ट रूप से यह सारा स्थूल चिद् जड विशिष्ट अद्वितीय किया है(आच्छादनसे किसी को ढक देनेसे जैसे एक हों) वैसे ही परमात्मा चतुर्व्यूह नारायण की उपासना करते हुए उसी के समाश्रय लेकर शरण त्यक्त देह जालरूप अच्युत गात्रहोयकर अपने आत्मा को संसार से उद्धार करो दूसरे के धन में राग से मत लोभ दृष्टि हो अर्थात् वैराग्यवान् हो नारायणपरायण अपने वैदिक सभ कामो को करते रहो १६

वल्लभाचार्य के मत में जीव अणु और ईश्वर हरि अनन्त कल्याण गुण वाला अभेद होने से निर्गुण भी परिणामि लीला से जगद्रूप बनने से परन्तु साक्षात् निष्क्रिय भी माया रूपलीला विशिष्ट भी परन्तु धर्म धर्मी की एकता होने से शुद्ध ही जड रूप भी बन जाता है और चेतन भी वही है जीव अणु भी उसी

स्विद्धनमितितांविनेतिगर्धिं तृष्णांमाकुरुत जिह्नासितधन तृष्णा
परास्तेहिअशक्ता अखल्वा: शक्तिमतांवसुधैव कुटुम्बकमितिमान्य
अप्रसादलब्धात्तृष्णां कुरुतोपार्जयतशक्त्याशक्तिदन्नं च भुञ्जीथा
स्वीरवद्याचकवच्चान्यधना भिलाषुकामाभवतेतिभावः२१
वेदान्त व्याख्यानेपुनर्विज्ञानभिक्षुरपिनिरस्तसमस्तदोषोऽनन्तक-
ल्याणगुणईशोऽन्योजीवोऽन्योपि प्रकृतिसहकारेणच जीवीयादृष्ट
भोगाय संसारं कृतवानित्याहईशजीवयोर्वि भुतयाभेदो पिमुक्त्य
वस्थायांपरिच्छेदा भिमानराहित्येन साम्यंजायते इतिमनुते तन्म
तेतेनेशेनेदं सर्वं जीवीयंयत्किंचित् प्राकृतत्वादतितुच्छं वै रूप्यका
रितं विचित्रंजगत जगत्यांसंसारे तत्सर्वं व्याप्तंबहुलीकृतसूखव्या
प्त्या आच्छादितं वैरूप्या छादनेनच सारूप्यमुद्भवति तथातेन
तत्त्यागेन भुञ्जीथा: आत्मानं संसारार्णवात् कस्यस्विद्धनं प्रकृते

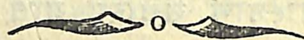


के कणकेवन जाते हैं इस तरह सभ श्रुति के एक वाक्यता से
विरोधि धर्म भी साक्षात् भी मानने की सर्वशक्ति सर्वज्ञ के भूषण
ही हैं यह माना है इससे उस के मत में ईश विष्णु बाल गोपाल
राधा वल्लभ ने यह त्रिलोकी में जो कुछ प्राकृत या अप्राकृत
(भौतिकसृष्टि क्रम के अनुकूल अदिव्य और संकल्प मात्र से
सृष्टि क्रम बिपरीत बने दिव्य) जो कुछ वह सभही अपना
स्वरूप लीला रूप शक्ति से अभिन्न रूप ही परिणाम (कार्य)
चित् जडरूप से भास मान निरन्तर शुद्ध अद्वितीय चित् रूप ही
जो सर्वं खल्विदं ब्रह्म (सभ यह ब्रह्म ही है) ऐसी श्रुति में
कहा है और हरि हि जगत जगत् ही हरि है हरि से जगत् का
जगत् से हरि का कुछ भेद नही ऐसा जिस की भक्ति कीमति
ही हैवही संसार दुःख सागर से पार उतर आनन्द बगीचे में

जिंघावितस्वत्वकंधनं मागृधो माभिकाङ्क्षीः! प्राकृतकं वैदुष्यंन स्वीयमितिभत्वासकलसंसारसंगहानेनपरमात्मगामान्बतालक्षणा त्मोद्धाररूपपालनमाचरथतदर्थं सदासद्सत्वादिगुणभंगवैराग्यवता श्राश्यमितिभावः २२

दयानन्द स्यमतमेत दुच्छिष्टमिवपरं जीवस्यध्याप्यस्यनित्य परिमाणुस्वीकारंवाधिकमसंभविनिरर्थकंनुकलस्य पुनरापत्तिरूपां सम स्यन्यूनतांचसस्वीच कारेतिश्च रूपध्याक्रियैव पराक्रियेति न्यायेननतत्खण्डनावश्यकते तिध्येयम् ॥ २३ ॥

साहित्यमकरन्दानन्द मधुपास्तुसुहृदयाभारतारससेवायं लब्ध्वानन्दीभव तीतिरसोवैस इति श्रुतिश्चतैरुपदिष्टोऽव्ययष्टपू र्णोरसेश्वरो वात्सल्यशान्तादिभेदद्वयोदशावता रएवेशस्वस्यनिखि लस्यात्मातेनेशेन स्याप्यत्म नाइदंसर्वं यतिकंचितका।

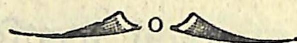


खेलेगा ऐसा (हरिरेवजगज्जदेव हरि रिहं सोजगतो नहिभिन्नत नुरितियस्यमतिः परमार्थ गतिःसनरोभवसागर मुत्तरसि ऐसा ही यहांभी वेदोंने कहाहै)अपने क्रीडा(रमण)के लिये व्याप्तहै इससे पुत्र दारा सुतादि गोपियों की तरह के प्रेम (पुष्टि पुष्टि भक्ति) से भगवान् राधा वल्लभ का आत्मा उसी के अर्पण कर श्रीकृष्ण शरण हुए उस की भक्ति करना उचित है उसी कृष्ण महाराज गोस्वामीजीके अर्पित धन भोजन पुत्र दारा सुत आदि भोग्य पुष्टि २ भक्ति से ब्रह्म भूत हुए ब्रह्म संबन्ध शरण मन्त्र ग्रहण से उच्छिष्ट नैवेद्य रूपको ग्रहण करते हुए भोग करो इसी परम प्रेम रूप भक्ति से अपने आत्मा का पालन करो अनिवेदित किसी प्रकार का भी भोग्य(धनादि) लो भद्दृष्टि से मत देखो वह धन किसी का नहीं बनाने वाला

रणरूपं लौकिकंवासना संपादकंतत्संपाद्यम लौकिकंच आवास्यं सकलानुभावा दिसमर्पित संस्कारात्मना स्वरूपात्मनाचाछादितं भवति दुःखि स्वरूपाच्छादकेनतेनहेतुनात्यक्तेनत्याग रूपानन्य शरणतयात्वंतु हरिगानादिनागीत्यादिनारदादिवद्रसनात्रशरणत या दुःखाभिषङ्ग संसारवैमुख्येन भुञ्जीथा रमनास्वादयेथाःकस्य चिद्धनं मागृधोमाभिकाङ्क्षीरित्यर्थः नकुलीशपा शुपतमाहेश्वर प्रत्यभिज्ञादर्शनवादिनस्त्रयस्ते षांमतेनमन्त्रान्तरे ष्वर्थोविशकलिततयैवनिरूपितोअत्रतुभेदविशेष स्याधिकतरमनुप लभ्यमानत्वात्प्रायएकत्रीकृत्यनिर्दिष्टाआंशिकभेदानुसंधानसना धिनापृथमेमाध्ववज्जडजीवेश्वरभिदामू रीकुर्वन्त्येव अन्येवास्तवि काभेदं चतुर्थाः शिवशक्त्याख्यमित्यसंविद्घे तननेकमेवनानारूपन्दा त्मकं कार्यारम्भकमाहुः कारणकार्या भेदवादिनामेषामुच्छिष्टमे

अपनी क्रीडाका परमात्मा कृष्णहैं उसी स्वामी गुरु और दैवत्य मूर्ति केतन्मयता से अर्पण किये बिना और गुरु रूप से उसके दिये बिना कृष्णशरणों को कुछ भी ग्राह्य(लेने लायक) नहीं ऐसी ही भावना ठीक यहां मनुष्य लोक और परलोक गोलोक सकल आनन्दरूपपरमात्माकीसंपत्का हेतुसमझिये यहअभिप्रायहै,शैवा केतीन भेदहैं एक नकुलीशपाशुपत और माहेश्वररे औरप्रत्यभिज्ञा दर्शनवादि शाम्भव और मन्त्रों में इन के अर्थ जुदा २ भी हैं इस मन्त्र में ज्यादह फर्कनपडने से इकट्ठेकर लिखदिये हैं पहलेजड जीव ईश्वर भिन्न ही माध्वकी तरह मानते हैं दूसरेअभिन्न तीसरे शिवचौथेशिवशक्ति रूपनित्यसंवित्(चेतन)एक ही नाना(स्पन्द) क्रियात्मक हुआ कार्य रूपहोजाताहै इसी मत की उच्छिष्ट सभी मत हैं कारणसे कार्य किसी ने भिन्न किसीने अभिन्न तिस में

बाभेदवादिनांमतजालम् अभेदविशिष्टा भेदद्वैताद्वैतशुद्धाद्वैत विवर्त परमार्थ सद्भेदाभेदमतभेदेनसमीक्षकस्वीकृतनिर्विशेषपर्य वसायिशुद्धाद्वितीयंचमतमपिसकला विरुद्धतया नित्यसंवित्कल्पप्र क्रियांस्वीकुरुतेएवतदन्येषामपिमधुकरवद्दूरीकरोत्येवोपादेयतत्वव स्तुच एतैस्त्रिभिरिपिशैवैर्मा याद्वारापूाकृतिकयाअपूाकृता स्वली लादेहाश्चोरीक्रियन्त एवतथाषट्त्रिंशत्तत्वानितत्र प्रकृतिर्म हदाख्या बुद्धिरहङ्कारोमनः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राख्य सूक्ष्म भूतानिपञ्च स्थूलभूतानि जीवश्चेति पञ्चविंशतिः सांख्यसिद्धानिशिवः शक्तिः सदाशिवईश्वरोऽविद्या कालोनियतिः कलाविद्यारागो मायाचयानमुञ्चति पृथगभेदेनो अपरत्राभेदेनेश्वरएव लीलेति कथ्यते ऽतएवैतेषांमते गूढलिङ्गयो षिदात्मकागूढलिङ्ग स्त्रीपुंसात्मकं तत्सर्वं लिङ्गाख्यपशुपतेरिया



किसीने भिन्ना भिन्न किसी ने विशिष्टाद्वैत किसी ने शुद्धाद्वैत किसी ने मिथ्या रूपकार्य मानते अद्वैत माना समीक्षक ने निर्विशेष पर्य वसायि शुद्धा द्वैतमाना क्यों किउसको किसी पूर्वोक्त से विरोध नहीं न कुलीशादि शैवों में प्रत्य भिज्ञावादि अपनी लीला से माया द्वारा प्रकृति के और लीला मात्र के विग्रह (संकल्प देह आदिषट्त्रिंशत्तत्वरूप जितनाजगत्मानतेहै वहसभ

---

† नोट—शुद्धानिपञ्चतत्वानि)शिव शक्ति सदाशिव ईश्वरअविद्या—पांचतत्व और काल ईश्वर—नियत-कला—विद्या—रागपच्ची सतत्वसांख्यवाले पांचज्ञानेन्द्रियपांचकर्मेन्द्रिय (चक्षु)नासिका त्वक्कर्णजिव्हाघ्राणवाक् गुदालिङ्गपाद, मनबुद्धिअहंकार पंच तन्मात्रा) रसगन्धस्पर्शशब्द भूतसूक्ष्म, पृथिवीजलतेजवायुआकाशपांचभूत प्रकृति जीवमायाविशिष्टचेतन

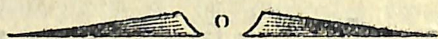
भूत्वैजातमिदानीं सेश्वैर्वालिङ्ग रूपेणाव्याप्तं भेदेनेत्यर्थः द्वितीयेचैश्वसंवसर्वं परमभेदेनो त्पादितंव्याप्तं धनियतिरूपादृष्ट सहायेन नियतिःप्रथमानामीश्वर परतन्त्रां प्रवाह नित्यप्रादुर्भाव वशालिनीद्वितीयाहीनां परमात्मनः सर्जनसहाय्य मायरति चतुर्थं मतेस्पन्दा त्मकसृष्टिः पञ्चत्रिंशत तत्वा त्मिकामायया विशिष्ट चितोरभेदेन शिवशक्त्यात्मकनित्यसं विदाख्यषट्त्रिं शत्तत्वाख्य परमात्मनः कार्यातद्भिन्नैव तन्मते कारण कार्यं योरभेदात तत्र पुरुषाःशिवा, गूढलिङ्गः प्राधान्येनभैरवीपदव्यपदेश्याःशिव गूढ लिङ्गा स्तन्नयेतुतत्वानि सृष्टिक्रमश्चतुलित एवभक्ति क्रियायाः पाशादिभेदश्च दिक्षामन्त्र क्रमादिभेदश्च अयंचतुलितइवाभेदन तुव्याप्तः

पारदादिरसेश्वरवादास्तु किंकित्सकानां नातीवोपयुज्यन्ते

गूढ लिङ्ग स्त्री रूप और अगूढ लिङ्ग पुरुष रूप वह सब लिङ्ग रूप परमात्मा से पशुपति से वर्तमान की तरह ही पैदा हुआ है उसी कारण लिङ्गात्मा ने व्याप्त है भिन्न रूपसे१ और माहेश्वर के मत में भी ऐसे ही सब सृष्टि होती है परन्तु भेदमात्र विवर्त्त है और असल में अभेद से ही व्याप्त है पहले शैव अदृष्ट नहीं मानते नियति (कानून) में उसे खुदमुख्तार मानते हैं यह तो बनाने वक्त का प्रवाह अनादि होने से नियम स्थिति का नहीं किन्तु प्रादु र्भावमाया लीन नियति(कानून-का प्रवाह अनादि होता है उस के सहाय से पर्व जन्म कर्मानुसार सृष्टि मानते हैं और प्रत्य भिज्ञावादि की स्पन्दात्मक पैतीसतत्व सृष्टि और माया विशिष्ट चित का अभेद होने से शिवशक्तयात्मक नित्य संवित्तत्व परमात्मा अपने से अभिन्नरूप

उपनिषत्कारस्तु निषेधनैतदर्थं नाग्रह इति ध्येयम् ।

अत्रेदं समीक्ष्यते तार्किकाणां माध्वानां विज्ञानभिक्षोश्च भेद वादांशो हेय एव पाशुपतानां च अभेद श्रुतिविरुद्धत्वात् अभेद भावनायतनोपदेशा दभेदतात्पर्येण तदुक्तभक्तिमाधवपादैर्योगीन मनिरीश्वरादि सांख्यानामपि विरक्तासंख्या स्वज्ञानान्मुक्तिरित्यं शेतात्पर्यात् कर्मणि च मीमांसकवदुपादेय एव हेयस्त्वस्वतरोऽशः श्रुतिविरुद्धत्वात्परस्पर दर्शनविरुद्धत्वापत्यास्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गाच्च नित्यनिरतिशयैश्वर्यस्वाभाविकीज्ञानवल क्रियाचेति श्रुतेर्योगजैश्वर्यं स्यान्यदीय स्ववातत्स्वीकारे स्वाभावि कत्वनित्यत्वाद्यनुपपत्तेः अन्येषां च शाङ्करातिरिक्तानां परस्परविरोधोवस्तुनि विकल्पासंभवात् विज्ञानभिक्षोर्मनन्दुर्यद्यानन्दस्य चतत्ससीक्षार्थोऽभ्यनरसात्नाधिकवैराग्यादेव विद्युतपरकारांशे उपादेयाइतरांशेतु



कार्य को पैदा करता है उस में पुरुष में शिव अगूढलिङ्ग होने से प्रधानभैरव व्यवहार है शक्ति गूढलिङ्ग है और स्त्री में शक्ति अगूढ लिङ्ग है इन मतों में तत्व सृष्टिक्रमप्रकार एकसे हैं भक्ति की क्रिया के संकेत पाशादि का कुछर भेद है महा भारत में कहा लिङ्गा कारा भगा कारा तस्मान्माहेश्वरी प्रजा यह श्लोक भी इन्हीं मतों का अभिप्राय कह रहा है सहस्रशीर्षा पुरुषः यह पुरुष सूक्तभी गौर करनेसे दशाङ्गुल मृगलिङ्ग लक्षण सहस्र पुरुषों में घटता है इससे उसी परमात्मा के परायण शैव मन्त्रदीक्षा प्रकारों से होय भस्म रुद्राक्षादि धारण त्रिकाल स्नान भजनादि से तदर्पण रूप त्याग से पशुपति नाथ के दण्ड से रक्षित हुए आत्मा का पालन करते हुए आनन्दोपभोग करो उसी स्वामी की प्रसन्नता से यहां और आगेभी प्राकृत और अप्राकृत

हेयाएवत मौक्षिनत्वादितितदंशत्यागे सूक्ष्मेक्षिकया तात्पर्य मेवसंपाद्यम् साहित्यरत्नेश्वरवादात्पूर्वेषां किन्तु मर्वेषांशाङ्करा तिरिक्तानां कर्मणोमुक्तिहेतु त्वमङ्गभावेन समस्तमुच्च यरूपेणवानान्यः पन्थाविद्यतेऽयनायेति श्रुतिश्च ज्ञानातिरिक्त भक्त्यादिकर्मणां मुक्तिहेतु त्वाभावमाहवरलभमतं साक्षान्निर्गुण सगुणत्वादि विरुद्धधर्माः शक्तिरर मनोरभेदात्स्वी कृतानोपपद्यन्ते विरुद्धत्वादेवजडांशस्यानुभव सिद्धत्वाच्चचितोजडानुपादानत्वा च्चविशिष्टाद्वैतद्वैताद्वैतादिष्वद्वैतवैशिष्ट्यादिअनृतमंततअतोऽन्य न्नेहनानेति श्रुतिविरुद्धं कूटस्थत्वादि श्रुतिविद्धं च कारण कार्य भावादि सर्वंमायंमत भेदोऽद्वैततात्पर्य कत्वंनोपादेयो भक्त्यं शस्यस्वी कार्यएवनिरुवा दित्यद्वैता द्वैतेपरमार्थ सत्वंरज्जु भुजङ्ग तुल्यत्वंच विरुद्धमसंभवि शाङ्कर पर्यन्तमसर्वोयंमतभे

देह से सुखोप भोग मिलेंगे अपनीर भक्ती का दार्ढ्य उसभक्ति वशको जरूर है ऐसे ही संसार समुद्रसे डूबे हुओं का उद्धार हो सकता है और किसी के धन की तर्फ मतदेखो स्वामि केअर्पण से उसी की कृपासे जोधन मिलता है उसीकी तर्फ दृढचित्त रह कर लोभ छोडो २०

शाक्त मत में शक्ति देवी नामा स्वरूपाख्यान भेदेन जो जपी जातीहै वही एक परमात्मा माया वच्छिन्न चिद्रूप परमार्थ सद् वस्तु है वहीत्वंवा कुमार उतवा कुमारी त्वंस्त्री त्वंपुमान् इन श्रुतियों से बालबालिकास्त्री पुरुष रूपवर्णन कीगई एकाकी नरमते एकोहं बहुस्याम् इस श्रुति में इकले क्रीडा (रमण) आनन्दोप भोग नही होसकता इस लिये एकही मैं बहुत से बनाकर वैसी बनजाऊं इसतरह उपदिष्ट क्रीडा के लियेसंसार

दः शिवशक्त्यात्म नित्यमंचित स्वमेकं स्पन्दरूपंतस्यैतत्कार्यं भूतंजगत्सोऽहं मितिप्रत्यभिज्ञाभोगमोक्षहेतुरितिज्ञात्मभयानामेव प्रत्यभिज्ञादर्शनंशिवपूजालम्बनम्रजोव्यपवृतः शाङ्करैःकारण कार्य भावोहि, तौयैर्मिथ्यामायाकल्पित ऊरीकृतोऽन्यैः परमार्थ मनवबुद्धि वैचित्र्यात्तेन सकलैकवाक्य तयाराग द्वेषपक्षपातरहि तैर्वेदतदुपजी विस्मृतिशास्त्रंप्रमाणयद्भिःईश्वरपरमात्मैवशक्तिः शिवोविष्णु र्भैरवोगणपति रित्यादिनामरूपैर्थपदेड्यध्येयोमाया वच्छिन्नाकारः स्पन्दात्मकान्तः करणावच्छिन्न भेदेन तन्मूर्तिं ध्यानेच भेदेनैव मिथ्याभूतेन निर्गुणचिन्मात्रांशज्ञानंच मुक्तिहेतु श्रुतिशिरः सिद्धं तदेवोपासितभक्तिहेतुतद्ब्रह्म इति साहित्यवादः

तमेवेतितदेव भूतंनित्यमुक्तात्म स्वरूपेणच जीवन्मुक्तः सोऽहंहरिर्भैरवइति प्रत्यभिज्ञासमासादितनिर्गुण पर्यवसायिशुद्धा

को पैदाकरती है माया इसकी जड रूपलीला का नामहै वह सभ न्यून अधिक सामर्थ रूपसें सभ में विद्यमान है जिस के बगैर शिव भी प्रेत है अगर इकारकोआपनिकालदेंतोशव होगा इसीतरह सकल काम केक्रीडा का हेतु शक्ति किसी में नही या उससे इलाहदह करवस्तु वनाना होतो विल कुल जडप्रेत या मुर्दा इनही शब्दों से समाधि से देखो) इसी लिये पञ्चप्रेत सनारूपं राजेश्वरी के ध्यान में ब्रह्म विष्णु शिव ईश्वर दास पाच प्रेतों परसवार ऐसा लिखाहै(काम के वेग के वाण सेवेधका रीधनुयाशक्ति को धारणसेअपनी समाधि में अगर अपने सेदेखो तोयहीबातहै वहपरमात्मा ईशाउसीने जगत् साराजगत्भराहुआ दोषों से) (अशुद्धता पापग्रास आदिसें) ढका है शिव से लेकर कीट पर्यन्त भगवती प्रसन्नता के विना और कोई दोषो को शुद्ध

द्वैतभाव: दैवकृपा समासादितभक्तिभावो निर्गुणानन्यशरण:
मिथ्याभक्त्या संपादितं मिथ्याभूतंपरमसुख मिहाप्यत्रच भुञ्जन्मै
स्वानानात्मा विचरेत् इत्येवशास्त्ररहस्य, मत्रैवसर्वशास्त्रैकवाक्य
तायाः सकलाचार्य वर्यसंमतेश्चसत्वात् तथारं भूतो निर्गुणपर्यंव
सायिशुद्धाद्वैत रूपोविवर्तित परमात्म जीवरूपतयाहरि भैरवएव
ईश्वरस्तेनेदं नानानामरूपतयो पास्यतयोपासकतया यत्किंचि

निष्फल पाप रहित स्वादिगुणों का संपादन से हक नहीं सकते
अगर बहीढके तोढके उसके ध्यानादि परायण ब्रह्मा शिव आदि
निर्मल और अनन्त गुणवाले ईश्वर वर्णन किये जासकतेहैं उसीके
अर्पण हुए उसी का नैवेद्य अपने आनन्द का हेतु उस की कृपा
से उपभोग कर यहां और परलोक में अपने आत्मा का उद्धार
करो नहीं तोसामर्थ्यके बिना करनेपर गुणभी दोषहोने सेबिना
करने पर भी अपराधी ठहरोगे बगैर शक्ति के किसी की धन
की ओर मत देखो स्वत्व में सामर्थ देने लेने की होतीहै सामर्थ्य
से स्वत्व होता है (स्वत्व नाम अपनेपन का है) विना शक्ति
और स्वत्वके किसीके धनकी अभिलाषा करनी उचित नहीं यही
वेद भगवान् हाथ उठाय पुकारता है उसी शक्ति की उपासना
से अपने में सामर्थ्य पैदा करो चोर या याचक की तरह किसी
के धन की तर्फ मत देखो २१

वेदान्त सूत्रों में विज्ञान भिक्षु भी जीव भिन्न और ईश्वर
भिन्न मानता है प्रकृति के सहाय से जीव के अदृष्ट के भोग के
लिये संसार को ईश्वर बनाता है और ईश्वर जीव का भेद होने
में भी सदोष अल्पज्ञता या परिच्छेदका अभिमान मुक्ति अवस्था
में हटजाता है तो जीव और ईश्वर समकोटि से होजाते हैं यही

तसाक्षात् परम्परयासकल रसावहत्वेन तदुपयोगिवेदं इश्यं सर्वं मावास्यमाच्छादनीयं तेननिर्गुणपर्यावसायिशुद्धता मात्रविशेष भूताहेयसच्चिदंशमात्रे सिध्यत्यदितिनिषेधरूपत्यागेननित्य मुक्तिस्व रूपस्याछादकस्यहानायशुद्धाभेदेनस्वीकृतानासंगेन भुञ्जीथा धर्मा धिक्यायस्वीयस्वाभिन्नतादिभावना भिदादिमार्पणा नन्दमुप भुञ्जीथानितरांतत्वज्ञानान्मुक्तस्वरूपेणतत्वज्ञानावृत्ति भक्त्युभय रूपयासोह मिति--

---

साम्य मुक्ति है ऐसा मानता है उस मत से ईश्वर ने यह सारा जगत् प्राकृत होने से जो तुच्छ मालूम होता है भेद के करने वाला यह सभी व्याप्त है अर्थात् अपनी व्याप्ति से ढका है उसी की तरह होसकता है इस लिये उसी के लिये वैराग्य से अपना पालनकरो संसारमेंमत डुबाओऔर वैराग्यके हटाने वाली तृष्णाको मतबढाओ और वैराग्य अवस्थामें धन किसी का नहीं ऐसा भाव है२२ जीवको व्याप्त मान कर ईश्वर और जीव के भेद और प्रकृति और इतना मानने में दयानन्द का भी मत विज्ञान भिक्षु के साथ मिलता है इस से उसका उच्छिष्ट ही मानना चाहिये मगर उसका अर्थ विज्ञान भिक्षु की तरह करने में भी जीव की व्याप्यता तो उसनेजैन या रामानुज की छायासे ली हो औरवह बननहीं सकती जैनकी तरह जीव व्याप्यहो तो मध्यम परिमाण होने से अनित्य हो जायगा अगर रामानुज की तरह परमाणु माना जाय तो प्रकृतिवश मुक्ति काल में उस के अपने सिद्धान्त मुताबिक सृष्टि करना और बढ़घट जाना नहीं बनसकता और प्रकृति वादमें परमाणु भी अनित्य है तो अणुमान कर भी उस जीवकी नित्यता मेरी रायसेदुर्घट है प्रकृतिवादि परमाणु कारण

निर्गुण पर्यवसायि शुद्धाद्वैत प्रत्यभिज्ञयामिथ्याशारीरकादिभक्ति
पुत्रंमित्थ्यैवोप भुञ्जन्तः स्वात्मानंपालयेथाःकस्यस्विदन्य स्यजिज्ञा
सितस्वत्वंधनंचौरतयायाचकतयावामागृधोमाभिकाङ्क्षीरित्यर्थः
अत्रशुद्धाद्वैततोऽपरिणामि त्वपरमार्थसत्यत्वादि सहदेववैलक्षण्यं
निर्गुणपर्यवसायिपदंविवर्त्तवादवत् प्रतियोगितयाभासमानमपि
स्पन्दरूप विशिष्ट प्रत्यभिज्ञायां निषेध्यत्वेनद्वैतं नावहतीति

प्रकृतिमानकर परमाणु नित्य माने यहमेरी बुद्धिमेंनहीं आसकता
अगर प्रकृति हमने नित्यमानली तो परमाणुका नित्य होनानतो
बुद्धि में आसकता है न नित्य को प्रकृति से उत्पन्न मानना हो
सकता है इत्यादि और निष्पक्ष होकर निष्पक्षता के प्रेमी
दयानन्द की उक्ति को बिचार लें अधिक कहने में जरूरतन ही
हम दयानन्द के विरोधी नहीं हैं २३

साहित्यर सके आस्वाद के मधु पलोग मानतेहैं सो वैसे
श्रुति में एक आस्वाद के देने वाला ईश्वर परम आनन्द दायक
श्रुति में जितलाया है वही आठ भेद अपने और करुण विप्र
लम्भ और शान्त के भेदसे दशतरह का होता हुआ जो भीकुछ
संसार में है उसी स्वरूप होजाता है स्थायि रूपसे इस सभ
संसारको लौकिक याअलौकिक विभाव अनुभाव संचारि रूपसे
व्याप्त कर रहा है(विभाव)कारण (अनुभाव) कार्य(संचारि)
साथ रहने वाले भावों से अपने स्वरूप और अपनीर रतिआदि
के अनुभव के संस्कार रूप से आच्छादित है उसी दुःख के ढकने
वाले रसरूप परमात्मा के अनन्य शरण होनारदादि की
तरह उसीके पोषकहरिगीतआदि नानारसकीर्त्तन करतेहुएदुःख
संबन्धि संसार से विमुख हो (त्याग) कर रसहीका आस्वाद
करो किसी के धन में लोभ मत करो २४

मान्तिविषय त्वेनसूचनाय अद्वैतमैक्यं परमात्मैश्वर्य विशिष्टतया जीव स्वहरिभैरवतासंपत्ति रूपंतथचेदृशमेवैहिकामुष्मिकसान्द्रा नन्दनिर्भर सुख भोग फलकज्ञानकर्मात्मक भक्तिं कुर्वन्तः श्रवण मात्रतोनित्यमुक्तत्वेनजीवनमुक्ताश्चावृत्तिरूपांभक्तिरूपांचपृत्य भिज्ञांमा श्रिताविचरे युरित्यभिप्रायः श्रुतिशिरः प्रभृतिसर्व शास्त्राणा मिति, दिक् ॥ २५

एक और भी चिकित्सकों कारस ईश्वरमतहै वह तो पारा कोईश मान नाचिकित्सा के उपयोगीहैं परमार्थमें उसकाबहुत उपयोग नही और शारीरक स्थानसुश्रुतमें योग का उच्छेद से श्वरसांख्य ही माना है, वह लिख ही चुके हैं इससे उसकेमत का और अर्थ नहीं लिखा हो तो सकता है

अब इन सभ मतमें अगर समीक्षा की जाय तो तार्किक माध्व विज्ञान भिक्षु इन का भेद वाद है मगर वह भी अभेदश्रुति ओं से विरोध हटाने के लिये अभेद भावना करना मानते है इस भेदांश में तात्पर्य रखकर विरोध ठानना उचित नही एक वाक्यता रीति में भेदांश उनका छोड देना चाहिये क्योंकी भावना अगर झूठी है तो मुक्ति परमात्मा प्रसन्नता आदि का हेतु उसे मानना कठिन होगा और वेद को असत्य का उपदेश करने वाला मानना पड जायगा अगर सत्य माना जांयगा तो फिर भेद सिद्धान्त रखना नहीं होगा इत्यादि दोष भी भेदांशन छोडने में पड जायेंगे गौतम और सांख्य मत में ईश्वर नहीं माना परन्तु उस का भी विरक्त असङ्ग अपने ही तो स्वरूप का देखना मुक्ति हेतु है इसी के दृढ कराने में तात्पर्य है ईश्वर निषेधांश है यही रखना चाहिये सर्व तन्त्र शास्त्र सिद्धान्त

वैशेषिकै रीशउपास्य उक्तोयोगी श्रीगौतमभाष्यकृद्भिः सांख्यैरनास तत्रचितश्च योगीतदेकदे शरिथततर्ककृद्भिः१ क्लेश दिहीनः पुरुषश्चास्तुपातञ्जलैरीश उपास्यउक्तोमीमांसकैरत्व तम विद्यांसुकर्मतरछेषतान्यायत वद्यतेहि २ श्रीशाङ्करैरात्मनि सर्व मिथ्याप्रकल्पितंस्याश्रयमितिप्रदिष्टम् अमङ्गसर्वात्मकनिर्विकल्प विज्ञानतो मुक्ति मयप्रबोधः ३ मार्ध्वैर्हरिभिन्नतयोक्तएव श्री

एक करने में प्रति तत्र सिद्धान्त (इलाहदा २ अपने २ शास्त्र का सिद्धान्त) अभ्युगमवाद (किसी एक पदार्थ को दृढ सिद्ध करने के लिये उसके उपयोगी शास्त्र बनाने में कुछ मान लेना (याने फर्ज करलेना) ही माना जायगा वहसभ असल में छोडा हो जाता है उस से परस्पर दर्शन विरोध और श्रुति विरोध (उलटा मानना) सभ हट जाता है किसी श्रुति स्मृति का नैरर्थक्य (निकम्मा या प्रक्षिप्तपन) भी नहीं माना जाता मीमांसक ईश्वर का न मनाना इत्यादि भी इसी तरह कर्म को प्रधान बताने के लिये अभ्युपगमवाद ही ठहराना चाहिये वैसे हीआगे जितना दूषणका हीस्सा कहतेहैं वहभी अभ्युंगमवादहैं जैसे योगीइश्वर गौतम ने माना है योग से पैदा हुई शक्ति धर्म आदि अनित्य बनाने पडेंगे तो नाश वान होंगे और स्वाभाविक ज्ञानवल क्रिया इत्यादि श्रुतिओं में परमात्मा की नाना तरहकीविचित्रसभसेवडीऔरस्वाभाविकी(स्वभाव सेसायही रहने वाली) नित्य शक्ति ज्ञानवल क्रिया आदि मानी हैं उस से उन से विरोध होगा और भी शङ्कर से भिन्न साहित्य पर्यन्त वालों की अपने २ सिद्धान्त के सभी ईश्वर इलाहदा२ तरीके के मानने में विरुद्धोका समुच्चय एक वस्तुमें होना कठिनहै विकल्प

भास्करै रच्युदिताभ्युपासित: भेदाभेदापिचेश्वरेण विवर्त्तित
स्त्वेवमवादिनिम्बै:४ विशिष्टाद्वितीय:समुक्तोप्युपास्यश्चतुर्व्यूहना
रायणस्तच्छरण्यै:विशुद्धाद्वितीय: परोवल्लभैस्तदुपास्य:समुक्तो
हरि:पुष्टिभक्त्या५ पशुपतिरीशोभेदात्पशुभिर्जीवैरूपास्यइत्याहु:
नकुलीशाख्या: शैवास्तच्छरणै:गै सिद्धमातङ्गै: ६
माहेश्वरैरभेदाद्यमी शोभक्त्यु पास्यत्वात् प्रोक्त:शरणं
भीते: सांसारिकयानु भज्ञनंहेतु: ७ शिवशक्त्यद्वैतात्मशाक्त:

——— :o:

(होना भी वैसे और न भी होना) भी सिद्ध वस्तुका नित्यका धर्म नहीं साध्य (बनाने लायक) वस्तु ऐसा माना जासकता है (नित्य) सिद्ध नही इस से भी सम का विशेष शक्ति माया अनादि की उपाधि वाला ईश्वर स्वाभाविक अनादि शक्ति प्रधान शङ्कर से सिद्धान्त में ही परम तात्पर्य ठहरता है और शङ्कर से अतिरिक्त कर्मको मुक्ति मानने वाले(नान्य: पन्था विद्यते ऽयनाय ज्ञान के बिना दूसरा मुक्ति काहेतु नही इस श्रुति (जो ज्ञान ही को मुक्तिका हेतु कहती है)से विरुध होगा इस से भक्त्यादि कर्म विशेष|आनन्दरूप भक्ति (जो की मुक्ति सी सालोक्यादि मानो गई, के ही हेतु हैं

वल्लभाचार्य के मत में साक्षात् निर्गुण सगुण आदि विरुद्ध धर्म जो शक्ति और शक्ति वाले को एकहोने से माने गये हैं वेविरुद्ध होने से ही अगर हठ छोड़ा जाय तो मानने में नही आसकते और जडचितों काअनुभवविरुद्धउपादानउपादेयभावसाक्षात्नही हो सकता इसी से शङ्करने माया द्वार मानाहै विशिष्टा द्वैत आदि सिद्धान्तों में भी विशिष्ट आदि अंश (अतोन्यदार्त्तम्)आत्मा चिदंश से भिन्न मिथ्या है(होताहुआ भी वस्तु तो नही)ऐसा

सर्वत्रोसौहिशाम्भवोदेवः स्वात्मोपास्योमुक्तये सिद्धये शैवैस्त थान्यैस्तु ८ शाक्तैरात्मा शक्तिःसामर्थ्यं येनचैश्वर्यं तद्रहितः शव एवास्माद्देवापूजनीयोकतादृयानन्दस्तुविज्ञानभिक्षुच्छिद्दैर्निग्रथ केरहेतुकैः शवनतैमुक्तोरपत्यादिभिर्गतः १०

गोतमौलूक्य भाष्यीयमतं स्वाद्यव देवतत्

———:o:———

जो श्रुति में लिखा है उस से विरुद्ध है इस सेअभ्युगम वादरख कर यह सभी बखेडा अद्वैत के दृढ कर ने के हेतु उसी तात्पर्य से उपा देयहै और भक्ति अथभी इन झगडों से तत्ववस्तुहै कारण कार्य एक है और शक्ति शक्तिमान् एक है ऐसा तादात्म्यवाद विशिष्टाद्वैत आदि सभी मता वलम्बी मानते हैं तोयहतो सभी शुद्धाद्वैत में ही आयगिरे निम्बादि त्यविवर्त और परमार्थ सत भद को कहता हुआ अभेद में दृढपक्ष कराता हुआ माया द्वारा माया विशिष्टरूप ईश्वर से शुद्धाद्वितीय संसार का हेतु मिथ्या संसारी मानताहै तो परमार्थसत् कहना उससेनहीहो सकताकेवल शुद्धाद्वितीयइतनाविशेषहै अपने मायाभिन्नाशमेपहुंचाऔरभक्ति दार्ढ्य यही इस मतकातोअर्थ यहहैशङ्करसे लेकर अद्वैतविशिष्टा द्वैत द्वैताद्वैत विवर्त द्वैताद्वैत शुद्धा द्वैत सभी नित्यसवित्तत् एक तत्वहै स्पन्दरूप उसी का जगत् कार्य है कारण कार्य का शक्ति (ताकत) शक्ति मान् (ताकत वाला) का अभेद (जुदा हैन ही मालूम होना) है सो हम ऐसी प्रत्यभिज्ञा (याद प्रत्यक्ष यह वोही मेरायार है की तरह होना) भक्तिद्वाराऔर भोग मोक्ष का हेतु है ऐसा)शाम्भवमत शिवसूत्रप्रत्य भिज्ञाकारि का आदि सिद्धान्त का ही रङ्ग बदलाहुआ बोली बदल कर प्रतीत होता है इस सभ मतके साथ राग द्वेष छोड कर पक्षपात

मन्त्रव्याख्याननार्गे तु नदुच्छिष्टं च भक्तिकम११द्यानन्दि मतं प्रो-
क्तं शतपथविरोधितत्ततद्दीय देवपूजादिव्याख्याप्यन्या न्यवाचिहि
१२विज्ञानभिक्षु सांख्यीयोच्छिष्टं तदपि नेष्यते प्राकृताणोर्हि नित्यत्वं
स्योत्यात्तस्य विरुद्ध ते१३ विज्ञानभिक्षु जीवस्य-
सारुप्यं प्राप्यमुवाचह ईशविज्ञान तस्त्याःगाद्वैराग्येणहि मोचनम्१४
सान्द्रानन्दसुनिर्भरः सुकृतिभिः प्राक्पुण्यपुञ्जार्जनैर्लभ्यः स्वाखि

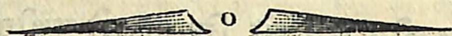
——— :o: ———

और मत्सर छोड़ एक वाक्यता से वेद स्मृतिको प्रमाण मानने वाले सब की एक वाक्यता विचारें तो ईश्वर परमात्मा एकदेवी शिव विष्णु भैरवगणपति सूर्य आदि प्रधान नाम ध्यान भेदसे माया वच्छिन्नचित अन्त: करणा वच्छिन्न के अभेदसे उपास्य है विशेषण सालोक्यादि मुक्ति विशिष्ट का हेतु शुद्धा भेद ही है और माया मायिक अनादि और मिथ्या(होता भी है नही)है निर्विशेषचिन्मात्र अंशकाज्ञान मुक्ति काहेतु हैयह उनके अपने शब्दोंसे सिद्ध होताहै वहीनित्य मुक्त(जीव न्मुक्त वही में भैरव विष्णु हरि आदि) सोहं भैरवो हरिः इत्यादि प्रत्य भिज्ञा (प्रत्यक्षवाद) से निर्गुण निर्विशेष में पर्य वसान(आखिरी) जिसका ऐसा शुद्धाद्वैतीय भाव है वैसे होने से निर्विशेष अंशसे मुक्ति की आखिरी [काष्ठा] पहुंचा क्रम में यहा मिथ्या (वाधिता वृत्ति (भ्रान्ति को भ्रान्ति जानने वाले की तरह होते हुए को नही औरहै दोनो अंशोंसेवास्तविक और व्यवहार रीति से) जानता हुआ भक्ति और उस का फल इस और लोक में सुख का हेतु भैरव है ऐसे ही शास्त्र का रहस्य है यहीसमीक्षककाभी आचार्यऔरशास्त्रके विरोधहटानेसेसिद्धान्त इस मत से यह अर्थ हुआ कि निर्विशेष पर्यवसायि शुद्धाद्वितीय

लदु: खजालहरणे नैदाघघर्मादिहृत नूनंयस्तुपयोदएवसरसो विष्णएवादिमूर्त्ति:स्थित: भाव्य:प्राहुरिदं सुहृद्यरसिका:शार्दूलवि क्रीडितम् १५

परमात्मा भिन्न जीव रूप जो मिथ्या भी प्रतीत होरहा है वही भैरव (शक्ति गूढलिङ्ग) ईश है उसी ने नाना नामरूपध्यान उपास्य उपासक सभ रूपों से जो कुछ जगत है आवास्य अर्थात आच्छादनीय है निर्विशेषपर्य वसान से सच्चिदं शमात्र सत्यबता कर उस से भिन्नहेय को टिको दृढ करने से चन्दन की घसावट से अशुद्धि दूर करने की तरह मिथ्यांश निषेध सहित ढका है शुद्ध परमात्मा के साथ अभेद भाव से जीव के अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्यद्वा परमात्मा के धर्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य बढ़ाने से जीवभाव ढका है उसी निर्विशेष पर्य वसान रूप निषेध दृष्टि वही अनासक्तिव वैराग्य उस त्यागसे अपने अभिन्न देवार्पण से नैवेद्या नन्द का उप भोग करो और तत्वज्ञान से असली अपना नित्यमुक्त रूप समझते हुए निर्विशेषवृत्ति तत्वज्ञान और भक्ति दोनो प्रकार के सोहं पदार्थ की निर्विशेष पर्यवसाय शुद्धाद्वितीय प्रत्यभिज्ञा से मिथ्या शारीरक इस और परलोक के सुख सभ देव सालोक्यादि में किसी भक्तिके फलको सत्कर्म सहित भोगते हुए अपने आत्मा का पालन संसार के झगड़ोंसे बचाने से करो और किसी को (जिस में किस का यह है इस का मालिक कौन है ऐसे) धनको और चोरी या मांगना साहस (जबरदस्ती) आदि से लोभ दृष्टि मत करो यही वेद भगवान् उपदेश करते है सभ आचार्य वाक्य पुष्पों के इसी मधु से मधुप होना चाहिये २५

शाङ्करार्थोऽस्मदीयश्च भिन्नस्संन्याससम्भवस्तयाआनन्दाख्यगिरेरर्थो
टकलौ बहिर्निषिध्यते १६ सर्वेषांमतिमास्थिता: किलसमीक्ष्याऽथा
पिहेयंमतंग्राह्यं पूज्यवसस्तमान्यमु निमानेनापिसारंस्थिरंच



वैशेषिक ने सभ जगह व्यापक बतलाया ईश्वर योगीजीव ही गोतम ने ठहराया प्रकृति सांख्य बतायगये नत्य क्लेशहीन बतलाया योगी सांख्य ने भिक्षुने अज्ञाख चित जो जितलाया १

मीमांसक भी कर्म के दृढ करनेके हेत ईश्वर मानना छोड कर करगये संकेत २

श्रीशङ्कर भगवान् भी कल्पन मात्र संसार का हेतु सभ संसारका औपाधिक माने डटा निष्कल शुद्धनि रामयजीवपरेश में जो रटा उसी तत्वमें मुक्त हो परमात्मामें करो छटा ३

माध्व भेदके धक्के आये चक्कर रखा मगर उन्हों ने यार की भक्ति रखी चखा ४

भास्कर भेदा भेद से उस की भक्ति लखा विवर्त भेद परमार्थ ही अभेद निम्बार्क रखा ५

माया विशिष्ट है अद्वितीय शाखावत् जिमि वृक्ष रामानुज का सिद्धान्तयों आश्रित माने शिष्य ६

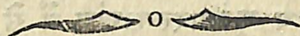
शुद्धाद्वैत हरियों रटा तन्मयता से नाट्य कहा सभ अपने भये राम कृष्ण हरि भाट्य ७

वल्लभ के सिद्धान्त में हरि एक ही सभ हो भाव ध्यान ध्येय का भेद भी नामान्तर के हाव ८

पशुपति ईश्वर शैव भानकुली शोक भेद माहेश्वर जग कारण कहें साथ अदृष्ट के खेद ९

शिव शक्त्यात्मा शिव वही संविन्मात्र यहसारत्यन्दमा-

स्य माठय विवारवार गहनैर्मन्त्रार्थ युक्ति ग्रहंशोत्वाब्रूमहदंशु
निंगुण परंशुद्धा द्विती यंमतम् १७

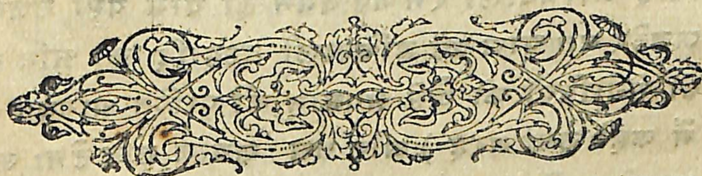


यिक जगन्मय शाम्भव का सोहंभार १०

शक्ति जगन्माता वही सभ का पहला मूल शाक्तिक माने
सामर्थ्य हीन शव मे क्यों है भूल ११

वेदान्त भिक्षु ईश्वर भिन्नही तार्किक किवीजू ठ दयानन्द
भी वैसेही परजीव व्याप्य यह झूठ १२

माने साहित्य रस सरस्वात भास सभ सार हरिगुण गायन
भक्तिमय मूर्त्यष्ट कर संसार समीक्षक भी माने जिसे निर्वशेष
परभाव शुद्धाद्वैत प्रेम का पुष्टि के हाव १३
सभ नाम रूप हरि भैरव के ध्यान भेदमें जाव प्रेम भकितके वश
हरि सर्वात्मा के चाव १४



वल्लभ आचार्यों का पुष्ठि भक्ति में दृढ आग्रह है इस से उन के संप्रदाय ग्रन्थ प्रमेयरत्नार्णव में से इलोक लिख कर उन के जितलाने के लिये भाषा अर्थ किया जाता है पुष्टि विवेक पृष्ट १९

श्लोक–सर्वसाधन राहित्यं फलाप्तौ यत्रसाधनम्
फलंवा साधनंयत्र पुष्टिमार्गः सकथ्यते १

भाः जहां फल रूप भगवान् की प्राप्ति में हेतु सभ साधन का अभाव है भगवच्छरण होकर (जैसा इस टीकामें तामस प्रकरणीय फल प्रकरणे ऽन्वेषण गुण गानादि सत्कार दान दे न्येप्रकटी कृते ब्रजवधूनां भगवदवाप्ति कथनम् ऐसा लिखा है अर्थात् और भगवान् समीप आई ब्रजाङ्गना गोपीलोगों का भगवान् के निषेध करने पर पीछे छिप जाने पर उसकेगुण गान या ढूंढना आदि सभ छोड छाड रोय २ पियघायल भई आखें भई अन्धियाली रैन गई चैनन ही पास पडो उजयाली हरि अबदेर मत प्राण पडे हथियाली इत्यादि की भांत केवल रोने ही सेगोपियों को जैसे भगवान् की प्राप्ति भागवत गोपी गीत में कही उसी तरह) और सभ खयाल छोड देना अथवा जैसे भगवान् ही ब्रह्मा विष्णु आदि होकर फिर कृष्ण ही हुए इस तरह भगवान् खुदही फलरूप और खुदही साधन रूप (उपाय) हो आमिले इसी तरह की भक्ति का नाम पुष्टि २ मार्ग है १

श्लोक–अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्रवैदिकी
नयत्नादन्यथा विघ्नः पुष्टिमार्गःसकथ्यते २

और सब उपाय छोड बिना यत्नकेवल प्रेम प्यारे भगवान् के अनुग्रह से ही लोक (स्मृति) वेद के कर्म फल सुख की सिद्धि होती है जैसे गोपिओं को वैकुण्ठ सुखकी प्राप्ति (अभ्या पतं निशिशयान मति श्रमेण लोकं विकुण्ठमुपनेष्यति गोकुलंस्म) दिन में अपनें काम लगे रातको सोये पडेभी गोकुलके लोकोंको रात्रि रासमण्डल में और मृत्यु के बाद भी बैकुण्ठ को भगवान् लेगये ऐसा ब्रह्मा का वाक्य है और यत्न करने पर भी बिना पूर्ण प्रेम प्यारे के आम्बिका बन की यात्रा में नन्द आदि को विघ्न आवडे ऐसे भगवान् की दया के बिना जहां विघ्न पड जाते हैं वही पुष्टि मार्ग हैं २

श्लोक–यत्राङ्गीकरणेनैवयोग्यतादि विचारणम्
आविलम्बः प्रभुकृतः पुष्टिमार्गः सकथ्यते ३

जहां प्रभु जीव की योग्यता का भी विचार बिना करनेमें ही अपने प्रेम प्यारे की ओर गूढ दया से भीगे कटाक्ष फैंकते शीघ्र ही स्वीकार करलेते हैं कुछ भी प्यारे भक्ति के देर नही करते जैसा पशुआदि को मुक्ति सालोक्यादि की संभावना नहीं परन्तु केवले नहि भावेन गोप्यों गावःख गामृगा

केवल भगवान् हमे कब मिलें गाई को गाई बनकर पक्षि को पक्षि बनकर मृगों को मृग बनकर मनुष्यों को मनुष्य बनकर भगवान् मिले इसी तरह के प्रेम भाव सेगोपी गाई पक्षि मृग सभी तरगये ऐसा लिखा है इसी तरह भगवान् न्यूनउत्तम भाव को छोड स्वीकार में कुछ भी विलम्ब नहीं करते (इस श्लोक का और यह भी अर्थ होसकता है कामशास्त्रों में पशु पक्षि

मनुष्य आदि के नाना प्रकार के रनि के आसम जैसे लिखे हैं उसी तरह की पशु पक्षि आदि गोपी भाव ही से तरगई) इसी का नाम पुष्टि मार्ग है ३

श्लोक—स्वरूप मात्रपरता तात्पर्य ज्ञानपूर्वकम्
धर्म लिष्ठायत्रनैव पुष्टिमार्गः सकथ्यते ४

जिस में भगवान् स्वरूप में परायण होना तात्पर्य समझ कर और उस भगवान् के प्रेम में विघ्न डालने वाले धर्म सभ बिलकुल हटाना यही हो वह पुष्टिमार्ग कहा जाताहै ४

जैसे लिखा है भगवान् ही कि उक्तिमें श्रवणाद्दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावो नुकीर्तनात् सुनना देखना ध्यान गान इनही में मेरे ही भाव कोदृढ रखना यही प्रेम दृढता का लक्षण है ५

श्लोक—यत्र प्रभुकृतौनैव गुणदोष विचारणम्
तत्कृता वुत्तमत्वज्ञाः पुष्टिमार्गः सकथ्यते ५

जहां रोना भगवान् के माता के मारने पर गोपी वस्त्रोंके चोरी खाह सआदि हीन (बुरे) कामों में बुराई के और कालिय सर्प आदिके घात गोबर्द्धन आदि का उठाना आदि बहुत भारी कामों में उत्कर्ष (बडाई) की बुद्धि वाले नही किन्तु भगवान्की कुछ भी लीला है वह सभ ही से उत्तम ही सभी हैं इसी बुद्धि वाले ही हों वही पुष्टि मार्ग हैं

श्लोक—नवेद लोक सापेक्ष्यं व्यवथा यत्रवर्त्तते
सापेक्षता स्वामिसुखे पुष्टिमार्गः सकथ्यते ६

जहां जोभी अपना कामहै वह सभ उसीमालिक भगवान्

स्वामी (इसका अर्थ उन के मतमें गुरुभी है वही उन केमतमें गोस्वमीजी महाराज लिखे जाते हैं कृष्ण ही माने जाते हैं) के सुख के लिये ही हैंयहां के यापरलोक के लिये नही वही पुष्टि मार्गहै जैसा इसी श्लोक की टीकामें(दिष्टया पुत्रान्पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानिच हित्वावृणीत यूयंयत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम्) पुत्रपतिदेहवन्धुघर सभको छोडयाने सभ का फिक्र को छोड उस कृष्णचन्द्र भगवान् को वरलीव जो वरे हो सो व उभागी हो ६

श्लोक—वरणे दृश्यते यत्र हेतुर्नाणुरपिस्वतः
वरणंचनिजेच्छातः पुष्टिमार्गः सकथ्यते ७

भगवान् स्वीकार में जीव को साधन (उपाय) की जहां जरूरत नहीं रखते अपनी इच्छा से योग्यों को भी प्रेम की पूर्णता के नहोने से छोड देते हैं प्रेम की दृढता के कारण से अत्यन्त वुरी जात में भी पुलिन्द आदि में फस जाते हैं वही पुष्टि मार्ग है श्रुति में लिखा है यमेवैष वृणुतेतेनलभ्यः जिस को वरले वही उनको पायेगा ७।

श्लोक—यत्रस्वतन्त्रता भक्तेराविर्भावान पेक्षणात्
पूर्वानुभवरूपत्वं पुष्टिमार्गः सकथ्यते ८

जहां वियोग अवस्था में भी गोपीजन की तरह इसी के गुण के गान से भक्ति को ही स्वरूपा नन्द के देने में स्वतन्त्रता है सभ प्रकार के पहले संभोग रस का ही विप्रलम्भ अवस्था में भी होनाहै वही पुष्टि मार्गहै प्रेमय रत्नार्णव पृष्ट ३२ अपनी कलम से गोस्वामी जी लिखते हैं अयंपुष्टि मार्गीयः सर्वात्मभावः शृङ्गार रसमध्यपाती)यह पुष्टि मार्ग का सभको आत्मा

भगवान् (राधा या कृष्ण समझना) शृङ्गार रस के भीतर है ९

यहां भी साथ हां लिखा है पृ० ३७एतद्भक्ति प्रवर्त्तं का व्रजभक्ता एव भगवत्युक्त श्लोके भक्तो भिन्नुत्तमा भक्तिः प्रवर्त्तिताद्दिष्ट्या मुनी नामपि दुर्लभा अर्थ इस भक्तिके प्रवृत्त करानं वाली कृष्णचन्द्र की पैहली शिष्या गोपी ही है जैसे श्लोक में भगवान् ही ने कहा उत्तम कीर्ति भगवान् में तुमही ने भक्ति प्रवृत्त की है जो मुनी लोगों को उपतपश्चयोदेह का सुखाना आदि से भी मुश्किल मिलती है ८

श्लोक—लोकवेदभया भावो यत्रभावातिरेकतः
सर्वबाधकता स्फूर्त्तिः पुष्टिमार्गःसकथ्यते ९

जहां भगवान् की भक्ति के बढ जाने से पुत्र पति आदि का और लोक परलोक का कुछ भय नहीं (क्यों कि गोपियों को तो मिलना चाहिये परलोक में भी जाकर उत्तम गति वह भगवान् तो प्रेमी ही ठहरे तो भय किसका और गोस्वामीजी के शिष्यों को आगे यदि यम माने भक्ति को तो तो फिकर ही कुछ नहीं दोनो हाथ लड्डू गोपियों ही की तरह से नहीं तो इस लोक में मौज में तो धोखा आर्यों के नियोग की तरह कुछ भी नहीं बलके पुण्य होना ज्यादाह छुट्टी (मिलगई) भगवान् की गाथा के बिना और सब विघ्न ही मालूम पडे यही तो पुष्टि मार्ग है

उसगोपियों की भक्तिका नमूना थोडासा संक्षिप्त रूपसे भागवतमें लिखा है देखिये नद्याः पुलिनमा विश्य गोपभिर्हिमवा लुकं रेमेतत्तरला नन्द कुमुदामोद वायुना१०(अ०२९।४५श्लो०

४५ गोपीयोंकी अत्यन्त प्रार्थना के बाद भगवान् उनके साथ ठण्डी सिकता (रेत) से भरे नदी के किनारे नहाके चञ्चल आनन्द के देने वाले (मज़ेदार) कमल की सुगन्धि वालेवायु (खुशबुदार हवामें) ऐसे याने संभोग क्रीड़ा करने लगा

बाहुप्रसार परिरम्भकरालकोरुनीविस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाचकार ४६

बाहु का विस्तार (फैलाव) करके आश्लेष (आलिङ्गन) (स्त्री पुरुषका गुच्छम गुच्छा)उसके साथही हाथ से अलक(स्त्रियों के आगे के माथे के बाल जिसे (पटी ऐसे कहते हैं) और उरु-लात (जिसे पट्ट ऐसा कहते हैं) नीवि जिसे नाड़ा (अधो बस्त्र के बन्धने वाला) कहते हैं स्तन (जिस से बच्चे को दूध स्त्री पिलाया करती है) उन का स्पर्श करने से काम शास्त्र के मुताबिक पट्टों पर हाथ मारने से स्तनों कामर्दन करने से नाला का खोलने से जफा डालने से अलक जो व्याकुलता से चुम्मते के विघ्न के लिये मुंह पर आपड़ी उन के पीछे हटाने से क्रीडा से देखने और उपहास (ठठा) मुंह का इन से ब्रज की सुन्दरी (सोहनी सूरत की स्त्रियों के) काम को बढ़ाता हुआ उन से क्रीडा करता हुआ यह नमूना दिखा दिया बस इसी तरह सारी रासपञ्चाध्यायी का अर्थ है विशेष से सुबोधनी टीका बल्लभाचार्य की देखने से गोपियोंकी भक्ति जाहिर रहोगी

इसी लिये भगवानने भी गोपियोंको पुत्रादि का भयलोक निन्दा और परलोक नरक अस्वर्ग्य मयशस्य मित्यादि भागवतमें लोकमें निन्दाआगे नरकके भयसे हठछोड़ो ऐसेडरदिया मगर प्रेमकोबढा हुएदेखकरअपने अधीन

स्वर्ग लोकयश समझते हुए उनके प्रेममान ही तो गये फिरक्या भगवान्की आज्ञासे एकयम राज क्याकई यमराज भी उसनिशा नी के मनुष्य के नाम से भी कांप उठें यहां भी सुख और वैसे ही बैकुण्ट की उसी की यारी का सुख दोनो हाथ लड्डूही तोमिले ९

श्लोक—संबन्धः साधनंयत्र फलंसंबन्ध एवहि
सोपिकृष्णेच्छयाजातः पुष्टिमार्गःसकथ्यते १०

जहां जीवों का भगवान्के साथ देह या भाव का संबन्ध है वही तो फल है जो भी ऐह लौकिक या पारलौकिक सायुज्य पर्यन्त सुख है वह तो इतना ही है कि देह और मन से प्रेम से जो हो वही परमात्मा कृष्ण का होने से धर्म का ही फल है वह भी जो कृष्णचन्द्र की गोपियों के तपस्या से कराई इस युग की इच्छा से ही है वहो जिस में माना जाय (उसी में प्रवृत लोगों को थोड़े भाव के फर्क से ही साथ विधि के बताया जाय वह पुष्टि मार्ग है १०

श्लोक—तत्संबन्धिषुतद्भावस्त द्भिन्नेषुविरोधिता
उदासीनेषु समतापुष्टिमार्गःसकथ्यते १०

जहां प्रभु संबन्धि लोगों में (जिन्हे ब्रह्म संबन्ध होचुका हो) भगवान् यही है ऐसी ही दृढ अभेद वुद्धि हो और भिन्न और उदासीन में विरोधिऔर उदासीन (राग द्वेष्य शून्य यहां गैर का काम नहीं) वुद्धि हो जैसे उद्धवके आने पर परम उत्साह गोपीजन को हुआ याने खुद भगवान् ही आगये ऐसे परम उत्साह ही हो वह पुष्टि मार्ग है ११

विद्यमानस्यदेहादेर्नस्वीयत्वेनभावनम्
परोक्षेपितदार्थित्वं पुष्टिमार्गः सकथ्यते १२

जहां अपने देह की रक्षा (छिपाना वगैरह देशा चार) कोई भी भगवान् का इस बुद्धिसे बिलकुल नहीं (याने संभोग शृङ्गार रस के विद्वेश या हटाने में प्रयत्न नहीं और परोक्ष विरह अवस्था में (जैसे अन्तर्धान हुआ)में भी (फिर मिलेंगे वोही मेरे दिलदार मुझे क्या फिकर मेरे मन सोच धीरज धर यार मिलेंगे) इत्यादि दृढ भाव नारखना भावि शृङ्गार के के लिये अपने आपको चरितार्थ समझना हो वही पुष्टि मार्ग है १२

श्लोक-भजनेयत्रसेव्यस्य नापकारकृतिः क्वचित्
पोषणं भावमात्रस्य पुष्टिमार्गः सकथ्यते १३

जहां सेव्य (किसी अपने मित्रका) कोई उपकारन ही केवल सेवकतासे भाव को दृढकरना है(यानीगो स्वामी कृष्णजी महाराज को भक्तों के कहने की जरूरत नही भक्त खुद गोपी तरह निषेध करने पर भी प्रेम प्रिय कृष्ण पूर्ण रूप से अनुरक्त हो) जैसे गोबर्द्धन के यज्ञमें और सबको हटाकर अपना हीपूजन कृष्ण महाराज ने कहा वही पुष्टिमार्ग है १३

श्लोक-भजनस्यापवादोनाक्रियते फलदानतः
प्रभुणायत्र तद्भावात्पुष्टिमार्गः सकथ्यते १४

जहां कुछ थोडा सा फल देकर प्रभु अपने भजन से नही हटता याने जैसे भगवान् ने अन्तर्धानसमय में गोपीजन

विरहको जो थोडेसे दर्शन देनेसे हट सकताथा नही हटाया किन्तु मरे में और ज्यादाह भाव बढेगा इसहेतु से पोषण कर दृढप्रेम देखकर ही दर्शनदिये और उद्धवने भी उसी संदेशही को कहा भगवान् हमारे उसपहले प्रेमके याद होजाने पर फिर वैसे ही होसकते हैं १४

यत्रवासुख संबन्धो वियोगेसंगमादपि
सर्वलीलानुभवतःपुष्टिमार्गः सकथ्यते १५

जहां वियोगाव स्था में संभोग से भी ज्यादह सुखक्षण क्षणमें लीला का गोपी जैसे प्रकट करती रही इसी तरह सभ लीला का अनुभव होने से हो वही पुष्टिमार्ग कहाजाता है १५

फलचसाधने चैवसर्वत्र विपरीतता
फलंभावंसाधनंस पुष्टिमार्गः प्रकथ्यते १६

जहां उपद्रवरहित प्रेम यही फल मानागया हो वह भी भगवान् का दिया हुआ प्राप्त किया जाय इस तरह फल भगवान् से साधन की (उपाय की) प्राप्ति ऐसा विपरीत (वाममार्ग) माना जाय वही पुष्टि मार्ग कहा जाता है १६

पश्चात्तापःसदायत्रतत्संबन्धि कृतावपि
दैन्योद्बोधायसततं पुष्टिमार्गः सकथ्यते १७

जहां भगवान् की कीहुई लीला के अनुभव होनेसे भी कुछ और रहजाने में पश्चात्ताप हो जैसे ब्रज में जाने के बाद नन्द गाम के रहने वाली गोपीयों के हम न भये ब्रजभूमी में ऐसा पश्चात्ताप हुआ वैसे ही दीनता का ज्यादह होना न कि अपने

पति की तरह भगवान् के साथ कुछ मान (स्त्री भाव) करके दिखाना न नि निओं का दृढ भरा हो वही पुष्टि मार्ग है १७

आविर्भावेनसापेक्षं दैन्यंयत्र।हिसाधनम्।
फलंवियोगजं दैन्यं पुष्टिमार्गः सकथ्यते १७

जहां जीव को दीनता हो और स्वार्थ छोड भगवान् के आविर्भाव होने के कारण हो वियोग में भी मिलने की पीडा से अधिक दीनता ही फल हो मान कुछ भी नही वही पुष्टिमार्ग है १८

समस्तविषयत्यागः सर्वभावेनयत्रहि
समर्पणंचदेहादेः पुष्टिमार्गः सकथ्यते १९

जहां इस लोक या परलोक के विषयों से अधिक प्रीति भगवान् बिना नही भगवान् ही को देहादि का समर्पण करना से हो वही पुष्टि मार्ग है जैसे भगवान् के घर लौट जा ऐसे कहने में उत्तर उन का है मैवं विभोर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वं विषयांस्तव पादमूलम् भक्ता भजस्वदुरवग्रह मात्य जास्मान् देवो यथादि पुरुषो भजते मुमुक्षून्

ऐसा भागवतमें लिखा है हे भगवान् कृष्ण चन्द्र(गोस्वामी तू ऐसी कठिन दिल के फोडने वाली बातें मत कहो (दिलदार दिल को न सता) हमतो सभ अपने घर के विषय छोड तेरे ही चरण का आश्रय ले चुकी भक्त (प्रेमी) बन चुकी ओदुष्ट आग्रह(हठ)वाले मत छोड हमें उस सुख को दे जैसे गभगवान पहले पुरुष परमात्मा (वा पूर्व युगों में हुए अवतार) मुमुक्षु लोगों को भजते हुए १९

विषयत्वेनतत्त्यागः स्वस्मिन् विषयतास्मृतेः
यत्रैवैसर्व भावानां पुष्टिमार्गः सकथ्यते २०

जहां अपने को भगवान् का विषय होने से विषय का विषय नहीं होता ज्ञान ही का विषय होता है इसी तरह ज्ञानवपुः भगवान् के विषय रूप से विषयों का ग्रहण है अपना मानकर त्याग है अपने जीव बुद्धि के विषय गुण और लुच्चापन आर्यों के नियोग की तरह दाखिल है और भगवान् को समझ वैकुण्ठ नाथ प्राप्ति वाली देव लीला भक्ति भावमें दाखिलहै वही पुष्टि मार्ग है २०

जैसे क्रीडार्थ मात्मन इदंत्रि जगत कृतन्ते स्वाम्यंतु तत्रकुधियोऽपर ईशकुर्युः तैने तो अपनी क्रीडा के (लीला विषानुभव) लिये यह तीनो जगत बनाये हैं उनमें तेरे विना हमारा मालिक कौन है और स्वामी आदि तो दुष्ट बुद्धि के लोग भूल सेकर रहे हैं और जिस में भगवान् के हम भी विषय है हमे भी कभी याद करते हैं द्वारका के जाने के बाद वहां से आये उद्धव को जैसे गोपियों ने पूछा वैसे अपने को सफल समझना हो यद्नुस्मर्यते काले स्ववुद्ध्या ऽभद्ररन्धनम् ऐसा पूचेता का वाक्य है जो भगवान् भी कभी किसी वक्त हमे अपनी तरफ से याद करे है तो इसी से हमारे कुल दुःख दूर होजाते हैं इसी तरह नाम भिंदूरगान् पश्त् कच्चिदाऽहयति प्रीत्या ऐसा गोपियों से सवालहों कभी नामसे पशुओं को बुलाताहै हमेभी याद करता है इत्यादि वही पुष्टि मार्ग है २१

एवंविधैर्विशेषण प्रकारैस्तु सदाश्रितैः
हृदिकृत्वा निजाचार्यान् पुष्टिमार्गोहिबुद्यताम् २१

इस तरह के सभ विशेषण (तारीफ) और प्रकार (तरीकोंसे) हृदय धार कर अपने गुरुओं को ब्रह्म संबन्धादि शरण मन्त्र लेकर पुष्टि मार्ग सीखना चाहिये २१

यह सभ बल्लभाचार्यों के ग्रन्थानुसार उन्ही के श्लोकों का उन्ही की संस्कृत टीका का भावार्थ किया गया है मैं भी पुष्टि पुष्टि मार्ग को जरूर अच्छा ही समझता हूं परन्तु कृष्ण अवतार हुए ४६१२ वर्ष के लगभग होचुके उसी मोहनी मूर्ति के विप्रलम्भ शृङ्गार की ही पुष्टि भक्ति हो सकती है उस के इलावा संभोग शृङ्गार (जीवों में) तो मेरा चित्त नहीं मान सकता।



कुर्वन्ने वहि कर्माणिजिजी विषेच्छतं समाः
एवंत्वयिनान्यथेतो ऽस्तिन कर्मलिप्यतेनरे २

वैशेषिकमते ऽक्षपादगौतमो भयोच्छिष्टता किंकमतेचार्वा एकोऽपिभवतीतितथै वोच्यतेवैदिकस्मार्त नित्यकाम्यानि कर्माणि कुर्वन्नाचरन्नेवशतं समाजी वितुमिच्छेत् इत्याशीः प्रार्थना जीव कल्पतयाहवेदः गौतमेनयद्यपि संन्यासे प्रसंख्यान वैराग्यभावना दार्ढ्य संपादनाय कर्यमुक्तम् तथापिकलौ चतुर्थाश्रमनिषधादितर

इस का अर्थ वैशेषिक गौतम और दोनों की ऐक्यता से उच्छिष्ट मत निकालने वाले तार्किक नामक मतसे एकही सकता है जैसे वैदिक स्मार्त कर्म नित्यवा नित्यकाम्य करते हुए सैंकड़ो वर्ष जीवन की इच्छा करो जैसे जीवेमशरदः शतम् ऐसा आशीर्वाद जीव की तरफ से प्रार्थना के ढंगसे(सौवरस जीवैंऐसा)वेद भगवान् ने इच्छाकरना लिखा है यद्यपिगौतम ने संन्यास पद्धति कीस्मृति पकडकर तत्वज्ञान से बाद प्रसंख्यान (हरवस्तु स्त्री आदि में ग्लानि पैदा करने वाले दुःखों के मल मूत्र का थैला इत्यादि भाव) दुःख भावना से वैराग्यके दार्ढ्य के लिये लिखेहैं परन्तु कलिमें चतुर्था श्रमसंन्यास का निषेध होनेसे सकलयुग साधारण मात्र इतना ही कार्य है जो वेद में यहां लिखाकलियुग से भिन्न युग में संन्यास से पहले तीन आश्रम यह भी माना जाता था उसके बाद कर्म त्यागदेते थे वह युग धर्म था ऐसे शास्त्रोक्त सतकर्म के आचरण करने वाले तेरेहोते अशुभ पापके पैदा करने वालाकर्मनहीहोसकता वैसे होने वाले तेरेनर(मनुष्य) के लिये विधान जो किया गया है सो भी जैसे राजा की आज्ञा

युगधर्मोऽसौ अयंचातुर्युगोधर्मःसामान्य रूपेणोक्तोनांपिइतरयुग धर्मोऽस्यबाधकस्तत्रापितद्विकल्पात् प्रवृत्तिनिवृत्ति कामनाभेदात् कस्यचिद्व्यक्तिविशेष स्यकलीतरयुगीयसप्तम भूमिकावतस्तदानीं व्यवस्थितत्वेऽपि सामान्यवाक्ये तद्व्यक्तीतर मात्रनिवेशस्यसंकोच विधयापिलाभसंभव इत्यभिप्रायःपूर्णोपैणैववातदुक्तिरितिध्येयम् एवंशास्त्रीयकर्माणि कुर्वतोऽशुभानिचातोऽकुर्वतोनपापोदयःशास्त्र विहितेहिनायुक्त संभावनापि शास्त्रमात्रवेद्यत्वात् स्यतथापि चेन्मन्द बुद्धितयादोष संभावनास्यात्सापिशास्त्रकर्तृ निर्भरानहि तत्कर्तुर्युद्धादिभृत्यापराधस्यराज्ञइवेतिध्येयम् ॥ ३

दयानन्दमतेस्मृतिविरोधंपरस्परमङ्गी कृत्यविरुद्धांशस्यप्रक्षिप्ततयात्याज्यत्वंचोरीकृत मितितन्मते स्मृतिमात्रेऽविश्वासस्तेन दयानन्द रेखानुगामिन इति स्वमतेतरेषांदयानन्दोक्त

का बुरा फल भृत्यमें नही वैसे बुरा नहीं यह वेद उपदेश करता है तार्किकों के भेदों में यही अर्थ होता है ३

दयानन्द के मतमें स्मृतियों का परस्पर विरोध होने से उनके त्यागने योग्य हेयअंशको प्रक्षिप्त माना गया है इस से उसके मतमें स्मृति में बताये गये हरएक कर्म पर विश्वास नही जो दयानन्द कहगया (हम दयानन्द के लकीर के फकीर नही ऐसे कहने वाले मनमानी चाल चलाने वाले स्वयंब्रह्मा चेलों के मन्तव्यके इलावा) है उस दयानन्द के स्वार्थ विनियोग (इसी मन्त्रसे यहअर्थ यही कामहोना अच्छा है) कह गयाहै उसी तरह काम करतेहुए(संन्यासादि अश्रम वालोंको जो अपने लायक काम गया है वैसे) शत (सौ) वर्ष जीने की इच्छा करे ऐसा तुझे काम करते हुए उस के कहने से वखिलाफ न होगा तो जरूर

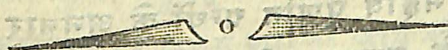
विनियोगेनैव संग्यामान्तं यादृक्कर्माणि प्रतीयन्तेतथैव कुर्वन्नै वशलंजिजीविषेज्जीवःनतदुक्तिमन्यथा कुर्यात् तदातदुक्ति फलमवश्यं संभाव्येतसयदिगुदन्तेशुन्धामीति मन्त्रादिव्याख्यायां नियोगमूर्ति पूजानिषेधादाव युक्तंशास्त्रपद्धतिमहर्षि विनियोग विरुद्धमपिचान्येषामप्रतीयमानं तदुपदेशकनिर्भरंनो पदेश्यदोषो ऽसौस्वयमज्ञानि तवादृतत्समत्वस्वीरात् तदपिनकर्तृ दोषावहंकर्मे तिअक्षरयोजनयाल ब्धुंसंभाव्यते तदुक्ति भ्रष्टस्तिवतोऽपिभ्रष्ट स्ततोपिभ्रष्ट इति चत्रिनाप्रायश्चित्तं वाच्यमेव ४

अत्रेदंसमीक्ष्यं यद्यष्टाशीति सहस्राणिसंप्रदायप्रवर्त्तका इत्यभियुक्तोक्त श्लोकादनुसन्धेयनाम्नांपुराणादावबतार कल्पा नामीश्वरनाटकान्तः पातिनां मनेकेषांमहर्षिगणानां विद्वद्देवसा क्षीकर्तुं दयानन्द स्योक्त्यातामन्तराचा ऽविश्वासः स्यात्तदो

उसी के लिखे फल भी अवश्य होंगे वो अगर बुरा भी है तो पाप तुझे नहीं लगेगा तुम तो अपने उपदेशक के अनुसार हो उपदेशक की गलतीसे तुझे कोई भी कुछ नही कह सकता(नही तो यहां से भी गया और वहां से भी गया इतो भ्रष्टस्त तो भ्रष्टः यह अर्थ हो सकता है ४

इस की समीक्षा साथ ही साथ कीजियेगा अगर पहले सैंकड़ों मुनिओं में विश्वास नही उन के वाक्य प्रमाण नही तो आप भी प्रमाण क्यों होंगे अगर उनके विरोध है और उस में कुछ और मिलाया गया है यह हेतु है तो मुनियों की रीति से विरोध हटाने की पण्डिताई हासिल करो और वैसे सत्कर्म बाकायदा जिज्ञासु होकर पूछलो नहीं तोउनकी पहली स्मृतियों के विरोध से जिस वाक्य पर यह मिलाया गया है ऐसा तुम्हारा

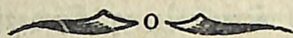
दयानन्दस्यैवप्रामाण्यमित्यत्राधिकायुक्तिः कोवापक्षपातःविरुद्धांश
प्रतीतिस्तुनमीमांसाद्यभिज्ञार्थ ज्ञानवतोनचेतते शिक्षस्वतर्हि
तथःहठिन् न्यायतर्कपूर्वोत्तरमीमांसाधिकरणान्दोलनेन विरोध
परिहारमात्रार्थं महर्षिभिर्मितांपरिपाटीं पठजिज्ञासुतयावा प्रच्छ
दृढतरप्रमाणभूतम हर्षिलेखमन्तरासाधकप्रमाणाभावेऽपिदयानन्द
कथनमात्रेणकथं विप्रक्षिपन्त स्वभावना स्मार्त श्रौतविनियोगा-
नादरश्चतत्प्रतिबन्दि तयाभवताम् पिठिश्चवास्माकं दयानन्देभक्ति
भावनाविरहेण विनिगमना विरहेणभवतोऽपिप्रक्षेपकवद्
प्रामाण्ये तद्वाक्येऽप्यनाश्वासादन्धोपदिष्टपथ गान्धस्यकूपपा
तइवविपरीतफलापत्तिः केनवार्यताम् किंचायंस्मृति विरोधादंश
स्त्यायोनायमितिविनिगमनाविरहः क्वचित्तेस्थलानि रितिसहेय
इति चेद्दोषदृष्टु रादिसर्वसमयतत्रैव निर्भरश्चतदकरणेतदाप्र .



शक है उसी तरह उसी विरोधि वाक्य तुम्हारे को भी क्यों नमाना जाय और यह कहो कि विरोध हटाने के लिये एक वाक्यता न कीजाय और अपने मन से यह किस का मिलाया है हमारे कोई हिस्सा बखिलाफ है इतने ही से (ग्रन्थों के ग्रन्थ) मुनिओं की पुस्तकों में और वेदों में छोड़े जाय तो दूसरा यह कहेगा कि यह हमारे बखि-लाफ है हम इसे छोडदेते हैं तो तुम्हारे पास कोई जवाब नही खुदा के बेटे हैं हमे ही मानो वगैर इस के क्या होसकता है कभी नही अगर फर्ज करो कि तुम्हारे लिखों को ही ठीक समझ और ग्रन्थों के ग्रन्थ मुनिओं के बनावटी मान लें यदि दरअसल में वेही ठीक हों और परमात्मा के घर में वेही निष्पक्ष जरूरी अमल में हो तो आप के मुताबिक करने वालों को घोर नरक

भङ्गेन विपरीतफलापत्तिं कोनिवारयेत् तेनव्यासोक्त व्यवस्था नुसारेण सकलस्मृति विरोधपरिहारेण तदनूकूलकर्माणिकुर्यादि त्यर्थोयुक्त एवंसतियदिवैपरीत्यमशक्यमपिकश्चिदापादयेत्तदासाक्षा च्छ्रीभगवद्वतारस्यास्तिक धर्मपथदर्शन मात्रार्थावतीर्णस्यदया-नन्देनापि गुरुत्वेनस्वीकृत स्यदोषइत्येवनकर्मलिप्यतेनरे इत्यनेने वविपरीतकरणे शास्त्रार्थनिर्णयरूपमीमांसाकर्तृ दोषइत्यर्थःकेना नेनमन्त्रेण बोध्यते इति मन्तव्यम् ५

निरीश्वरसांख्यमते प्रकृत्यागुण मय्यास्वभावसिद्धयाकर्म्या शास्त्रादवगत्यकर्माणिकुर्वन्नेवकुर्वन्नपिनइवअकुर्वकर्म्यान्न वनकुर्वं



से कभी कोई छुडाने वाला जमीन आस्मान के बदलने पर भी नहीं होसकता इस से जैमिनिव्यास सूत्रादि मीमांसक (हाईकोट जज्ज) महर्षि प्रणीत ग्रन्थों के अनुसार ही उन के ग्रन्थों को हठग्लानि पक्षपात छोड कर व्यवस्था करने से एक वाक्यता पूर्व कही सभी महर्षि लोगों के वाक्य माने जाय याने उनका निचोड फैसला ही माना जाय और उसी के अनुसार काम किये जायें यही ठीक होगा अगर ऐसे करने पर भी यदि कुछ विपरीतता की शङ्का हो तो खास भगवान् के अवतार व्यास जैमिनि जिनके सूत्र ग्रन्थोंको दयानन्दभी प्रमाणहैं इतना मात्र लिखता है उसी जज हाईकोर्ट या परमात्मा का दोष माना जायगा प्रक्षिप्त कहना आज तक किसी मुनी ने हमे नही सिखाया वह हमारी बुद्धि में तीनकाल नहीं आसकता अपने मन घडन्त शास्त्र विरुद्ध अर्थों को मान कर प्रक्षिप्त कहने में किसी और मजहब के ग्रन्थ पर ही जो खास भाषा में हो और प्रक्षिप्त शङ्कादि जिस में किसी प्रकार न हो अगर हो

न्न्पितदिश्वाजिजीविषेत्जिजीविषेदिवप्रकृतेः क्रियमाणा निगुणैः कर्माणिसर्वशः अहंकारविमूढात्माकर्त्ताहमिति मन्यतेगुणागुणेषुव र्न्तेइतिमत्वानसज्जनेइतिगीतोक्तदिशास्वोचितशास्त्रानुसारि समीक्ष्य कुर्वीत प्रकृतिकर्तृ त्वदृष्ट्याऽत्यसङ्ग त्वदर्शिनिअन्य था कर्तृत्वबेयधिकरण्येन गौणंनदृष्टं मुख्यम् इति यथार्थदर्शि त्वान्नरेपुंसित्वयिनलिप्यतेनबन्धजनकमित्यर्थः ६

सांख्यविज्ञान भिक्षोरपिमते ऽयमेवार्थः परंकर्तृत्वंप्रति विम्बस्येतिध्येयम् ७

तोवही इतकादके लायक होगा॥निरीश्वर साङ्ख्यके मत मेंअथ हैकिसत्वगुण रजोगुण तमोगुण रूपप्रकृतिके अधीनहो शास्त्रोंसे सिद्ध सत्कर्म करता हुआ (कुर्वन्—न—इव) भी न करता हुआ प्राकृत कर्तृत्व(कर्त्तापन)से असंग आत्मा जीव भोक्ता को(भोग के लिये प्रति बिम्ब देने वाले को न मुख्य कर्त्ता माना गया और गौण रूपसे जो है) उसे वैसाही समझता हुआ सैंकड़ों वर्ष जीने की इच्छा करे(इच्छा कर्त्ता गौण रूप से बने)गीता में भी इसका अनुवाद है वेदान्त मत में येभ्रम समझा जाता है सांख्य मत में गौणकहा जाताहै गौण अति शयोक्तिके भीतरहै भ्रमभ्रान्तिके अन्तर्गत है जैसे प्रकृतेः क्रियमाणा निगुणैः कर्माणि सर्वशःअहंकार विमूढात्मा कर्त्ता हमितिमन्यते प्रकृति के गुणों के मुताबिक किये गये काम अहंकार से मूढ (भ्रान्त—या—मूर्ख सादृश्यादि संबन्ध में फ़सने से व्याकुल) आत्मा में (प्रति बिम्ब या उपाधि द्वारा) कर्त्तापन का अभिमान (भ्रान्ति—या गौण) व्यवहार मानासा जाताहैं ऐसे शास्त्रानुसार सत्कर्म करते हुए और शरीरमात्र के कर्म भी जहां तक होसके अच्छे करते हुए भी

योगमते पिकुर्वन्नेव कर्माणि स्वोचिताचाररूपाणि यमादी निअभ्यस्यन्निववैराग्यसहितानि योगाङ्गानिनिजीविषेच्छातमने कयोगसमाधिना जनितपुण्येन सद्विपाकोआत्यायुर्भोग इति तत्सूत्रानुसारं जनितंआत्यायुर्लक्षणमनेकानेकशतसहस्रा द्विवर्षपर्यं न्तजीवनसम्भोगंभिच्छे तृप्ततंजीवेमितिमन्त्रैतस्यवेकवाक्यतयाशतश इदस्यानेकोपलक्षक त्वस्ययुक्तत्वादुएवंयोगलिप्ते त्वयियथादर्शिता लक्षण दिव्यचक्षु रुद्भवात् दिव्यंददामितेचक्षुः पश्यमेयोगमैश्वर

———— :o:

असङ्ग आत्मा को देखने वाले तुझ तेरे में (नरे पुरुष असङ्ग में (दूसरे का धर्म दूसरेमें नही होसकता ऐसा यथार्थदर्शि होन से)कोई कर्म लिप्तन होगा बन्धजनक कोई काम नहोंगा और विरीतफल उसका नही और न कर्ताहोंगे यहअर्थहोसकताहै ६

विज्ञान भिक्षु का भी सांख्य में यही अर्थ होगा परन्तु वह वाचस्पति की तरह चेतनत्व ध—र्म का ही पूति विम्ब नही मानता किन्तु धर्म धर्मि दोनो का पूति विम्ब मानताहै उसके मत में कर्तृत्व प्रकृति को नही प्रकृते अन्तःकरण में पूतिविम्ब (जीवके भुलाने वाला दूसरा जीव) जो है उसी को धर्म है इत ना फर्क है ।

योग मतमें कर्म जो अभ्यास और वैराग्य के हितके लिये अपने योग्यवर्णब्राह्मण आदि आश्रम (ब्रह्मचर्य गृहस्थआदि) के यमनियम आदि जो योगके अङ्ग बताये हैं उन्हेकर्ता हुआ जीने की इच्छाको करोडों वर्ष के याने योग के अङ्गों केसाथ अनुष्ठान करने से समाधि से पैदा हुए धर्म से (तद्विपाकोजात्या युर्भोगे:) इस सूत्रमें धर्म आदिका फल अच्छी जाती बहुत आयु अच्छा वैषयिक सुखइत्यादि होता है ऐसा कहे फल की कोटीके

मितिगीतोक्तदिशा त्वयि सम्यग्दर्शिनि सति शास्त्रसंवादेन यथार्थ मेव कर्म कुर्वति नान्यथा भवति इतः कर्मणः सकाशात् को जानन्नन्धतां मियादिति हिलौ किकोन्ति तेन विज्ञाय कुर्वतो विपरीतफलमन्ध वत्केनापि कल्पयितुं शक्यम् तथा सति नरे वहइतः परत्र चेति सार्व विभक्तिकतसिप्रत्ययान्त तन्निबोध्योर्थः कर्मलपेन विपरीतफलासङ्ग लक्षणेन गच्छतो धूलिपटलपा दलेपस्येवोपद्रवेण लिप्तो नभवति विपरीतफलितो नरोव भवतीति फलितोर्थः ८

सैकडों हजारों वर्ष जीना संभोग आदि इच्छा करे तत्पश्च इस मन्त्रमें भी योगशास्त्र सुश्रुतका चिकित्सा स्थानकार सायन प्रकरण आदि देखने से शतशब्द का बहुत इतना ही अर्थ है केवल सौही नही एवं त्वयि इसतरहके सहित अङ्गों के योगका परिपाक करते हुए तत्व देखने वालो मान सवृती यही एक दिव्य चक्षु पैदा हो जाता है

जैसा योग के हेतु बताये ईश्वर प्रणिधान अङ्ग से वैसा फल गीतामें भी लिखाहै दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमें योगमैश्वरम्मैं तुझे दिव्यचक्षु देता हूं जिस से तू मेरे ईश्वरपन के योगको देख ऐसा भगवान् का अर्जुन को उपदेश है तो उस दिव्यचक्षु से पदार्थ (सत्य) देखने वाले तेरे होने पर अपने देखे हुए कोशास्त्र से मिलाने से यथार्थ कार्य करते हुए कुछ भी अन्यथा (गूढ) या पाप आदि नही हो सकता जानकर कौन अन्धा बन सकता है ऐसे शास्त्र को जान कर अन्धे की तरह तेरे से कोई भी काम असत् नही होसकता ऐसे शास्त्रनुसार काम करने में इतना अर्थात् यहां(सप्तमी के अर्थमें तसिप्रत्यय आद्यादि भ्यःवार्त्तिक करता है और वहां से आकर याने परलोक में भी (गच्छमापि

मीमांसकमतेकर्मविधिशेषत्वात्त दात्मज्ञानस्यपूर्व मन्त्रेण जातत्वाद्रूह्य मावत्वाच्चानेनार्थ वादेनदेवपूशस्यते कुर्वेन्नैव नित्योभयलो कठ्यात्तात्मज्ञानपूर्वकं स्वर्गकरमादिकत्रात्मदृष्टया जि ॥ जीविषेदिहा मुत्रचफलोप शतमनेकंसमा: अथवाशतंसमा वार्षशतिकानिकर्माणि कुर्वन्नेवत्येन्वयः वर्षस्यच पूर्वतन्त्रेदिनपर त्वंनवमेध्याये निरूपितमितिनासंभवादिदोषः महाभाष्यकृतां वर्षशकस्यातत्वरत्वंयुगान्तराभिप्रायेणेति व्यवस्थितविकल्पसंभवा

क्रिया कारक विभक्ती नांनिमित्तं याने गच्छा (जाने) क्रिया को लेकर इतः पञ्चमी मानने से परलोक अर्थ होगा)कर्म लेपन ही करते याने जैसे धूल में चलने से धूर पाओं को लिपट जाती है वैसे कर्म के फल भोगने वक्त और करने वक्त धूर की तरह दुष्ट जो पाप या उस का फल दुःख है वह न होसकता है यह ही अर्थ होता है ८

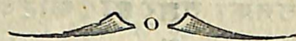
मीमांसक मत में आत्मा नित्य परलोक में जाने और सत्कर्म का सुखादि फल भोगने वाला कर्म शेष (विधि में कर्ता रूप से विशेषण) याने कर्म का कर्त्ता मानागया है वैसा नित्य ही आत्मा पिछले मन्त्र और आगे के मन्त्रों से बताया जायगा

उसी की कर्म करने में प्रशंसा इस मन्त्र से की जाती है नित्यदोनों लोकमें फलभोगता आत्मा केज्ञानसे स्वर्गकीकामना सुख भोगके केसत्कर्म कर्ता दृष्टि करके हीशत सौवर्ष जिने की यहां और आगे सुख के भोगने की इच्छा वाला होवे अथवा वैसे सुखों में भोग की इच्छामें शत वर्ष आदि में विधान किये यज्ञों को करे इसमें कोई शंका करे कि कलिआदि में आम तौर पर सौवर्ष तो आयु ही है तो सौवर्ष में होने वाले

ऋमुनिद्वयविरोधः एवंयथाशास्त्रं नित्यादिकर्मकुर्वतोऽन्यथा नरकपातादि यमीययातनास्तिइतएतस्मात्कर्मकरणात्पापंकर्म नलिप्यते वेदोक्त स्वमहिम्ना स्वधितेमैनंहिंसी रित्यादेर्व चनसामर्थ्या देववैदिकहिंसादौनपापफललेपा दिअस्तीतिअथवा पापनिवृत्ति पुण्योत्पत्तिफलद्वयं वेदोक्तकर्मानुष्ठानेजायते पूर्वार्द्धेन पुण्योत्पत्त्यर्थ कर्मकुर्यादिति व्याख्याय तथासति अन्यथार्तद्विपरीतं पापनसंबध्यतेइत्यर्थादतएतस्मात्कर्म कृतोनरेनलिप्यत इति व्याख्येयम् ९

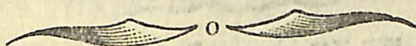
यज्ञ कैसे करेगा तो उसका उत्तर हाईकोटजज्ज कर्मयज्ञ काण्डशेष जैमिनी जी ने ११ अध्याय में यज्ञप्रकरण में वर्ष नाम दिन का लिया जाता है ऐसा लिखा है इससे यह दोष नही इसी तरह हजार वर्ष के यज्ञ का अर्थ भी हजार दिन का यज्ञ माना जाति है रहा भाष्य कारदूसरा भी अर्थ मानते हैं और युगों में रसायन योगा भ्यासादि से दीर्घायु लोगों के लिये वैसा भी है इस से उन का विरोध नही इस का नाम व्यवस्थित विकल्प कहा जाता है इस तरह नित्य (जिन के न करने में पाप होता है ऐसा लिखा है) और नित्य काम्य जो जरूरी हो और कामना रखकर नही किये जाते इस वास्ते वह नित्य है नहीं तो कामना के पूरे होने पर उन का त्याग होजाय वह तो केवल परमात्मा की न्याय कारिता के ऊपर हैं न्याय कर्त्ता इसे इस बात को यहयहां औरआगे जरूरहोगी यहजानतोउसकाममें उनकोलगता है यही उस का न्याय है नित्य काम्य में कर्त्ता को संकल्प यह इच्छा रखने की जरूरत नहीं और नित्य और नित्य काम्य इन दोनो कामों में काल नियत होते हैं जैसे नित्य संध्या और नित्य काम्य आदि एकादशी व्रतादि है उस

एवमात्मविदः पुत्राद्येषणात्रयसंन्यासेना ऽऽत्मज्ञाननिष्ठत या ऽऽत्मासंरक्षितव्य इत्येषवेदार्थःअथेतरस्यानात्मज्ञतया ऽऽत्म ग्रहणायाशक्तस्येदमुपदिशतिमन्त्रःकुर्वन्नेवेतिकुर्वन्नेवनिर्वर्त्तयन्ने वकर्माण्यग्निहोत्रादीनिजिजीविषेज्जीवितुमिच्छेत शतंशतसंख्या काःसमाःसंवत्सरान् । तावद्धिपुरुषस्यपरमायुर्निरूपितम् तथाच प्राप्तानुवादेन यज्जिजीविषेच्छतं वर्षाणितत्कुर्वन्नेवकर्माणीत्ये तद्विधीयते एवमेवंप्रकारेण त्वयिजिजीविषतिनरे नरमात्राभिमा निनिइतएतस्मा दग्निहोत्रादीनि कर्माणिकुर्वतो वर्त्तमाना त्प्रकाराद्न्यथा प्रकारान्तरंनास्तियेनप्रकारेणा शुभंकर्मनलिप्यते



का पन्द्रह में दिन में आना जरूरी है नित्य काम्य को जो काम्य मान कर करता है उसके लिये वहकाम्य भी हो जाता है परन्तु फिर उसका दूसरे काम में लगाना ईश्वरीय कानून के बखिलाफ है जो निष्काम नित्य काम्य समझ करता है ईश्वर उसे न्याय मुताबिक उचित अच्छे फल दिखाता है और कर्त्ता को छोडना नहीं होता उस के लिये नित्य बराबर है और एकनैमित्तिक होते हैं उन में काल का नियम नहीं जैसे चन्द्रग्रहण आदि में ब्रत पूजा होमादि वह भी नित्यकाम्य के (तुल्य है परन्तु काल नियम न होने से निमित्त पर होने से नैमित्त कहाते हैं और केवल काम्य जो अनिषिद्ध है वह भी करने लायक है नित्यादि यथाशक्ति ही होंते हैं अगर न हो सकते हों तो छोडने में भी पाप नहीं परन्तु वही ब्रत नित्य किये जाने पर नित्य काम्य माने जाते हैं प्रायश्चित्त भी काम्य के भेद हैं उन का भी पाप हटानेसे भीऔर२ फल हैकाम्य जिसीके वास्ते शास्त्र में विधान कये हैं उसी ही काम में लगसकते हैं और उसी काम से करने

कर्मणानलिप्यते इत्यर्थः अतःशास्त्रविहितानिकर्माण्यग्निहोत्रादीनिकुर्वन्नेवजिजीविषेत् कथंपुनरिदमवगम्यतेपूर्वेणमन्त्रेणसंन्यासिनोज्ञाननिष्ठोक्ताद्वितीयेनतदशक्तस्यकर्मनिष्ठेत्युच्यतेज्ञानकर्मणोर्विरोधंपर्वतवद् कम्प्यंयथोक्तंन स्मरसिकिम्इहाप्युक्तंयोहिजिजीविषेत्सकर्मकुर्वन् ईशावास्यमिदं सर्वंतेनत्यक्तेन भुञ्जीथामागृधः कस्यस्विद्धनमितिच नवजीवितेमरणेवागृधिंकुर्वीतारण्यमियादितिचपदम् ततोनपुनरियादिति संन्यासशासनातुभयोःफलभेदंचवक्ष्यति इमौद्वावेवपन्थानौनिष्क्रान्ततरौभवतः क्रियापथश्चैविपुरस्तात्संन्यासश्चोत्तरेणनिवृत्तिमार्गेणैवणात्रयस्यत्यागःतयोः



पर उसी फल को देते हैं और में उन का विनियोग नहीं हो सकता वह तारीफ नित्य काम्य की ही है ऐसे २ शास्त्रानुकूल काम करने पर नरकपात आदि यम के दण्ड का कोई तुम पर हक्क नहीं ऐसे काम में पाप का तो लेश भी नहीं अथवा एवंत्वयि से लेकर मन्त्र का नित्य काम्य प्रायश्चित्त तुल्य गायत्री जप स्वेष्ट देवताजपादि से पुण्योत्पत्ति पापनिवृत्ति कूपखानन्याय (जैसे कूआं खोदने वाले खोदते वक्त लगी मट्टी को भी धो डालते हैं और कूआं खोदने खुदवाने के अछे फल को भी पाते हैं उसी तरह) से होता है यह भी अर्थ है ९

शङ्कराचार्य जी का यह अर्थ सहित भूमिका के है इस तरह आत्मवेत्ता को पहले मन्त्र से पुत्र की इच्छा धन की इच्छा लोक परलोक की इच्छा तीनों प्रकार की इच्छा को छोड कर याने इस युग में भी विद्यमान(होरही)इच्छा का भी शुद्ध चित्त के लक्ष्यरूपके साथ संबन्ध नहीं ऐसा बाध और यह तो अन्तः करणावच्छिन्न जीव के है इस में मिथ्या है ऐसे असङ्ग दृष्टि क

संन्यास पथएवाति रेचयति न्यासएवात्य रेचयदितिचतै तिरीयकेद्वाविमावथ पन्थानौयत्र वेदाःप्रतिष्ठिताःप्रवृत्तिलक्षणो धर्मोनिवृत्तिश्चविभावित इत्यादिप्रुत्रायविचार्य निश्चितमुक्तंव्यासे नवेदाचार्येणभगवता विभागं चानयोर्दर्शयिष्यामः १०

एवमिति पूर्वमन्त्रेणेत्यर्थःएषणात्रयसंन्यासेनलक्ष्येऽनतत्वानास क्तिस्वदृष्ट्याविद्यमानस्यापिअभावज्ञानरूपबाधसामाधिकरण्येन कल्यतिरिक्त निवृतिप्रारब्धपतितशङ्कराचार्यादितुलितजालजीव नमुक्ताश्रमान्तरग्रहेणावेत्यर्थःअथेतरस्यभोगिनो ज्ञानिनोथवावि- ज्ञानिनोऽपिप्रवृत्तिचक्रपतितस्य प्रवृत्तिनिवृत्त्यधिकारविरहज्ञानेन

त्याग को स्वीकार कर उस ज्ञान से दृढ होकर आत्मा लक्ष्य कोमलरूप मिथ्यासे बचाना चाहिये और युगान्तरमें साधसंन्यास आश्रम के भी वैसे दृढ होना चाहिये और शङ्कर जैसे ईश्वर पुरुषों की तो महिमा अपूर्व होने से उस ने आचरण शास्त्र निषिद्ध किसी आप दुद्धारादि के हेतु किया अन्य के लायक बताना भूल है इस तरह बताया दूसरे मन्त्र में उस जीवको कम भी वैसी मिथ्या देखते हुए प्राप्त हुआ और अज्ञानी को शुद्ध के अज्ञान से कर्म खचित होकर कर्म प्राप्त हुआ वह भी इस मन्त्र से उपदेश किया जाता है (यद्यपि अनात्मज्ञ शब्द लिखने से अज्ञानीको कर्म यह शङ्कराचार्यका आशय संन्यास पक्षपातियों ने आज कल प्रचलित किया है परन्तु ३ अ० पाद १४ सूत्र में व्यास जी का अभिप्राय शङ्कर स्वामी ने खुद यह वर्णन किया है विदुषि पुरुषे कर्मलेपाय नभवति विद्या समर्थ्यादितितदेवं विद्यास्तूयते अर्थात् इस मन्त्र से विद्वान् के ज्ञान की प्रशंसा होती है कि विद्वान् पुरुष का किया कर्म लेप के लिये नही

लक्ष्यैबाधलाना नाधिकरण्येन विशेष्यतयान्तः करणावच्छिन्नेह पद्वाच्ये प्रतियोगितया प्रकारतावच्छेदकसंसर्गेण प्रकारी भूतकर्तृ त्वादिकंजानतो ज्ञानिनस्त्वेत्यर्थः अनात्मज्ञनयाऽज्ञानि नोऽविद्वे नपूर्वोक्त विज्ञानिनस्तेनकर्तृ त्वादिप्रकारक प्रकारतावच्छेदक संसर्गावच्छिन्न प्रतियोगित्वा श्रयत्वाभिमतवाच्य वृत्तिकर्तृ रूपलक्ष्यव्यधिकरण धर्मप्रकारकज्ञाना भाववत्वेनेत्यर्थः वाच्य वृत्तिकर्तृ त्वावरहज्ञानेनवेत्यपिवोर्ध्यम्‌कर्त त्वानासक्ततयातथा फलानासक्त्या फलेहाफलभोगवत्त येतियावत्‌ ?

याने अच्छा शास्त्र रीति का किया भूमिका गिराने से बन्ध का हेतु नहो किन्तु शुद्ध आत्मा असंग दृष्टि से जीव सत्कर्म का फल सुख भोग भी करता है क्योंकि बुरे कर्म भी अगर उस से हो जायें तो वह भी उसे कुछ नहीं कर सकते तो शरीर भिन्न अन्तः करणावच्छिन्न कर्त्ता के किये सत्कर्म तो शुद्ध तक कहां पहुंचेंगे वह मायिक ही है मायिक फल को भुगाते हैं इस तरह अतिश योक्ति अलङ्कार (कैमुति कन्याय याने जबरदस्त नहीं तो कमजोर उसे कहा पकडे) सो सत्कर्म में ज्ञानी को प्रशंसा से फसाने में तात्पर्य है इस सेवहां के अपने लेख से विरोध नहो जाय इस लिये यहां भी हमारा किया अर्थ ही ठिक है उसी में कर्म के हटानेवाले वैदिक स्मार्त्त विरुद्ध जैन बौद्धों के हटाने केलिये अपने मत के पन्था के स्थित रखने के लिये भगवान्‌ शङ्कराचार्य अवतार लिये ज्यादह युक्ति संस्कृत में और बहुत से व्यास के भाष्य के साथ बिरोध दोष दिखा कर भाष्य लिख चुका हूं इतना ही भाषा में तत्व समझाने को काफी होगा कुर्वन्नेव कर्त्ता ही हुआ काम अग्नि होत्र आदि

अज्ञकतस्याऽज्ञानिनःतच्छक्त्यभावात्ज्ञानिनोपिकलिनिवेधविशेषज्ञानात् भोगेहाविशेषा दनासक्त्या लक्ष्यावृत्तित्ववाच्यवृत्तित्वयोः प्रतियोगितया बाधसमानाधि करणजीवन्मुक्तदशीयज्ञानवत्त यालोकसंजिघृक्षया शिक्षयेवैत्यादि कुतश्चिन्निमित्तात्सा अमाचार निरूकतात्म ग्रहंकत्तुं मशक्तस्ये त्यर्थःअत एवत्यक्त्वेति ४।१२। श्लो०

गीताव्याख्यानरवेन कुतश्चिन्निमित्तात्कर्म परित्यागासंभवे सति कर्मणितत्फलेच संगरहिततयास्वप्रयोजनाभावाल्लोकसंग्रहार्थं पर्वंवत्कर्मणि प्रवृत्तोपीत्यादिना प्रवृत्तिचक्रपक्रतित प्रवृ-

———— :o: ————

जीविषेत् सौ वर्ष जीने की इच्छा विद्वान् उस के और उस के फल में मिथ्यात्व दृष्टि करता हुआ और ज्ञानी सत्यता दृष्टि करता हुआ करे क्यों कि उतनी ही पुरुष की परम आयुनिरूपण की है उसी का अनुवाद करते हुए कर्म करने का बिधान करते हैं इस प्रकार से जीने की इच्छा करने वाले तुम्ह नरदेहाभिमानी अज्ञानी और भूत पूर्ववावर्त्तमान माया विशिष्ट पर्यन्त नरदेहा भिमान में लेश विद्या की मिथ्यात्व दृष्टि करने वाले को इस प्रकार से और प्रकार रास्ता न करने इत्यादि जो आज कल मान रहे है नही ऐसा हो सकता जिस से बुरा कर्म लिप्त नही इस लिये शास्त्र विहित कर्म को करता हुआ ही जीने की इच्छा करे ।

यहा भाष्यकार पहले दी हुई अवतरण रूप भूमिका के सिद्ध करने के लिये शङ्का करते हैं कि कैसे पहले मन्त्र सेज्ञानि के ज्ञान की निष्ठा और दूसरे मन्त्र से ज्ञानि अज्ञानी दोनों कर्म निष्ठा कही संन्यासिन इस पदका आसक्ति रहित होना

त्यधिकार स्यलक्ष्ये ऽभावज्ञानिनो ज्ञानिनो बोधितकर्मोकितने विरुध्यते नापिस्तुतयेनुर्मतिर्वैल्यत्रव्यासीये ३।४।

१४ सूत्रेयत्र प्रकरण सामर्थ्याद्विद्वानेव कुर्वन्नि तिसवध्य तेतथाविविद्यास्तुतये कर्मानुष्ठानतिहद्वद्रष्टव्यम् नकर्मलिप्यते नरे इति हिबदयति एतदुक्तंभवति यावज्जीवकर्मकुर्वत्यपिविदुषि पुरुषेन कर्म लेपायभवति विद्यासामर्थ्यादितित देवविद्यास्तूयते इति स्वभावर्णविरोधः

और पूर्व युग में संन्यासाश्रम भी लेने वाला वह पहले अर्थ कह ही चुके हैं तदुक्तस्य का भी ज्ञानि और अज्ञानि दोनो ही ज्ञान निष्ठा रहित या कलियुग के संन्यास निषेध और आरूढ पतितत संभावना देखने वाले दोनों यही अर्थ है।

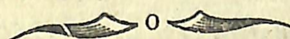
इस शङ्का का उत्तर देते हैं ज्ञान और कर्म का विरोध क्या तुने नहीं जिस से एक ही कर्त्ता को अज्ञानी को ज्ञान का उपदेश की शंका जितलाते हैं यह अभिप्राय हुआ पहला मन्त्र ज्ञान का स्वरूप कहता है वह जीव का व्यावहारिक स्वरूप नहीं दूसरा मन्त्र जीव का कर्म कर्त्ता व्यवहार का स्वरूप बतलाता हुआ ज्ञानि के ज्ञान की प्रशंसा कर्ता हुआ स्फुट यही कहता है कि लक्ष्य स्वरूप ज्ञान का कर्म संबन्ध नही उस में बाध और जीव जो अन्तःकरणावच्छिन्न शरीर रूप अभिन्न मनुष्योंह मित्यादि (मैं मनुष्य हूं) ऐसा अध्यास से प्रतीत हो रहा है उसी को है इस से बाध सामानाधि करण्य (होताहुआ न होना याने मिथ्या) रूप से विशेष्य में होने पर भी परमार्थ से दोनों एक जगह कर्म ज्ञान नही इकठे रहते यह इन को पहाड की तरह बड़ा पक्का विरोध है यहां भी जीने की इच्छा

विद्वाव ांशारीरिकि कर्म त्यागाभावरूपवैदिक कर्मसंन्यासा भावे ऽपि यावज्जीव अग्निहोत्रमिति विधिबलप्राप्त कर्मानुष्ठायिना। मपिलक्षघेलद्धाधष्ठानरूपात्मकस्य भावरूपसंन्यास स्याभ्यन्तर स्यस हिम्नाक्रियमाणं पापकर्मापिनलिप्यत बन्धकारकम विद्वद्वन्नभोग फलकं सगुणविद्योपासन फलंब्रह्मलोकीयंतु भवतिजीवनमुक्तस्य कर्मण: शास्त्रीयस्यमुक्त्यर्थं शुद्धार्दिफलकत्वस्याविद्वत्तुल्यस्यवक्तु मशक्यत्वात्जीवन्मुक्तानामपि मृगप्रेमतरजडभरतादेर्यशुकव्यास जनकरामकृष्णादेस्तत्रच सुखभोगस्यतन्त दन्यजन्मन्यनुभवसिद्ध-त्वात्

करता हुआ करे और वहां पिछले मन्त्र से इच्छा का बाधरूप देखता हुआ लोभ दृष्टि न करता हुआ असङ्ग आत्मा को ज्ञानी देखे ऐसा लक्ष्य और वाच्य रूप का विषय भेद स्फुट प्रतीत होता है तथा न जीवते मरणे वा गृधिं कुर्वी तारण्य मियात अर्थात् जीने मरने की इच्छा न करे प्राकृत होती हुई को मिथ्या जाने यही कोटि उत्कृष्ट कही है व्यासजी ने भी पुत्र शुकदेव को विचार कर निश्चय से सिद्धान्त बात कही है द्वावि मावथ पन्थानौ यत्रवेदाः प्रतिष्ठाताः प्रवृत्ति लक्षणो धर्मो निवृत्तिश्च विभावितः यहां दो मार्ग हैं।

इस लोक में जिस को वेद कहते हैं (इस से तदनुकूल याने उन की याददाश्त स्मृति अर्थात अठारह पुराण सूत्र ग्रन्थ दर्शन शास्त्र तन्त्रमूल अठारह पुराण उपपुराण इहसभी सतना ही कहते हैं यह भी कह दिया क्यों कि मन्त्र ब्राह्मण योर्वेद नाम धेयम् मन्त्र ब्राह्मण तो वेद है और सभ उन की याद-दाश्त है इस से सभ का एक ही अर्थ है।

अधिकार प्राप्तौ यावदधिकार मवस्थितिराधिकारिका-णाम् ३।३।३२। सूत्रेवसिष्ठभृगुव्यासादिवेदान्ता चार्यजीवन्मुक्ता वतारदृष्टान्तेनाधिकारस्येशोपार्जितफलस्यभोगानन्तरं विदेहमुक्ति र्नित्यमुक्तस्य तस्यतावदेवहिचिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथसपत्स्ये इत्या द्युक्त्वायावन्नविमोक्ष्येइत्यस्यभोगयोग्यै कानेकदेहविरहोयावन्ने त्यर्थात् भोगेनत्वितरेक्षपयित्वासंपद्यते ४।१।१९ सूत्रेण अतोन्या प्यपिह्येकेषामुभयोः ४।१।१७ इत्यादि सूत्रेतत्तदन्य भोग्यकर्माणांवि धानलाभ स्तस्मिन्नेवजन्मनिसप्तम भूमिकालाभेयुगान्तरीय संन्यासकल्पेन सकलत्यागेऽपिसाधुकृत्यादीनां ननिष्फलत्वंकि-मुतासंन्यासिस्याऽसक्तस्य भोगफलकधर्मकर्मवैदिकंस्मर्त्तंकुर्वतइत एवबृहदारण्यके स्वभाष्ये धर्माणांसंसार मिथ्यात्वेऽपिमिथ्या फलजनकत्वंस्वप्नशुक्रपातप्रत्यक्षफलदर्शनेनसमाहितमुत्क्रान्त्या द्यर्थवत्वाधिकरणं चतगुणोपासकानां संगच्छते आनन्दगिरिव्या



कि एक प्रवृत्ति मार्ग है और एक निवृति मार्ग है कर्म निष्ठा और ज्ञान निष्ठा ज्ञान रहित को कर्म निष्ठा ज्ञानि को ज्ञाननिष्ठा निष्ठानाम समाप्ति काहै याने आखिरी अवस्था अर्थात् अज्ञानी कर्म करता है वही फल याचित शुद्धि के लिये उस की आखिरी अवस्था है ज्ञानी ज्ञान दृष्टि से असङ्ग हुआ ज्ञान प्रधान होता है उसके अपने शारीरक सत्कर्म का सुख फल धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य द्वारा है धर्म और ऐश्वर्य अंश का वैषयिक फल होता है वैराग्य ज्ञान से वह उस में भी मिथ्या (होते हुए भी नहोता) ऐसी दृष्टि से असङ्ग हुआ ज्ञान प्रधान भूमि का वृद्धि से या देवता के साथ मुक्त होता है और भी आगे विषय विभाग दिखाया जायगा।२।९।१०।

स्यायांतुऋहूपप्लवः कलौसंन्यासनिषेधकवाक्यविरोधश्चस्यादाश्रम तद्भूताधिकरणेन ३। ४। ४०सूत्रस्थेनारूढपतित प्रायश्चित्ताभाव कथनेनपतित त्वसंभावनयाक्लीबस्यापि अष्टविधब्रह्मचर्यसमर्थ नात्कलिनिषेधवचनस्योपलरेखात्वात् संन्यासगृह्यादावनुष्ठेयंतुवा पदायनः३।२।१।९ इत्यादिनाश्रम कर्मविधानाच्च संन्यासविधानं त्वारूढपति त्वाभावसंभावनादार्ढ्ये युगान्तरेएवयुग संख्यानियत संख्यातोनियत इति दिक्!

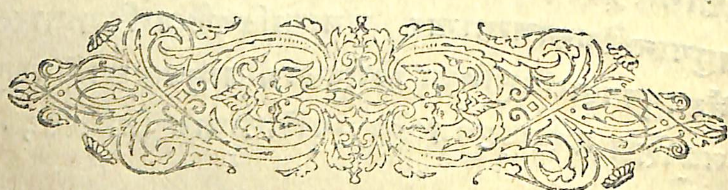
अग्निहोत्रश्रवणांयावज्जी वश्रुतेरावश्यक त्वादेवमन्यान्यपि नित्यानि नित्यकाम्यानि चादिपदेनग्राह्यानिवैदिकानिस्मार्तानिच तावद्धिपरमायुरिति योगादिविशेषासहकारे इत्यर्थः योगसाहा-य्येनतु पूर्वोक्तयोगानु कूलोक्तार्थरीत्याऽऽधिक्यमपि व्यासादीनां प्रसिद्धमृश्रुतिविरोधपरिहारश्चतद्रीत्यैव प्राप्तइतिनकर्मफलमायु रैहिक मितिभावोयोगस्यै वहितत्फलंरसायन सेवनादेर्वाक्वचि त्त्वायुर्मात्रकामयज्ञश्रवणेऽपितदनित्याभिप्रायमितिनतेनवेदवाक्ये नविरोधः इत्येतद्विधीयतेइतियावज्जीवश्रुतिवत्कर्मसामान्येननि त्यत्वंविधीयतेपरिसंख्यायतेवाकर्माभावइत्यर्थः परिसंख्यानियमौ चैकनियमशब्देनापिसंगृह्येते इत्यन्यत्रनिरूपित मितिध्येयमूनरमा त्राभिमानि निर्देहाध्यासवतिअज्ञानिनिनरस्तन्मात्राभिमानोले शाविद्यातद्वतिजीवन्मुक्तेपि असक्ततयाबाधसमानाधिकरणभो-गा भिलाषाप्रयोजक भूतपूर्वदेहाध्यासस्य प्रतियोगितयासंसर्ग तारतम्यवतिइत्यर्थःप्रकारान्तरंनास्तीतिअज्ञानिनोविहितोकरणे प्रत्यवा यप्रसङ्गाज्ज्ञानिनो ऽपिअधिकार विशेषाज्ञानेनादृष्टवि विशेषमन्तराप्रारब्धकर्मत्यागा भावाच्चेतिभावः कर्मणेतिपुरुष इतिशेषःज्ञाननिष्ठा कर्मनिष्ठापरत्वमनयोर्मन्त्रयोः कथमितिश-

ङ्कते कथमिति संन्यासिन इति पूर्वव्याख्यान

रीत्याआसक्तिरहित त्वरूपाभ्यन्तरसंन्यासिनोयुगन्तरीय विहित संन्यासा भ्रमवतोवेत्यर्थः तदशक्तस्ये त्यस्यापि पूर्वरीत्या ज्ञानिनो ऽपिअज्ञानिनश्चे त्यर्थः सामान्यतः कर्मविधानेन रामानुज माध्वनिम्बार्क वल्लभादिवज्ज्ञान कर्मसमुच्चयःसमप्राधान्यभावेन शैवभट्टभास्करादिवदङ्गाङ्गिभावेन वाकथनंस्यादिति शङ्काभि प्रायः उत्तरयति ज्ञानेतिलक्ष्यांशे क्रियायास्तत्कर्तृ त्वस्यचनित्य त्वेनविरुद्धत्वस्यतदधीन संस्कार्यत्वविकार्योप्यत्वस्यचशुद्धत्वापाप विद्धत्वसर्वगतत्वविरुद्धत्वेना स्वीकाराज्ज्ञान कर्मणोर्नसमुच्चय स्समप्राधान्ये नाङ्गाङ्गिभावेन वेत्यभिप्रायःनमुक्तौज्ञानकर्म वृत्तिद्वित्वावच्छिन्न कारणता शक्तिर्निपुणता लोकेकाव्य शास्त्राद्यवेक्षणात् काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवेइति काव्य प्रकाशोक्तदिशात्र यस्यत्रित्वावच्छिन्न कारणतावत्कर्मज्ञा नवृत्तिकारणतावच्छेदकज्ञात्वाच्छिन्न प्रतियोगिताकपर्याप्त्यनुयोगि तावच्छेदकरूपद्वित्वरूपवृत्यवच्छेदकताक कारणतानमुक्तिनिरूपि तेत्यभिप्रायः ज्ञानिनोयथोक्तस्य प्रवृत्तिचक्रेकर्तृत्वादिप्रतियोगि तयावत्र्मानंबाधावच्छिन्नतयान ज्ञानंविरुणद्धि भिन्नाश्रयकत्वात् मुक्ति रूपभिन्नफलत्वाच्च कर्मज्ञानयोः तमेवेतिश्रुत्यामाध्वा दिवत् मुक्तिंप्रतिकर्मणो भक्त्यादेरपिकारण त्वस्यास्वीकारात् शमादियुक्तस्यैहिकामुष्मिकान्तः करणशुद्ध्यर्थतया नित्यमुक्तस्वरू पज्ञानात्पूर्वं मेतमित्यादिश्रुत्याकर्मविनियोगोविविदिषासंन्यास श्चयुगान्तरेजन्मजन्मान्तर समासादितले शाविद्यातारतम्येनपुन र्नित्यमुक्तस्यापिभूमिका विशेषस्थजीवन्मुक्त ज्ञानिनस्तुप्रवृत्तिनि निवृत्तिच क्रस्यादृष्टवशादेव प्रवृत्तिसंन्यास विधिस्तदर्थं नविधा

यका किन्तुयथाप्राप्ता नुवादइवयथासंभवि वैराग्यसामानाधिक रण्येन संन्यासविधानाच्च नवाधविध्यनुवाद विरोधौयदहरेवविर जेत्तदहरेव प्रव्रजेदित्यस्येतिदिक् तदेवस्पष्टयतिजिजीविषेदिति अनेनहिअज्ञानिवृते रनासक्तवृत्ति वाधसमानाधिकरणस्यच जी वितस्यतदिच्छायाश्चानुवादः पूर्वोक्तो विषयभेदकारकोद्योत्यते इतिभावः

मागृधइतिच शमादियुक्तज्ञानयोग्यसंपाद्यं वैराग्यमना सक्तवृत्तिवाधंचमन्त्रेणलिङाचानुवदन्गृधिरूपैषणात्रयाभावमाह अरण्यमियादित्यादि संन्यासशब्दादित्यन्तं युगान्तरवृत्तिविवि- दिषः संन्यासनिवृत्तिच क्रपतितादृष्टाधीनवाह्य संन्यासानुबादं पूवृत्तिच क्रपतितानासक्ति रूपमाभ्यन्तरसंन्यासमाहनकर्मणाम नारम्भादित्यत्रान्त संन्यास कर्मणांन्याहा मितित्वगीतोक्तेस्त त्रफलकामना त्यागोहिवा धस्यसाक्षिविद्रुस्यलक्ष्यस्यस्यानुवाद कोनासक्ति रूपएवेतिध्येयम् संन्यासश्चोत्तरेण निवृतिमार्गेणेति निवृत्तिचक्रस्थतुलि तपथेत्यर्थः अतएवेदंपदं संन्यासात्पृथगिदमाह त्यागोऽनासंगोयथोक्तएव अतिरेचयति इति अनासक्तितारतम्यं लेशो विद्यातारतम्याद्बोधयन्तु चक्रोटिस्थत्वम दृष्टवशानासक्ति मार्गं पतितस्याहएवमग्रेपिध्येयम् १०



साध्वमते कर्माणियथोक्त मन्त्रादिना बोधिता नीशो पासित लक्षणानिविष्णुभजनतन्नामकीर्तन तदवतारमूर्त्यर्चारूपा णिशाङ्करप्रती कोपासनारीत्यावा प्रत्यक्षफलार्थि भिरध्या सरी त्यावाशालिङल्यादिदर्शितभक्तिमार्गेणोपास्यानियावज्जीव कुर्यात् नतुकदाचित्कमंत्यजेत त्रिदण्डिसन्यासिनापिशालि ग्रामा र्चायज्ञोपवीतादिधारणवैराग्यंगोपीचन्दनादि नात्रिशूलाकारति लकधारणंतुलसीमालादियथोक्तवैष्णवपशुयागादिसोमादिगृहस्थ वैष्णवधर्मवर्जं सेवनीयानीत्यर्थः गृहस्थसाधवादिदिक्षितेनभेदेन प्रतीकार्चादि वैदिकस्मार्त सकलकर्मकाण्डादिक मास्थेयमेवज्ञात

माध्वाचार्य के मत में यह अर्थ है कि वेदस्मृति में कहे मुताबिक सत्कर्म करते हुए ईश के उपासना स्वरूप भगवान् विष्णु महाराजजी का भजन उनका नाम स्मरण ध्यान गुणगान प्रार्थनादि अवतार मूर्त्ति पूजादि प्रती कोपासना(जो शङ्करा दि अभेद मतमें तद्रूप से शालिग्राम शिला आदि में की जाती है) और (भेदवाद जो शाङ्कर व्यवहार का अनुवाद मानतेहैं उन के मत में अंश अंशिरूप से भी अभेद और तार्किकके से भेद आरोपित अभेद रूप अध्यासोपासना से करता हुआ जीने की इच्छा करे अर्थात् जब तक जिस भगवान् का जप यज्ञ ध्यान पूजा यज्ञ यज्ञ तपोयज्ञ आदि करता हो यथा शक्ति रहे बिलकुल न छोडदे जब तक हो सके त्रिदण्डि संन्यासि माध्व मत वालों को शालिग्राम शिलापूजायज्ञोपवीतादि धारण वैराग्य गोपी- चन्द नादि सूक्ष्म त्रिशूलाकारतिलक तुलसी मालादि वैष्णवा चार धारण करना वैदिक वैष्णव पशुयाग सोमयागादि गृहस्थ वैष्णव धर्मो को छोडकर और सभी कर्त्तव्य ही हैगृहस्थ वैष्णव

ध्यश्च तमात्मीयभावेन सर्वसाक्षिविष्णु ध्यानरूपभक्तिमार्गेणतस्य
तत्कर्मान्तः करणशुद्धितारतम्यद्वारा निरन्तरनिरतिशया तैलधा
वशवदवच्छिन्न स्वैकतानता रूपभक्तिसमाधिजननेनाङ्गतया
समप्रधान्येन संचितपापक्षयादि नावाज्ञानसमुच्चिता मुक्तिहेतु
रितितदाहएवंत्वयि अन्यथामुक्ति विपरीतंकर्मनसंपद्यते इत
तस्मात्कर्मणो भक्तिलक्षणज्ञानाच्चा भेदभावनादार्ढ्येनस मात्म
भित्रइत्यादिवत्भगवाननन्तकल्याणगुणोहरिः कृछादशुभात्पाप
र्मणोमोचयतिसारूप्यसामीप्यसालोक्यमुक्तिद्वारेहजीवन्मुक्तिज

को तो भेद से अध्यासोपासनादि और वैदिक स्मार्त्त सभी क
कर्त्तव्य है और भगवान् को आत्मा आत्मीय (पुत्र स्त्री मि
मित्रादि) भावना से भक्ति मार्गोपदेश पूर्वक ध्यान गान
से प्रसन्न कर्त्तव्य ही है इस तरह से ज्ञान समप्रधान कर्म क
से संचित पाप का क्षययादि भक्ति काण्ड परमात्म ज्ञान स
च्चित (मिला हुआ) सामीप्य सालोक्यसारूप्य मुक्तिके मो
रासादि तुलित अलौकिक सुख को लाभ करता है वही लि
कि एवं त्वयिनान्यथतोस्ति याने इसी तरह भक्ति कर्म का
को ज्ञान के साथ करते कर्म हुए मुक्ति विपरीत नहीं होसक
याने इस कर्म करने से भगवान् अनन्त कल्याण (अच्छे) गु
वाला हरि अशुभपापादि कर्म उनके फल से छुडालेता है अ
जीवन्मुक्ति भक्ति के मुताबिक न्यून अधिक कोटि देता हु
परलोक में पूर्वोक्त तीन प्रकार की मुक्ति अवश्य देता है वा
लिखा नकर्म लिप्यतेनरे संसार के दुःख के देने वाले कर्म पा
आदि फिर इसे नही लगते वही भगवान् ने गीता में लिखा
नेहाभिक्रमनाशोस्तिप्रत्य वायोनविद्यतेस्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रा

रुयेनइतः प्रेत्यनसंपादयति तदाहनकर्मलिप्यते इति संसार बन्धाधायकं।

अशुभपापादिकंन विद्यते इत्यर्थः पूत्यत्रायोन विद्यते स्वल्पमप्यस्य धर्मस्यत्रायते महतोभयादितिगीतोक्तेः रामानुजा रिवद्विष्णु सायुज्यमुक्तिःशाङ्करादिवब्रह्म तदात्मकनित्यमुक्त स्वरूपप्राप्त प्राप्तिश्चमुक्ति रित्येतदेषांमतंनास्तिपरमप्रेमा रूपा मैत्रींदाढ्यादि वद्भेदभावनापुनरद्वैत श्रुतिसार्थक्यायाश्रीयतेमा ध्वैःसत्यंभिदेतिश्रुतेट ग्रेहादितिध्येयम् ११

महतो भयात् इस धर्ममें प्रारम्भ किये काम के विघ्न औरनाश नही जरूरकर्म औरउसका फल होताहै कभी भक्तिमें पापनही शाङ्करका अर्थहै किलदयरूपमेसंग रखती ऐसा देखेवानपूस्थऔर युगान्तरसंन्यासमें बनकोंभी जाय ऐसाकहाहै यहभीलक्ष्यकेलिये विधि नही वह वि–ध्यतीत है वाप्त ही की अथनी दृढता से हुए २ संन्यासादिका अनुवाद है (आमन्त्रण में लिङ्होताहै) इस मेएषणा जो तीन प्रकार की इच्छा कही उसका अभाव (न होना) वैराग्यादि की दृढ़ता के लिये कहा और आगेभी न पुरियादिति न फिर लौटे याने आरूढपतित गृहस्थादि होने से न करे ऐसा दृढ आरूढ पतित संभावना न होने पर कलि भिन्न युग में संन्यास का विद्वान् के लिये अनुवाद है और अविद्वान् के लिये विधि है शाप्यांशकी विधि में दोनों को एक रूप्य भिन्न युग में माना जाता है कर्म ज्ञान का फल तो भिन्न ही है कर्म का फल भोग है ज्ञानका फलमुक्ति यही कहा

१नाट–यह भाषा माध्व के मतकी नहीं प्रसङ्गसे नेहामिकमके अर्थके शङ्करा चार्यकी अपनी ही टीका का१००पृष्टतकअनुवादहै

भट्टभास्करमते समप्राधान्येन भगवदुपासा भेदाभेदज्ञानंच पारमार्थिकमेवद्वयं वृक्षाभेदज्ञान शाखापरस्पर भेदकानपूर्वकं शाखान्तरेण शाखान्तरवत्कार्य साधकमपिमुक्ति रूपफलहेतु साचसमप्राधान्येन भक्तिकर्मानुष्ठानेन जीवन्मुक्तस्य भगवत्स्म दर्शनेभक्ति तारतम्येनसामीप्य सालोक्यसारूप्य सायुज्यरूपाभेद ज्ञानतारतम्याधी नारम्भापवरक्षिपवत् यथाहिरम्भाया स्त्वचाछेद् पृथमद्वितीयादि क्रमेणात्यन्तमेवान्ततो विनाशएवं सालोक्यादौ भेदनाशक्रमेणसायुज्यऽत्यान्ताभेदःप्रागेवज्ञातोऽपि पुन भेदाक्षमोऽत्यन्त मुक्तितयासंपद्यते इत्येतदर्थं यावज्जीवं कर्माणिकुर्वन्नेव शत वर्षाणि जिजीविषेद् भिन्नाभिन्न भगवन्तंपश्य

———— :o: ————

है इमौद्वावेव पन्था नौनिष्क्रान्ततरौभवतः क्रिया पथश्चैव पुरस्तात्संन्यासश्च तरेण निवृत्ति मार्गैषणात्रय त्यागः तयोः संन्यास एवातिरेच यतिन्यास एवात्यरेचयदितिचतैत्तरीयके दो यह मार्ग उत्कृष्ट कोटि के पहुंचाने वाले (उत्तम हैं) एक कर्म काण्ड वह ज्ञान से पहले चित्त शुद्धि के लिये भीहै (संन्यासश्च) पुत्रकी इच्छा धनकी इच्छा लोककी इच्छा के त्याग (याने मिथ्या दोष)कर और युगान्तर में संन्यास आश्रम और सर्व युग साधारण ज्ञान निष्ठारूप अनासक्ति (आत्म चित शुद्धिनिर्विशेष निराकार नें कर्म आदि नही ऐसा कर्म को मिथ्या देखना) यह अपने वर्णाश्रम धर्माचरण सहित भी दूसरा मार्ग ज्ञान प्रधान्य का है इन में पहली कोटि ऊपर का दर्जाहै पहली कोटि तीन भूमिका तक है फिर आगे चार से सात तक है इसी लिये तैतरीय में (त्याग) असङ्ग दर्जे भी पाप की शङ्का न थोड़ा सा भी यह धर्म आचरण किया हुआ बड़े २ भयों से बचा लेता है यह अर्थ

जीवन्मुक्तो हरिदीक्षितः एवंत्वयिसति भगवद्भजनतत्परे ददामिबुद्धियोगंतं येनमांमुपयान्तिते इति भगवदुक्तदिशाभग वत्कृपाभरेणा त्यन्तज्ञानभक्ति दार्ढ्यादिनासतस्त तामचलां भक्तितंतत्रैवविद्धास्यइत्यति गीतोक्तदिशादृढभक्ति महिम्ना भेदनाशक्रमेणात्यन्तमभेदोजायतेइत्यन्यथाभेदलक्षणबन्धोनास्तिन श्यति कर्माशुभंनलिप्यते बन्धकंनभवति प्राप्यमांननिवर्तते इति गीतोक्तेः १२

है रामानुज आदि की तरह इन के मत में सायुज्य मुक्ति नही और शङ्कर मत की तरह ब्रह्म और परमार्थ से जीव भी वैसा नित्य मुक्ति और प्राप्त प्राप्ति (मिले का ही विघ्न हटा कर लेना) मुक्ति यह मत भी इन का नही केवल अभेद भावना दृढ करना इस के लिये अभेद श्रुतिओं में लिखा यह मानते हैं भाल्लवेयश्रुति में(जोशाङ्कर लोक व्यवहार का अनुवाद मानते हैं) लिखा है कि सतयंभिदा सत्यंभिदा भेद ही सत्य है उसी से इन का ज्यादह आग्रह है किन्तु जीव को अणु और भृत्य की तरह यह लोग अंशमानते हैं इनसे भी अंशाव तारोंको अप्राकृत विभूति का होना कह कर पूर्णावतार कृष्ण तुलित ही मानतेहैं भट्टभास्करके मत में भगवान् की उपासना और भेदा भेद ज्ञान जैसे वृक्ष शाखा मूलादि रूप से भिन्न २ भीं और वृक्षरूप से अभिन्नभी है वैसे ही पारमार्थिक (सच्चा) और सामीप्यसा लोक्यसारूप्य सायुज्य मुक्ति का हेतुहै मगर अपनी २ भक्ति के अनुसार ही जीवन्मुक्ति और परममुकति दीजाती है जैसेकेलेक स्तम्भा (खम्भा) के छीलने से आखिर खतम है इसी तरह सामीप्यादि मुक्ति भी दर्जेव दर्जेउच्चकोटि में पहुंचती परमा-

निम्बादित्यमते कुर्वन्नेवहि वैदिकस्मार्त्तानि कर्म्माणिईशस्य हरेर्ध्यानादी निशाण्डिल्यविद्योक्तानि भक्तिज्ञानलक्षणोपासना निचाङ्गाङ्गिभावया नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तादिकर्मसंचय जनित पुण्योपचयनितान्तरस्तनि खिलदुरितकश्मलःभक्त्याद्वैताद्वैतलक्षणायाऽभिन्नमेवपरमात्मानं हरिंपरमार्थतोजानन् परमार्थमेवव्यवहारकालेरज्जु भुजङ्गवदेकाकीनरमते इति श्रुतिशिरः

त्मा से हीमिलना है उसीको श्रुति कहती है जबतक जीएसैंकड़ों वर्ष तबतक भक्ति काण्ड नछोडकर वैदिक स्मार्त्त कर्म करता ही चले जीने की इच्छा करे इसतरह भिन्नाभिन्न हरिभक्ति करते हुए तुम्हे ददामि बुद्धियो गंतंयेन मामुपयान्तिते मैं उस बुद्धियोग (ज्ञान भक्तियोग) को देता हूं जिस से वह मुझे आमिलते हैं इसी गीता के तरीके मुताबिक भगवान् भवित तुल्य कृपाके दृढ होने से तस्यतस्य चलां भक्तिं तन्नैव विदधाम्यहम् उसकी दृढ भक्ति को मैं वही दृढ तर कर देता हूं इस लीला के कथनानुसार दृढ हुई भक्ति की महिमासे भेदनाश के क्रम से (दर्जैव दर्जे)अत्यन्त अभेद होजाता है इससे अन्यथा भेद रूप जो बन्धहै वह नहीं रहता याने हट जाता है और अशुभ कर्म लिप्त नही होता जैसे गङ्गा स्नान करते चले आरहे विष्टा के संसर्ग से अपवित्र नहीं होसकता नित्य अस्थि पडने पर भी जान्हवी अपवित्र नहीं और उसमें पांओ लगने पर भी अपवित्रता नही किन्तु अस्थि और स्नाता दोनों की अपवित्रता हटकर अधिकाधिक पुण्य लाभ होता है यही हाल भक्ति का है

निम्बादित्यके मत में यह अर्थ है कि वैदिक स्मार्त्तकर्मो को ईश अर्थात् हरिका ध्यान आदिक शाण्डिल्यआदि उपासन

समुक्तदिशाविवर्तमानांस्वस्मिन्नवहरौ भिदांक्माधिष्ठान ज्ञानेनशाखा रुन्धतिवत् क्रमशएवबाधयन्नज्ञानं तद्भेदज्ञानंच तदविद्या विनाशक्रमेणाभेदज्ञानदार्ढ्यं क्रमेणचजीवन्मुक्तितारता म्यमासाद्यंशात्य भेदंसालोक्यसामीप्यसा रूप्यसायुज्यमुक्तो रासाद्यन्ननन्त कल्याणगुण सर्वज्ञपरमात्म कृपाभराम्नां ज्ञात्वान निर्वन्तते इति गीतोक्तदि ।

विद्या सेकहे हुए भक्ति ज्ञान रूप उपासना के साथ करता हुआ (अङ्गाङ्गि भाव) कर्म अवयव की तरह फलमें सहायक होने से अङ्ग जो नित्यनित्य काम्य अनिषिद्ध काम्य और प्रायश्चित हैं उन से पुण्य बढ़ने से अन्तःकरण के सभ पाप नष्ट होते हैं और अङ्विबर्त्त द्वैता द्वैत से भक्ति ज्ञान से परमार्थ से अभिन्न ही हरि को व्यवहार काल में परमार्थ से ही रज्जु में भुजङ्ग (सर्प) की तरह माया से वर्त्तमान प्रतीत (भ्रममात्र) हो रहे भेद को अधिष्ठान अनन्त कल्याण गुण वाले हरि के ज्ञान से क्रमशः शाखारुन्धती न्याय से (जैसे अरुन्धती तारा को जानने के लिये पहले शाखा दिखाते हैं कि वह अरुन्धती फिर धीरे २ अरुन्धती को उस के पास से दृष्टि निकालते २ देखलेते हैं इसी तरह) हयते हुए भक्ति केबढने और अभेद ज्ञान के दृढता के क्रम से (दर्जैबदर्जे जीवन्मुक्ति के न्यून अधिक फल के अनुभव करते हुए अत्यन्ता भेद को भी मरणके बाद सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्य को प्राप्ति से प्राप्त कर परम तत्व भगवान् कृपा भक्ति से अत्यद्भुतदिव्यैश्वर्य के आनन्द को अनुभव करते हैं अप्राकृतदिव्यदेह को प्राप्त होकर फिर नीचे अप्राकृतदेह में लौटना नहीं होता जैसे गीता में कहा है

शाऽप्राकृतलीला कैवल्यसुखंभागवतम इनुवतेभागवतानरा इति एवंसतिना न्यथेदमितथमेवकर्म फलंनविपरीतं संसारबन्धक यतोहिसमदुःख मानुषादिजनुः कारकमशुभं कर्मनलिप्यतेफल तोनरेनारायणात्म कत्वान्नरेनरसमूहायनात्मके परात्म भिन्ना भिन्नदीक्षिते जीवन्मुक्ते भगवद्भक्ते इत्यर्थः १३

रामानुजमते कर्माणिकुर्वन्नेव वैदिकस्मार्त्तानिभक्त्युपकरण भूतानिच समाश्रयणचक्रादिचिन्ह श्रीतिलकहीरकधारणादीनि निरन्तरतैलधारावदनवच्छिन्न विशिष्टाद्वितीयस्थूलचिद चिदात्मा भिन्नसूक्ष्मचिदचिद्रूपजी वाख्यसंकर्षणाहंकाराभिधानिरुद्धमनआ

मांप्राप्यवान निवर्त्तन्ते मुझे प्राप्त हो नही लौट सकते वह फल इसी तरह है नान्यथा इससे उलटा नही इसी से मानुषादि जन्म बन्ध के देनेवाले पाप कर्म इसे नही लिपटते १३

रामानुज के मत में ऐसा अर्थ हो सकता है कि वैदिक स्मार्त्त भक्ति के उपकरण (समाश्रय चक्रादि चिन्ह श्री तिलक हीरक धारणआदि के साथ विशिष्टाद्वितीय स्थूल चिद् जड स्वरूप आत्मा से अभिन्न सूक्ष्म चिद् जड स्वरूप जीव नाम का संकर्षण अहंकार नाम का अनिरुद्ध मन नाम का प्रद्युम्न वासुदेव नाम का परमात्मा इस तरह का चतुर्व्यूह नारायणके ध्यान में एकतानहोकर उसीकी पूजाआदि करता हुआ उसीके अंशावतार

---

१ शरण मन्त्र शीतल प्रसाद (साधू का जूठा खाना) श्रीतिलकऐसात्रिशूली कारलाल चिट्या आदि तिलक तुलसी माला हीरातुलसी का बडा मोटा दाना

स्यपद्युम्न वासुदेव स्य परमात्मन तुर्व्यूह नारायणौ कतान ताश्च भक्तिसमाधिं च कुर्वन्न वतदनुगुण रामाद्युपांजिजीविषेत्त्रि दण्डयपिसमाश्रितोविरक्तोवाद्यावः शालीनश्चविरागी समाश्रितो रामतारकाद्युपदिष्टइत्यर्थेनकर्मत्यागेन अङ्गाङ्गि भावेनसमप्रा धान्येनवाज्ञानकर्मभ्यासमुच्चिता भ्यांनेवमुक्तिरिति र्नातस्तद्वा न्ततएवंकर्मकुर्वतिसहभक्त्याविशिष्टाद्वितीयेज्ञानेनान्यथानास्ति अवश्यमेवयथोक्तं सालोक्यसामी प्यसारूप्यसायुज्यमुक्ति त्रये क्रमात्भक्तिदार्ढ्य तारतम्यक्रमेण भवतिवन्धनरूपसं सर्गंनास्ति

रामादि की भक्ति पूजादि करता हुआ सैंकडों वर्ष जीने की इच्छा करते रहना त्रिदण्ड और वैरागी आचारी सभी प्रकार के गृहस्थ विरक्त लशकरी आदि समाश्रिती ने कर्म शास्त्रीय कर्त्तव्य ही है कभी त्याज्य नहीं अङ्गाङ्गि भाव समप्रधान भाव किसी तरह भी हो ज्ञान कर्म से मिल कर ही मुक्ति सालो क्यादि रूप रामानुज मत में मानी गई है इस तरह से भक्ति के साथ सत्कर्म वैदिक स्मार्त्त करते हुए विशिष्टा द्वितीय ज्ञान करके अवश्य ही सालोक्यादि मुक्ति हो सकती है इस में(अन्य था) झूठ नहीं भक्ति क्रम से दर्जा अवश्य मिलेगा संसार बन्धन पाप कर्म इस में कुछ नहीं याने भगवान् के मन्त्र से तारित हुए समाश्रित और पशु जन की तरह नहीं किन्तु उन्हों ने अपने मनुष्य जन्म को सफल कर लिया इस से उनकीभक्ति गङ्गासे• अशुभ कर्म का कुछ भी संबन्ध नहीं हो सकता १४

• नोट—मगर उत्तरकाण्डरामायण४२सर्गमें देखलें भगवान् राम चन्द्रसुद भैरवी चक्र के उपदेश से भक्तों को अनुगृहीत करगयेहैं

नवा शुभं कर्मलिप्यते समाश्रयणेन रामतारकादिभिस्तारि तस्य-
नारायणशरणेन वानरेविज्ञात मनुष्यजन्म फललयानरत्वेन।पशा
वपूनत्वे खलुविहितानाचरण निषिद्धसेवनादिना ऽशुभलेपोन
भगवच्छरणस्यसनाश्रितस्येतिभावः १४

बल्लभमते कुर्वन्नेव वैदिकस्मर्त्तानि कर्माणिभक्त्याचा
नन्यया पुष्टि पुष्ट्यावरगुरोः कृष्णस्यशुद्धाद्वितीयं कृष्णमेवाग्नि
वविस्फुलिङ्गा स्वात्मानमनुरूपं जानन् सर्वात्मनासमर्पित
सुतदारमित्रादिः स्व निःकृष्णः हरिमेवानिताप्तमन्यथ्यन् जिजीवि
षेत्एवंत्वयिसतिनान्यथा।एकाकीनरमते श्रुत्युक्तदि· त्वद्वयमेवतदे

बल्लभ के मत में अर्थ ऐसा होसकता है कि वैदिक स्मार्त्त
कर्मों को करता हुआ पुष्ट २ भक्ति (शृङ्गार रस प्रधान
गोपि के तुल्य) कृष्ण रूप (गोस्वामी) को करता हुआ उसो
कृष्णरूप अग्नि के चिंगाडे तुल्य अणुरूप शुद्धा द्वितीय जीव
रूप को जानता हुआ सभी प्रकार आत्मा सुत (पुत्र) दारा
(स्त्री) आदि भगवान् कृष्ण के समर्पण शरण मन्त्र ब्रह्म संबन्ध
से कृतकृत्य होकर सब रूप से हरि को ही निरन्तर देखता हुआ
सैंकडों वर्ष जीने की इच्छा करे इस तरह तेरे हते हुए नान्यथा
याने एकाकी नरमते इकला भगवान् भी आनन्द नही करसकता
इस श्रुति के अनुसार गोपीजन की तरह गोलोक में मिलने
वाले आनन्द भगवान् अवश्य प्राप्त करादेते है इसमें किसी
पाप की शंका भी (जेसे गङ्गा में हडडी फेंकी जाय) नही हो
सकती गीता में लिखा है नेहाभि क्रमनाशोस्ति प्रत्यवायोन विद्य
तेस्वल्पमप्यस्य धर्मस्यत्रायते महतोभयात् इस भक्तिमें प्रारम्भ
किया रोकने पर भी जैसेफिर भगवान् कोगोपीलीलामाननी ही
पडी

कान्तभक्त गोपीजनवद्गोलोक प्राप्यलीला ऽप्राकृतमूर्त्ति सुखम रितनप्राकृत पशुजनवत् इतःकर्मकिमपिना शुभंगङ्गायामस्थिपा नवत्त लिप्यतेनेहाभिक्रमनाशोहितप्रत्यवा योनविद्यते स्वल्पमप्य स्यधर्मस्यत्रायते महतोभयादितिगीतोक्तेः इयंवपुष्टि २ भक्ति रिवसायुज्यलक्षणं परमसुखमन्येभ्योधिकत रंप्रापयतोभगवत.मूल यन्त्रपत्रस्थकृष्ण स्थप्रसादात इति गोपालतापनी

यशुद्धाद्वैतमार्त्त वक्तोऽवगन्तव्यम् इयान् परप्रमाणग्रन्थेषुवि शेषोयन्नाजदपञ्चराञवैखानसीये ऽधिकसमादरःपूर्वेषामेषांतुवेदाः

भत्कया भसवदुख ग्रहमात्य जास्मान् भक्त हैं हमे मत छोडो ऐसे कहते ही भगवान् नेअवश्य स्वीकार किया इसीतरह अवश्य सुकृत कृष्ण भक्ति का कृष्णप्राप्ति फल होता ही है इसमें कुछ पाप की शङ्काभी नही थोडासाभी इस पुष्टि२भक्तिकाहिस्सौं लेने से बडे २ भयोसों गोबर्द्धन धारण दावाग्निसे रक्षा आदि का तरह भगवान् को उचित फल दान अवश्य करना ही पडता है यह सभसुवोधिनी रासपञ्चाध्यायी प्रमे यरत्नार्णव शुद्धाद्वैत मार्त्त ग्ड आदिसे बहुत कुछ समताका तत्वहासिल होसकताहै जोवेद के अर्थ में हमने प्रकाशित किया है इन के आचार्यों का और शुद्धाद्वैत मार्त्तण्डका कुछ प्रमाणमें भी फर्क है आचार्य महाशय कुलस्मृति वेदानुकूल और प्रमाण मानते हैं और शुद्धाद्वैतमार्त्त ण्डकर्त्तामहाशय लिखतेहैं किवेदाःश्रीकृष्ण वाक्य निब्यास सूत्रा णिचै वहि समाधि भाषाव्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् वेद और गीता और भागवत औरव्यासजी केवेदान्त सूत्रअणुभाष्य सहित च्यारही पुस्तक प्रमाण हैं वेद कहने में मन्त्र ब्राह्मण के सभ ११३० हिस्से आगए पीछे केलोग भी कुछमार्त्त ण्डकार की

श्रीकृष्णत्र क्यानिठय:समूत्राणिचैत्रहिसमाधिभाषाठयासस्यप्रमाणं लच्चतुष्टयमिति शुद्धाद्वैतमार्त्तण्डीयश्लोकात् वेदगीताठयामसूत्र भागवतातिरिक्तानां प्रामाण्य मितिप्रतीयते आचार्यवर्यं श्रीवल्लभगोस्वामिनः कृष्णशाखादिगुरोर्नङ्काविलेखः भक्त्याधिक्येनतत्प्रशंसायैच तुष्टयस्येद मिति तुमभसम्मतिः १५

नकुलीशपाशुपतानां तटस्थेश्वरनिमित्त कारणाङ्गीकर्तृणांकुर्वन्नेवहिरुद्रोपनि षदादिविधिसमासादितभस्मरुद्राक्षधारण लिङ्गार्चादि कर्माणिवैदिकस्मार्त्तानि भक्तिपरश्चनितरांशिवस्य पत्युः पशुसंज्ञकोजीवः जिजीविषेज्जीवितु मिच्छेच्छतंसमावर्षा-

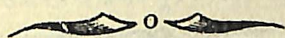
---

और व्यादह दृष्टि देते हैं मगर मेरी राय में आचार्य अनुसार मार्त्तण्डकार को भी प्रमाण तो सभी ग्रन्थ हैं केवल भक्ति की विशेषता इन्हीं चारों में है सभ कोमारतो रासपञ्चाध्यायी की सुबोधिनी टीका ही में भरा हैभक्ति केलियेवही काफी है ऐसी भक्ति के अनुकूल ग्रन्थों की प्रशंसा में होतात्पर्य मार्तण्डकार का समझना चाहिये ।

नकुलीशपाशुपत जो शैव तटस्थस्वतन्त्र (उदासिन)शिव ईश्वर निमित्त कारण मानते हैं उनके मतमें अर्थ ऐसा होगा कि रुद्रोपनिषद्आदि की विधि सेभस्मरुद्राक्षआदि धारणकर लिङ्ग पूजा आदि वैदिकस्मार्त्त सत्कर्म करता हुआ निरन्तर सभ जीवों (पशुओं) का स्वामी भगवान् पशुपति नाथ की भक्ति में लगा ही सैंकडों वर्ष जीने की इच्छा करे क्योंकि स्वामी की भक्ति अगर नकरे तो विना दूध देनेवाले पशु की तरह स्वामी उसका पालन नकरेगा विना मालिक के बकरे की तरह निरर्थक उस मनुष्य का बचना मुश्किल होजायगा अगर शास्त्र केरास्तेके

षाणीत्यर्थः पतिभक्तिम कुर्वन्नदुग्धपशुरिवन पाल्येतपत्याऽनर्थ व्रातंप्राप्नुया च्छागस्ये वनिष्टफलस्य संसारतापलक्षणस्यचेतिभावः एवंत्वयिशिवार्चा परायणस्तु मृत्युञ्जयोमार्कण्डेयस्येव पशुपति स्तवस्वामी त्वामु द्धरेत्संसारतापादानन्दसंदोह ऐहिकेआमुष्मि केचसालोक्यसामीप्य सारूप्यात्समुक्तिफले रतिंप्रापयेतइति नान्यथाऽस्ति

विपरितंसंसारबन्धकम शुभंकर्मत्वयिनरे जीवत्वेनपशौयलिल प्यतेपशुपतिशरणस्यनतत्वयि भवतिभविष्यतिवा स्वस्वामीश्रा



मुलात्रिक शिवके पूजा विधानमें लगे हुए को मार्कण्डेयके जैसे यम के आने पर लिङ्ग को पकडकर चन्द्रशेखर माश्रयेममकिं करिष्यति वैयमः मै पशुपति नाथ परमात्मा के आश्रय हूं मेरा यम क्या करेगा अथवा नौकर मेरा यम होगा ऐसे स्तुति करते हुए देखभगवान् प्रसन्न हो मृत्यंजय चिरंजीवि करगये इसीतरह स्वामी पशुपति नाथ तुझे संसार ताप सेव चाकर ऐहिकपारलौकिक आनन्द समुदाय मेरति को प्राप्त करायेगा नान्यथास्ति इस में झूठ नही होगा विपरीत संसार दुःख का हेतु पाप कर्म तुझे लिप्त नही होगा जैसे खुले पशुको और मनुष्य निगड में बान्ध देता है अपना स्वामी आयकर बचा लेता है इसी तरह तेरा स्वामी जरूर तुझे संसार निगडबन्ध से बचालेगा १६

माहेश्वरों के मतमें ऐसा अर्थ होता है कि कर्म वैदिक स्मार्त्त करता हुआ अपने स्वरूप अदृष्ट के अनुसार जगन्नियन्ता पशुपति की देवता रूप चिन्ह भस्म धारण त्रिकालस्नान रुद्राक्ष धारणा दिविधि से दीक्षामात्र से पशुपति बना हुआ उसी माया वच्छिन्न चैतन्य परमात्मा परम पुरुष की भक्ति ध्यान पूजादि म

न्यनिगडबन्धात्पाति पशुपतिर्नितरांतवस्वामी शिथिलालसस्वा
मिकस्यास्वामिकस्यवास्वकार्यार्थं सम्यस्वामिनाबन्धन ननिजभावं
भीमस्वामि सार्वदिकरक्षितस्य गतागतेरनन्यशरणस्येतिभावः १६

माहेश्वराणां मतेस्वाभिन्नएव पशुपतिर्दिक्षे यस्तन्मन्त्रदी
क्षितत्वेनपशुर पिस्वयमेवसंपद्यते अज्ञानगदंभोमामकशाद्यात
पातेन जन्मान्तरइवस्वच्छदेहोदी क्षामात्रेणपशुपतिः सन्,नादेवो
देवंयष्टुमर्हति योन्यांदेवतामुपास्तेऽन्योसावन्यो हमस्मीतिसगर्ते
पतति इति श्रुतिशतैरभेदेन

जानीयाद्ध्येयात्मसर्वात्मानं महेश्वरंमायावच्छिन्न चिदा

लगा हुआ सैंकडों वर्ष जीने की इच्छा करतारहे पशुओं किसरह
कर्मकाण्ड भक्ति ज्ञान विमुख न हो ऐसे सत्कर्म करने पर कभी
पति रहित पशुओं के बन्धन आदि की तरह विपरीत फल
संसार दुःख नही होते किन्तु शास्त्रोक्त धर्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य
की मौजमें जीवन्मुक्त हो यहां और परलोक में सालोक्यादि के
परम सुख का लाभ करते हैं क्योंकि इस भक्ति गङ्गा समान में
लगे हुए को किसी प्रकार दुःख फलवाला (जो शास्त्र में पाप है
ऐसा व्यवस्था पूर्वक मिलता हो उससे)संसर्ग नही होता॰किन्तु।
ज्ञान कर्म समुच्चय से अङ्गाङ्गिं भाव अथवासम प्रधान भाव
से यहां ही शिवतुल्य ही सुख होजाता है (१)

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक शाम्भवों के मतमें शिवशक्ति स्वरूप
नित्यसंवित् तत्व जिसे शाङ्कर चैतन्यमात्र कहते हैं माया से
उसी का स्पन्द रूप उद्यम जो शिवसूत्रों में उद्यमो भैरवः उद्यम
का नाम भैरव है ऐसा लिखाहै उसी की प्रेरणा के मुताबिकवैदि
क औरस्मार्त सत्कर्मों को करता हुआ और मैं वही शिव वही

कारशङ्कर वेदान्तिसंमत मायाविनिर्मुक्त चिन्मात्रवस्तुनास्तिमा यिनं तुमहेश्वरमित्यादि श्रुत्यामायावच्छिन्नस्यजग दुपादानस्यश्रेय स्येयत्वात्तथाभूतःस्वयंमहेश्वरोम।हेश्वरोदितत्रिषवणस्नानभस्मधा रणलिङ्गसूत्यर्चादि कर्माणिकुर्वन्नेव जिजीविषेच्छतं समावर्षाणि मतद्विमुखः पशुरिव संसारानलतप्तः एवंक्षणिककर्मकुर्वतित्वयि नान्यथाऽस्ति अतोविपरीतफलं पशुत्वादिअपितु अवश्यमेवयथो दितफलंभवतित्वयिनरेजीवत्वा भिमानिनिपशौयल्लिप्यतेकर्म पापफलंतन्नभवतिइतएतस्माद्भक्तिज्ञानहिम्नःज्ञानकर्मसमुच्चये नशिवरूपतापत्तिःसर्वात्मसंपत्प्राप्तित रूपाभाविनी अङ्गाङ्गि

———:o:———

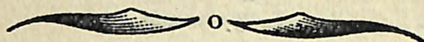
भैरव वही भैरवी शक्ति आदि गूढलिङ्ग रूप से शिव शक्ति रूप से हूं ऐसा प्रत्यक्ष याद दाशत (प्रत्य भिज्ञा) करता हुआ या करतीहुई उसीप्रत्यभिज्ञामेंअनन्य भक्तिकरताहुआ याकरती हुई जीने की इच्छा करे सैंकडों वर्ष इसतरह से शाम्भवयाआण उपासनामें लगाहुआआ० णवो पाय प्रकाश और शाम्भवोपाय प्रकाश शिवसूत्र में कहेअनुसार ध्यान ज्ञान उपनिषत्के अर्थ कोप्रत्यभिज्ञाके चातुर्यसे पकडकर कर्मकाण्ड भक्तिके पंथमेंलगा स्पन्दरूप विनश्वर कर्मों को भी करता हुआ जरूर सालोक्यादि मुक्ति के सुख को यहां भी और आगे भी प्राप्त करेगा इसमें विपरीत फल दुःखदारिद्र्यानी पशुयोनि कभी नही होगी

इस शांभवके वैदिक स्मार्त सतकर्म आचार भक्तिके परि- ज्ञान से षट्त्रिंश तत्व परिज्ञाता शांभवसे भिन्न में लिप्त होने वाले स्पन्द से अभि भूत हो संसार दुःखदारिद्र्यादि इस प्रत्य भिज्ञाता स्वयं भैरव को नही होसकते १८

यह दोनो शिव सूत्र के प्रकरण हैं।

भावेनसमप्रधान्य भावेनवेत्यभिप्राय: १७

शैवानां ७१८ प्रत्य भिज्ञादर्शन वादिनांशाभवानांमते शिवशक्त्यात्म मोनित्यसंविदो, खण्डानन्दघ्चिदेक रसस्पन्दात्म कोद्यमभैरवभावितानि कर्माणिकुर्वन्न् ववैदिकस्मार्त्तानि भावय श्चशिवशक्त्यात्मा शिवोहं सोहमिति तदनन्यभक्तो जिजीविषेच्च शतंवर्षाणिनशक्तिमात्रं शिवात्मावागूढागूढलिङ्गेन सृष्टिमात्रस्य द्वैविध्याम्मुरारे स्तृतीय:पन्थाइत्यस्याप्ययुक्तत्वात्: एवं त्वयिश न्मवेआणवेवातन्न् दुपायप्रकाशे शिवसूत्रोक्त ध्यानज्ञानचातुर्यणो पनिषदुपजीव्येन तज्जीवभूतेनचिन्मात्रेणकर्माणिस्पन्दरूपाणिनम्न



शाक्त मतमें जो परमात्मा सत्चित आनन्दमय मूर्त मायाबच्छिन्न चित् ईशक्ति अपनी लीला से अर्धनारीश्वर शिव विष्णु आदि क्रम से मिथुन सृष्टि पर्यन्त रचता है उसी एकाकी नरमते सद्वितीय मैच्छत वह इकला नहो रमणकरतादूसरे को इच्छा कर (पैदा) करता है

इस श्रुति में बताये जगत् के हेतु जगदम्बा के भक्ति आराधन आदि वैदिकस्मार्त सत्कर्मों को करता हुआ उसी का अनन्य भक्त होय सैंकड़ों वर्ष जीने की इच्छा करे इस तरह के शास्त्रोक्त सत्कर्म करते तेरे (पुरुष या स्त्री के) उस की भक्ति का कभी उलटा फल संसार दुःखदेने वाला नही होसकता किसी कवि ने भी कहा है कुपुत्रो जायेतक्वचिदपिकु माता नभवति पुत्रबिगड़ जाते हैं मगर माता पुत्रों से बिगड़ती नही कभी सुनी माता कुपुत्रों के भी कर्मों में पड़दे डाल२ कर उन को गृहस्थी बनाने और उनकेउत्कर्ष देखने की खेलकराकरतीहै क्या जगन्माता भी कभी कुमाता होसकती है कभी नही और

राणि कुर्वंतिनान्यथा सालोक्यसामीप्यसा रूप्यलक्षण किंत भक्ति फलविपरीतफलंबन्ध दारिद्रयनीच योन्याःदिवत्रानेत्यर्थ "इतएतस्मात्कर्म भक्त्याधारज्ञानात कर्मांशाम्भवे लिप्यमा ननरे त्वयिनास्ति सकलेश्वरोक्तनषड्त्रिंशत्तत्वपरिज्ञातुर्विपरीत स्पन्दाभिभवनित्यसंविदानन्दसंदोहसमुदयस्यप्रत्यभिज्ञातुःसुभिद्ध मुक्तस्वरूपस्यजानत स्वात्मानंनाटकाचार्यसूत्रधारस्येवगुप्तनिधे र्भाविराजपद्वीकस्येवबा इति भावः १८

शाक्तानांमते परमात्मासच्चिदानन्दलक्षणा स्वलीलया वच्छिन्नचिदेवसृजति अर्द्धनारीश्वरक्रमेण मिथुनसृष्टिंपालयत्य

यहां से मरकर स्त्री लोगों को सालोक्य सामीप्यसायुज्य पदवी को और पुरुषों को भी भक्ति तारतम्यसे (मुताबिक दर्जे)सा लोक्य सामीप्य के सुख भाग के अनन्तर सायुज्य भी देती है उसी के अनन्यशरण वैदिकादि सत्कर्म्मा चारसे जैसे यह और कोई पुरुष है अपनी कुलकी शर्म से इस से संभाषणादि नही करना ऐसा भौगतपन(परकीयत्व)का जो कर्म दूर हटाना वगैरह परहेज़ वह नही होसकता किन्तु अपने कसामने कुछ परहेज़ नाही किये जाते इसी तरह जगन्माता भी अपने पुत्रों के लिये सालोक्यादि मुक्ति में आनन्द के लिये दास्यादि तैयार रखती हैं १९

साहित्य मत में रसस्वरूप परमात्माहै जैसाभरत मुनिका वाक्य है शृङ्गारो विष्णु देवस्तु हास्यः प्रमथ दैवतः रौद्रोरुद्रा धिदेवस्तु करुणोयमदैवतः वीभत्सश्च महाकाल वोभयानकःवोसे महेन्द्रदैवस्था काम देव दद्भतो ब्रह्मदैवतः शृङ्गार विष्णु स्वरूप है हास्य का प्रमथ—

त्यतिरवेच्छयातस्याएव भक्तिसमाराधनादि वैदिकस्मार्त्तानिकर्मा णि कुर्वन्ने वतदनन्यभक्तोजिजीविष च्छतंसमाएवंत्वयि पुंसिरित्र यांवाकर्मकुर्वंतिकुर्वन्त्यांवातदाराधनलक्षणं कर्मअन्यथा विपरीतफ लबन्ध मुक्त्यादिलक्षणंनभवतिकुपुत्रोजायेतक्वचिदपिकुमातान भवतीत्यभियुक्तवाक्य:दवश्यंसफलाश्रयदानपरेहत: प्रेत्यचस्त्रीणां सालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यपदवीतदुत्कर्षात्पुंसांवसालो- क्यसामीप्यसायुज्यमपि भक्तितारतम्येन॰इतएतस्माज्जगदम्बा नन्यशरणतयाकर्माचरणात्नरेपर कार्योयंपुरुषोनवावाचापिसत्का र्यइत्यादिस्वलज्जापरिरक्षणायवर्ज्यंयदवमाननादिस्वगृहादर्शनादि

---:o:---

(शिवगण) देवता स्वरूप है रौद्र ३ का रुद्र देवता है करुण का यम (यमराज या सूर्य आदि अपन २ काम में नियम से प्रवृत्त कराने वाले भयविप्रलंभादि द्वारा) वीभत्स का महा काल देवता और भयानक का कामदेव वही स्वरूप है ६ वीररस का महेन्द्रस्वरूप है अद्भुत रस (का ब्रह्मा देवता स्वरूप है ओ भी हरि हरादि देवता हैं इसी रसस्वरूप अष्टमूर्ति महेश्वर के नाना भेद मिलावट से बन जाते हैं वही एक अखण्ड आनन्द मात्र मूर्ति सहृदय लोकों की मति में ही आने वाला है उसी के लाभ के लिये जन्म जन्मान्तरों में वैदिक स्मार्त्त पुण्य कर्म विशेषत: शृङ्गार स्वाद (गोपी कृष्ण लीला सुनने में जो आनन्द आता है)के लिये यावज्जीव कर्म अग्नि होत्रं जुहयात् स्वर्ग काम:अग्नि होत्रादि कर्म करे स्वर्ग सुख की कामना वाला ऐसा वेदादि में लिखा जाता है स्वर्ग वह चीज है यन्न दुःखेन संभिन्नं नचग्रस्त मनन्तरम् अभिलाषोपनीतं यत्तत्सुखंस्व:पदास्पदम् जिसमें दुःखन आदबाए और उस से कुछ थोडा भी मिला नहो और व्यवधान

कर्मलिप्यते तस्यैवहत्वाज्ञापितुमातुःपुत्रइवपालनभक्त र वधूटी विवाहादिलक्षणंपरं पूमस्यात्माभदादि संपद्यतेगर्भग्रहपूर्वंवीज रूपैस्तस्यैवसामीप्यादि इतिभावः १९

साहित्यमते रसात्माहिश्रृङ्गारो विष्णुदेवस्तुहास्यः प्रम देवतः रौद्रोरुद्राधिदेव स्तुकरुणोयमदैवतः वीभत्सश्चमहाकालः कामदेवोभयानकःवीरोमहेन्द्रदेवः स्यादद्भुतोब्रह्मदेवत,इत्यादि भरतोक्तोहरिहरादिरूपोरसभेद विशेषाद्धर्याद्यनेकदेवनामरूपाव तारभेदेनापिवहुधोपलभ्यमानस्तुतिर्वेदस्मृत्यादौरवाखण्डचिन्मा त्रानन्दसमुद्रैकास्वादात्मकःस्वाद्यो निरन्तरंसहृदयहृदयरमणर

(छोड २ कर हट कर हो ऐसा) नहो जो अपनी इच्छा का सुख हो वहीस्वर्गलोकमेंदेवतारवर्गकामअग्निहोत्रादिकोंकामानाजाता है ऐसे फलवाले सभी कर्म शृङ्गार रस के संपाद कही वैदिक स्मार्त माने जाते है उन्हीं को करता हुआ सैंकडों वर्ष ही गुण गणादि के साथ पूर्वजन्म पुण्य पुञ्ज से मिले रसास्वाद को करता हुआ ही जीने की इच्छा करता रहे इस तरह से भगवान् बालादि से गोपी राधाकृष्णादि विभावानुभव के चरित्र हावरो- माञ्चस्पृहारति आदि प्रेमअनुभावव्यभिचारि भाव से राधा- कृष्ण शृङ्गारानन्द रस के स्वाद से भक्ति भाव वैदिक स्मार्त कर्मों में लगे हुए विपरीत फल दुःख कभीनहों होसकता यहां ही ऐसे स्वाद का लड्डू खाने से प्रतीत होजाता है जन्मान्तर भी होगा बूढे मीमांसक की तरह बिना पुण्य और पूर्वजन्म के संस्कार से बिना यह नहीं मिलता और अशुभ दुःख के देने वाले पाप कर्म इसे हरि भक्ति भावीय शृङ्गारादि शास्त्रोपनीत के रस अनुभव करने वाले को) लिप्त नहीं होते याने बहुत

निकैः तद्र्थमेवचजन्मजन्मान्तरे स्तदुपभोगक्षमाणियावज्जीवमग्नि होत्रंजुहुयात्स्वर्ग कामोऽग्निहोत्रं जुहुयादित्यादि विधिबोधिता नियत्रदुःखनसंभिन्नं नचग्रस्तमनन्तरमभिलाषोपमीलं चतत्सुखंस्वः पदास्पद मितिलक्षितस्वर्गरूपनिरतिशयसुखभोगफलानिकुर्वन्नेवच हरिनामकीर्त मतच्चरितनाट्य दृश्यश्रव्यावलोक गीताकर्ण नादीनिस्व श्रवणसमर्पितालौकिक विभावानुभावसंचार्यादिसंयोग योग्य भावसमर्पकाणि जिजीविषेच्छतंसमाश्रयाणि एवंतत्र्यिभग वद्भजनादीनिनिखिलानिचवेदस्मृत्यादिकर्माणिअन्यथाविपरीतं दुःखलक्षणांकलन इहैवरसास्वादनुखपिण्डदानादितः प्रेत्यजन्मा

दुःखित व्याकुल चित्त भी पुरुष हो जैसे कोईघम से संतप्त हो गङ्गादि तीर्थ में जाय लेता उस का ताप स्नान से छूट जाता है और गङ्गा स्नान से पुण्योत्पत्ति भी हो जाती है इसी तरह हरिगीतभजनतन्नाट्यदर्शन उस के गुण गान के भक्ति भाव और शृङ्गारादि रस स्वाद के वक्त प्रसन्न चित्त हो सभी दुःख भूल जाता है और भगवान् के भजन का प्रेम बढ़ कर विशेष आगे उसी परमात्मा के सामीप्यादि बैकुंठ सुख के हेतु धर्मऐश्वर्य की वृद्धि होती है इस तरह का साहित्य वाले के मत मेंमन्त्र का अभिप्राय कहा गया २०

अब समीक्षक के कथन की ओर कुछ गौरफरमाइये पूर्व कहे अर्थों में एक के साथ दूसरे का मेल नरखने से एक वस्तुमें बदलना नही देखा इस लिये वेदको अप्रामाण्य ठहराना पडेगा और एक का विरोध कर दूसरे के साथ प्रेम की अनन्य भक्ति माननेसे एक परमात्मवादन ही ठहरेगा इससे वहभी नही हो सकता अपनेर निशान के कुतों के पकडे जाने से जैसे स्वामिओं

न्तरे ऽपि निजरठमीमांसकादि वत्प्राक्तनैहिकवासना वशादेव स्थायिरसादृश्सहृदयानुभव सिद्धत्वात् कर्माशुभंदुःखसंपादकंन लिप्यते बहुलतरदुःखोद्विग्नचित्तोपिनितरामानन्दमग्नोनैदाघघर्म दग्धशिरा इवशिशिरतरसलिलतुषारधारासार संपूरितमन्दाकिनी महाहृदे नितरांप्रशाम्यतिन दुःखलवमपियातिधर्मविशेषंचासाद्य तिस्नानादिजमिवहरि कीर्त्तनस्मरणध्यानादि नारसभक्तिनिष्ठो मुच्यते ऽपिनितान्ततदेकतानतासमाधियोगेनतंतंसमासाद्य भावंगो प्यइवहरिस्मरणात् इतिभावः २०

की लडाई हो पडे इस तरह से अपने २ सेवक के एक २ नियत निशान होने पर त्रिपुण्ड्र और ऊर्ध्व पुण्ड् के मूर्ख झगडों में भक्तों के पीछे तुम्हारे परमात्मा कट मरेंगे या मालिकों की लडाईमें सेवकों का कुछ निशान मिलना भी मुश्किल होजायगा इस से सभी का चिन्ह धारण करना किसी नाम रूप ध्यानमें परमात्माके विवाद द्वेषको नकरना और पुराणोंमेंभी जहांकहीं विष्णु निन्दा शिव पुराणादि में मिलती है वह भी ऐसेर हठी दुराग्रही लोगों की अनन्य भक्ति हटाने के लिये ही है दूसरेके निन्दक विष्णु भक्तों के विष्णु की निन्दा करने से सर्वात्मदर्शी निर्विशेष शुद्ध द्वितीय जो कि लिखा है (शिवस्य हृदयं विष्णु र्विष्णोश्च हृदयं शिवः उभयोर्नहिभेदोऽस्ति भेद दृक्पात कीभवत् शिव का हृदय विष्णु है विष्णु का शिवहृदय है परमात्मा एकहै एक ही के दोनों नाम ध्यान भेद हैं दोनों का कुछ किसी किसम का भेद नहीं अगर भेद देखता है वह निन्दक अवश्य पाप का भागी होता है) उसी परमात्मा की स्तुति में तात्पर्य है याने शिव से भिन्न जो विष्णु को मानकर शिव निन्दक विष्णु भक्त

अग्रेक्षणीयंमूक्ष्मे क्षिकयापूर्वंबद्धस्तु निर्विकल्पासंभवा न्मुक्तौपरमात्मनिस्वरूपे विकल्पाद्यसंभव एकविरोधेनापरत्रानन्य भक्तिश्चदुर्घटा श्वस्वकुक्कुरवत्वस्त्रादिचिन्हचिन्हितानांस्वामिवा लविवादइवराज्ञां सीमाविवादइव स्वामिभृत्ययोर्विरोधादनर्थकं पूजाक्लेशवालन्याय इतिशरीरादि विशिष्टानन्यभक्तिरपिनस्व दतेतदीक्षणरसिकाणामेकस्यैवबहुधा पुराणादौस्तुतिरतएवनविरो धोज्ञानकर्मणोः समुच्चित्यविरोधादपिमुक्तिहेतुतान बुद्धावारोहति दयानन्दसमीक्षातुप्राक्कृतेवशाङ्करितटीका स्मदुर्थनादि भक्ति फलसमृद्धि पूर्दर्यकफलानांझटितिनिर्विकल्पीयसप्तमभूमिकालाभे

हैं उन का विष्णु कुछ नही वह जानते और मानते ही विष्णु को नही ऐसा हो तो वह किसी मृतक विष्णु भक्त को मानते होंगे परमात्मा शिवरूप जो विष्णु है वही सभ से बडा है इससे विष्णु निन्दा से शिव की प्रशंसा पुराण में हो तो विष्णु परमात्मा शिव की ही प्रशंसा हुई ऐसे २ विरोध परिहार का तरीका भी

सभी पुराणों में समझ लो और ज्ञान तो आत्मा का रूप है कर्म भक्ति अन्तःकरण के धर्म हैं वह अन्तःकरण में सुखादि के हेतु हैं ज्ञान आत्मा में भ्रम को हटाता हुआ मुक्ति का हेतु है फल भेद से अविरुद्ध भी एक फल के लिये इकठा विरोध से नही होसकता भिन्न आश्रय भिन्न स्वरूप एक जगह नही हो सकते इस में ज्ञान कर्म समुच्चय से मुक्ति हेतु मानना भी ठीक नहीं दयानन्द की समीक्षा तो उस के मत के अनुकूल अर्थ को लिख कर साथ ही लिखदी है और शङ्कराचार्य का हमारी टीका अनुसार अर्थ करने पर भी भक्ति के ऐश्वर्य के बताने वाले वाक्यों को यहां निर्गुणोपासना को उत्तम समझ

वैफल्येनाभुक्तंक्षीयतेकर्मेति स्मृतिविरोधः सुहृदःसाधुकृत्यामिति श्रुतेरपितस्यस्तुत्यर्थं त्वेनोपभोगावश्यकत याचारिताऽसस्तिदा भादिदृष्टलरहेतावन्यकृतस्यान्येनोपभोगा योगात् ईश्वरार्पि तस्या पियोगक्षेमंवहाम्यहमित्यादिना भगवताऽपितदुप भोग्यत्वस्वीकृ तंशारीरककर्मणः किंपुनर्मनुष्यकृतस्यतेनश्रवणस्यमुक्तिसाधनत्वे नजन्मजन्मान्तर गृहीतनित्यमुक्त स्वरूपज्ञानिनाऽपि प्रवृत्तिवक्र पतितेनाज्ञानिनाच कर्माणिकर्त्तव्यानियावज्जीवमित्याहश्रुतिः कुर्वन्नेवेतितत्रा ज्ञानिकृतं कर्मान्तःकरणशुद्धिकृत तादृशचिरत स्यश्रवणं मुक्तस्वरूपज्ञापनाय जीवन्मुक्तता संपादकमुज्ञानिन

कर सप्तम भूमिका के लाभ मानने में वैफल्य होगा और नाभुक्तक्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि पाप कर्म तो प्रायश्चित आदि से क्षीण भी हों परन्तु शास्त्र विहित कर्म शास्त्र प्रमाण होने से बिना सुख फल दिखाये कभी क्षीण नही होसकते इस स्मृति से भी विरोध होगा यद्यपि शङ्कराचार्य ने लिखा है कि सुहृदः साधु कृत्यामुमित्र मरनेके बादमुक्त पुरुष के अच्छे कामों के हक्कदार होते हैं इस श्रुति से अच्छे कामों के मित्र हक्कदार हैं परन्तु वस्तुत उन्हें निर्गुणोपासना का मुक्ति फल है इस में तात्पर्य है और सगुणोपासन का क्रम मुक्ति में भुक्ति फल भी मानते हैं श्रुति तो प्रशंसाऽर्थवादहै वह कहती है कोई भी भोगे शास्त्र विहित सत्कर्म बिना सुखरूप फल भुगाये नही रहते मगर दूसरेका अपने उद्देशक्रिया दूसरेको नही मिलसकता यहांतककी ईश्वरार्पण करने पर भी भगवान् कहतेहैं योगक्षेमंवहाम्यहमृजैसे कोई मनुष्य मेराशरीर और का है ऐसा कह कर भी अङ्गुलि आग में देदे तो दुःख उसे जरूर होगा इसी तरह भगवान् के

स्वबाधसामानाधिकरण्येनकर्मभोगार्थमासक्तिराहित्येनकुर्वतोभोग भक्तिफलंपरमात्मनः शुद्धस्यनित्यनिर्विशेषस्वरूपस्याद्वैतेनविशे-ष्यतयाविशेषणविशिष्टस्यमायाध्यस्तस्याधिष्ठानसत्तानतिरिक्तस त्वस्यप्रतिबिम्बस्यजीवाभासस्यावच्छिन्नस्यवापरमात्मीय सिद्धिवै शिष्ट्याभेदभावनयानितान्तं शुद्धपरमात्मरूपतापन्नस्यप्रतियोगि तयासोहंहरिरेव इति प्रत्यभिज्ञासादित *

स्वरूपस्यशिवशक्तिमतः परमात्मध्यानपूजनादिनाऽऽवृत्ति मूर्त्त्यर्चादिभिः निर्विशेषपर्यवसायि शुद्धाद्वितीयाभिन्नः स्वात्मैव परमात्माप्रतियोगितय ध्येयात्माचविशेषणी भूतेस्वकीयेनेवना

अर्पण करनेपर भी भगवान् उसे ही उस कर्म का भोक्ता उसकी जरूरतकी पूर्ति और प्राप्तकीरक्षासे करते हैं इससे अन्तःकरण से सगुण भक्ति और निर्गुण ज्ञान स्वरूप आत्मा का दर्शन भुक्ति मुक्ति का हेतु अवश्य मानना ही चाहिये इन का अधि कारि भेद उचित नही इस से हेयांश छोड़कर सभ के विरोध हटाने का मूल सभ का सार तात्पर्य समीक्षक मत से ऐसा अर्थ है कि वेद भगवान् कहता है आत्मा श्रुति से मुक्त नित्य स्वरूप जानकरभोज्ञानिऔर अज्ञानिनेभीसत्कर्मवैदिकस्मार्त्तंयावज्जीव करने ही चाहियें भोग के लिये आसक्ति रहित याने निर्विशेष शुद्धा द्वितीयसोहं प्रत्यभिज्ञासे विशेषणांश मिथ्या जीवनेमिथ्या भक्ति करनीही चाहिये वैसेमिथ्या सैकडों वर्षके मिथ्या जीनेकी मिथ्या इच्छा करनी चाहिये उसी से शुद्धा द्वितीय परमात्मा नाना नाम रूप ध्यान से प्रसन्न हुआ तुम्हे अपनी सूर्यादि जगन्मातृ स्वरूप पर्यन्त सामीप्य सा लोक्यादि गूढलिङ्ग अगूढ लिङ्ग भेद से यथोचित भूमिकादि खाता तुम्हारी भक्ति के

मावस्त्रधारणादिनावासांसि जीर्णानीतिगीतावाक्योक्तप्रकारशेष नानाभावैर्नानानामरूपः सकलकामपूरकेशः प्रसाद्यः तदर्थमेव वनि र्विशेषपर्यवसायि शुद्धाद्वितीयाभिन्ने नकर्मावरणीय मुपास्यश्चासौ सर्वात्माविशेषसिद्धिमता प्रत्यभिज्ञात्रा जीवन्मुक्तेन तथासतिनि त्यमुक्तस्वरूपाहानेन यथेच्छलीलावतारलीलाकैवल्यदेहिवत् इहा मुत्रसालोक्यसामीप्य सारूप्यसायुज्य निर्विशेषपरममुक्तिङ्क्रमत एवसगुणब्रह्मोपासकोपत्त क्रमवदासादयति एवंसतिपरमात्मासक लाचार्यात्मान्तर्यामिसकलो पास्योनानामूर्ति शिवशक्तिगणपति सूर्यहरिभैरवादिनानाविधा वतारधारीतद्विग्रहा वच्छिन्नैकमूर्तित

अनुकूल फल अत्यन्त सुखदिखाएगा और निर्विशेष की दृढ तारख कर मिथ्या है ऐसी भावना के असंगता के वैराग्य ज्ञान भूमिका के साथ जगन्माता के मुक्ति कालमें परम मुक्ति अपुन रावृति में ब्रह्मलीन करदेगा इसमें कुछ भी अन्यथा नही वह सर्वज्ञनाथ भैरव माया वच्छिन्न निर्विशेष शुद्धा द्वितीय तुम्हरा ही आत्मा होकर हरि भैरव कृपालु मूर्त्ति है उसके परायण कर्म का फल विपरीत नहीं होगा वहां अन्याय पक्षपात मत्सरनिन्दा द्वेष का कुछ भी लेश नहीं इस से शास्त्र के कहे सत्कर्म संसार दुःख के कभी हेतु नही होंगे वैदिक स्मार्त्त नित्य नित्य काम्य अनिषिद्ध काम्य प्रायश्चित्त हरि कीर्त्तन नाम स्मरण जप व्रत तपोयज्ञ ध्यान यात्रादि करले भक्ति गङ्गा में नहाले कोई अशुभ पाप कर्म नहीं रही निर्विशेष में अनन्यशरण होजाये२१

असुर्यांनामते लोकाअन्धेनत मसावृताः
ताँस्तेप्रेत्याभिगच्छन्तिये केचात्महनोजनाः ३

परमात्मा सकलवेदसाक्षीकानन्त कल्याणगुणोमायाकल्पितः निर्विशेषचिन्मात्र सत्ताधीनसत्तावतस्वाभिन्न निमित्तोपादानक भक्तिकृपाभरेण मुक्तस्वरूपरक्षकभक्तिफलदयः सर्वज्ञःभैरवः नात्रान्यथास्ति इत एतस्मात्परमात्म परायणंनिर्विशेषशुद्धादि सीय शरणकर्मेभ्यः नविपरीतफलंमिथ्यादुःखलक्षणं संसारबन्धरूपं चास्तिनचा शुभंकर्मलिप्यते तद्बुद्धिहिलवैदिकस्मार्त्तं कर्मभक्ति प्रायश्चित्तहरिकीर्तननामस्मरणानन्यपरायण तयानितान्तनिरस्त निखिलकल्मषत्वाद सत्फलकंनेतिभाव : २१

असुर्यानामेति वैशेषिका णांमतेस्वस्ववर्णाश्रमाचार पूर्वकं-

इस मन्त्र का वैशेषिक मत में ऐसा अर्थ है कि वैशेषिक लोग कहते हैं तद्वचना यादाम्नायस्य प्रामाण्यं यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मःधर्मकहनेसे वेद प्रमाणहै जिससे स्वर्गादि सुख अपनी उन्नति हो और मुक्ति हो वही दोनो धर्म हैं याने अपने२ वर्णाश्रम धर्म वैदिक स्मार्त्त के अनुष्ठान से ईश्वर की प्रसन्नता और स्वर्गादि मुक्ति प्रयोजन सिद्ध होते हैं उन से देहादि से विलक्षण (जुदा) जो आत्मा का स्वरूप है उस का उद्धार करना चाहिये उससे उलटा आत्महनःओअपने२ यथोचित धर्मो को न करते हुए आत्मा को निची को टिकररहे हैं वे आत्म घाती लोग देहात्म वादि चार्वाक आदि वेअसुर आदि पदवीके लायक अधर्माच्चायो निजं यातनाशरीरम् तिर्यगादीनाम् अधर्म और पृथिव्यादि के परमाणु से अयोनिज (मैथुन के बि

यत्तद्वैदिकस्मात्तत् कर्मानुष्ठानेनेश प्रसन्नताभ्युदयनिश्रेयसनक धर्मस्यसंपादनेनात्ममहोदयस्योक्तेः 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यं यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः' पदार्थधर्मसंग्रहः प्रवक्ष्यतेमहोद यइत्येतद्वाक्यौर्देहादिविजातीयोद्धारःकर्त्तव्यइत्युक्तस्तद्वैपरीत्येन येतुचनकेचित् कर्मत्यागादि देहात्मवादाद्याश्रयणादात्महनोजना आत्माऽधः पातहेतुनिषिद्धाचरणतत्परास्तेये असुर्याअसुरैराक्षसा दिपदवीकैः कपूयाचरणैः नारकीयाश्च।

अधर्माच्चयायोनिजंयातनाशरीरंतिर्यगादीना मितिवैशेषिक भाष्यरीत्याखादिषु तिर्यगन्तेषुलोकयन्तेलोकाः स्थानानिपदानि

नार्स कल्पस्तद्धि) और पक्षि आदि का शरीर नरक के दण्ड भोग ने के लिये है इस तरह वैशेषिक सूत्र पृथ्वी प्रकरण भाष्य उस के मुताबिक उन्हींसे दण्डशरीरयाअवस्थामें अन्ध बहुतस सदृश आवृतमज्ञानसे वालायाअन्धयालादिमकोनदेखनेवालाउलूआदि योनि में उन की तरह दिवान्धादि रोगग्रस्त निशाचर आदि पदवी के योनि विशेष वदेश विशेषआदि को मर कर पाते हैं गीता में भी लिखा है यंयंभावं स्मरन् वापित्य जत्यन्ते कलेवरम् । जिस किसी भाव को स्मरण करता हुआ मरते वक्त देह त्याग करता है तंतमेवैति कौन्तेय सदातद्भावभावित उसी भाव को प्राप्त होता है हे । कौन्तेय वह उसी भाव के भावित है (उसी अकल में) आया होता है) इससे मरने के बाद अनाचरण देहात्मवादि चार्वाक आदि नरक में पड़ेंगे यह वेद भगवान् ने कहा है ॥ १ ॥

गौतमके मत में ऐसा अर्थ है जो पुरुष प्रमाणादि सोलह पदार्थ का उसउसरूपसे निश्चय करताहै वह मुक्ति से आत्मा का

अन्तरस्याःविशेषात्वाअन्धेनगाढेनतमसाआवृताउलूकादिका दृष्ट्या दिवापिअन्धाः निशाचरादि स्थानादीनिव अत्यन्तदेहाभि मानलक्षण महागाढाज्ञानावृताः प्रेत्यतान्लोकान् स्थानानिनियो निविशेषान् देशविशेषान् वाप्रत्यमृत्याभिग गच्छन्तिअभिमुख त्वात्तद्भावानादार्ढ्यादयं यंभावंस्मरन्वापि त्यजत्यन्तेकलेवर मितिगीतोक्तदिशादेहात्मवादाः कर्मण्यकर्मभावनादार्ढ्यात्तथा भूताःप्राप्य कर्मतादृशयोनिमें वगच्छन्तिप्राप्नुवन्तिइत्यर्थो । १ ।

गोत्तममतेआत्मज्ञानस्यैवमुक्तिहेतुत्वनात्मनश्चयःसर्वेन्द्र येर्ज्ञाताथवज्ञःतस्यभोगायतनंशरीरमात्मादिप्रमेयमिथ्याज्ञाननाशा

o

उद्धार करलेता है यानी जीवात्मा ही सभ इन्द्रियों से सभ विषयों का जानने वाला सर्वज्ञ है उसके भोगने के लिये शरीर है उस शरीर से किये अपनेर वर्णाश्रम के अनुकूल वैदिकस्मार्त्त सद्धर्म के अनुष्टान से यमादि योगाङ्ग सहित प्रमाणादि द्वारा • आत्मादि १२ प्रमेयों का तत्वनिश्चय होने से विपरीत ज्ञान से अधर्म जो रागादि के वश होते हैं उनके न पैदा होने से केवल संसार दुःख औरउनकी पैदाशके लिये जन्मान्तर फिर कहीकभी होता यही एक विंशति दुःख ध्वंस फिर जिसके बाद कभी दुःख न हो वह मुक्ति होती है इस तरह संसार दुःख सेआत्मा से बचाने से आत्माका उद्धार होता है उस से उलटा मिथ्याज्ञान शरीरादि कोंको आत्मा समझ कर उन में अत्यन्त रागादि से शास्त्र कर्म छोड़कर अधर्मादि के आचरण से उस के फल के भोग

• नोट—आत्म शरीरेन्द्रियार्थ बुद्धिमनः प्रत्यभावफल दुखापव र्गास्तु प्रमेयम्

शास्त्रमुक्तिविलिखाय लेखादेवजीवस्वरूपत्वेनसत्यप्रमाणादिषोडश
दार्थतत्वज्ञानेन प्रमाणादिपूर्वकमा विक्षिकशास्त्रात्म विद्योपनि
षत्प्रतस्य शास्त्रा देहेन्द्रियादि विलक्षणत्वेनसत्यमादिस्वरूपणा
श्रमायवैदिककर्मादि कर्मानुष्ठानसाधनसाम, ग्रीसंवलिताष्टाङ्ग
योगादिना तदर्थं यनेति सुश्रवणवैराग्याभ्यासपाट वेनदुःखभावना
दिनानिदिध्यास्य तत्वमेकविंशतिदुःखध्वंस रूपवोअशरीरं वाव
सन्तंप्रियाप्रियेनस्पृशत इति श्रुत्युक्त्यात इत्यक्तविसोक्षो मरपुरु
रावमंसेदतिसूत्रतिभिर्द्वया दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्त
रोत्तरा पायेतदनन्तरापाया वर्गइत्युक्तरीत्या मुक्त्या जन्या

के लिये दुष्ट योनि मिलती है फिर उन में दुःखादि का उपभोग
और कुत्सिता चरण हो आत्मा का पुनः पुनःवैसी योनि में
जाना होता है ऐसे आत्मा के दुःख देने वाले आत्म घाती लोग
शास्त्रमार्ग से गिर कर आत्मादि प्रेम क मिथ्या ज्ञान (जैसे शरीर
आत्मा है इत्यादि) वाले अन्ध याने बहुत सा राग द्वेषादि
मूलभूत महा मोह वही मिथ्या ज्ञान उसतमः (अन्धकार)
से आच्छादित आत्मा वाले इसी से अज्ञानी नीच शास्त्र विरुद्ध
शारीरिक कर्म (अधर्म में लगे हुए इसी लिये वह असुरों में
पहते याने असुरों की पदवी के लायक वैसेही जो निन्दता चार
धर्म रहित शास्त्र विरुद्ध कायिक वाचिक व्यापार करने वाले
और दुख के भोगने वाले जन्म यादृशा को पाते हैं मरने के बाद
फिर उन का वही हाल होता है जैसे चूना से सफेद निशिउद्ध
बिलकुल साफ ऊंचे मकान पर सांप नहीं चढ सकता कितनी
भी कोशिश करे नीचे ही गिरता होता है दूध में कांजीका
के मिलने से फिर दुध बनना मुश्किल है इसी तरह शास्त्रोक्त

सपाटवे सत्वज्ञानेनजीवन्मुक्तस्य यथोचितकर्मा नुष्ठानेन स्वर्गादिसुखोप भोगंभुञ्जतो ऽतिक्रमेणवैराग्य स्यात्मघात वायतमानस्योत्त्योत्त्य श्रींगलाभवृत्यात्मोद्धारः सम्पद्नीयं वग म्यतेतद्विपरीतमात्मादि मिथ्याज्ञानेनदेह सुखालस्य दिनादेहा त्मधादाख्याश्रित्यःकर्मिणामात्मावारे दृष्टव्यःश्रोतव्योमन्तव्योनिदि ध्या सितव्यइति श्रुतिपथमननुसरतामात्माधः पातलक्षणानुद्धारेण पुनःदुःखादियोनिषु अदृष्ट फलजन्मसुख धना लक्षणायोडाशारी रक कर्मफलंशरीरण्यपि भुञ्जानामात्मघातिनीये लोकाःधर्म- शास्त्रप्रदर्शिता निष्टयोनिफलकात्मघातिन इवअनास्तेऽधेन

सन्मार्ग रहित का भी उद्धार कठिन होजाता है २

गौतम और वैशेषिक दोनों का मजहब इकठा कर मानने वाले तार्किक लोगों के मत में ईश्वर परमात्मा के आराधन और वैदिक स्मार्त्त सद्धर्म के आचरण करने से ईश्वर परमात्मा की प्रसन्नता होती है और देहादि से भिन्न आत्मा का ज्ञान होने से अपने २ अदृष्ट के अनुसार स्वर्ग मोक्ष फल होते हैं इस तरह तत्व ज्ञान से आत्मा का उद्धार होता है उस के विना धर्म शास्त्र आदि के निषिद्ध आचार करने से आत्मा का अधःपात करने वाले जिनने पूर्वाश्रम नहीं किया वह निन्दित आचार तथा इहकपूय चरणास्तेक पूयां योनिमापद्येरन् जो खोटे कामों में लगे हैं वह यमलोक में दुःख भोग बाकी शेष पाप के भोग के लिये कुत्ता आदि वृक्ष पर्यन्त नीच योनि में जाते हैं इस श्रुति के अनुसार कुयोनि मिलने से वह आत्मा के नीचे गिराने वाले आत्मघाती हैं वह अज्ञान से ढके हुए आत्मा वाले चार्वाक आदि वैसे ही जो असुर पदवी के लायक जन्म हैं वे

गाढेनतिमिरेण मलत्त्वेन मह मोहेनानवाप्नुवन्तः अज्ञानि तात्त्व
बुद्धिं वात्मीया चारपराणाअतएवतादृशाएववायेऽसुर्याअसुरंच ा
धव: इत्यादृशैरसुरादिपदवीयोग्यैरेव पूजयानीत्याकार दर्शन
चाररतैःयेऽज्ञो काअदर्शनीयानिस्थानानि योनयोऽवधावातेजना
प्रेत्यमृत्वापुन पुनरभितुतं प्राप्नुवन्तरत्व द्रव्य त्ति मारादयत्तौ
घेऽतितिनिर्मलेः त्वणि सरीसृपाणि नियदुःकरस्वेष्वधः पातस्यसुशक
त्वात् दुःखकलिकामिश्रणेदुग्धत्वस्यदुष्करत्वे ऽपिविकारस्यस्फुट
त्वादिवगच्छन्तिअधोधएवेत्यभिप्रायः २
तार्किकाणा मुभयोच्छिष्टनांमते ईश्वरेच्छयातदाराधन

देश वैसी अवस्था में वैसे ही राक्षसादि शावअदि पदवी लायक
आत्म घातीयों के लोको में मर कर जाते हैं जैसे कोतेके
मिनारा की तरह उन का फिर २ वैसो ही निन्दित नारकादि
योनि में दुःखित लौट २ कर जन्म होते हैं यह मन्त्र का अभि-
प्राय वर्णन किया जा सकता है ३
दयानन्द के मत में उसी के बताये विनियोग के मुताबिक
उसी महर्षि की स्मृति भाषा भाष्यादि के मुताबिक बताये वैदिक
स्मार्त्त धर्म अनुष्ठान से उत्कर्ष का लाभ और उस से विप-
रीत पत्थर भूमि आदि जड़ पदार्थ की पूजा आदि पत्थरवत मन
को मानने वालों का वैसे ही जड़ होना आत्मघात है और जो
उस से भी रहित और दयानन्द पर भी अविश्वास उन का तो
अत्यन्त ही निन्दित मरण और कुयोनि वगैरह जन्मान्तर
मिलना यह आत्मा का गिराने वाला (अल्पमतावलम्बी और
दयानन्द की लकार कैनाफकार) आत्मघाती निन्दित मरणकरते
वाले वह अन्ध अज्ञान जैसे चेतन परमात्मामें जड़ भावना करने

वेकिस्मात्तत्राचरणसाधुकृत्यैरीश्वरपूजकता देहादिविलक्षणात्मना
मिःस्वादृष्टानुसारेणैवस्वर्गमोक्षादिफलंलभतरव्यापकादिनात्मनोद्वारः
तदन्तराद्देहात्मवादादिना धर्मंशास्त्रादिनिषिद्धाचारि रात्मनोद्वार
रहिताकपूजाचरणाअकृतप्रायश्चित्ताः अतएवंतद्ग्राहकपूयन्धरणान्ते
कपूयांयोनिमापद्यन्तेइतिश्रुत्युक्तपथेनात्माधः पातेनकुर्वन्त्यादि
रूपनात्मघ तकाः वन्त्त ते अन्धे तमाद्देनायेनेनावृता अ एवतादृश
एवतलोकालोकायतिकास्तादृशाएवचायेलोकादेशाअवस्था योनयो
सुर्योरास्त्रसपिशाचादिरदयोयात्मघातिनामित्रलोकास्तान्तेप्रेत्य
अभितोगच्छन्ति सर्वतोमाख्यैरिवराजपुरुषैस्तादृशैरेवनिगडबद्धा
दृढ़ाश्चदृषैःसहाशेरते इत्यादिभाष्यरीत्यादेहपातसमये तादृशा

——— :o: ———

वाले मूर्ति पूजक आदि इसी लालच रूप तमोगुण से भरे लोग
वैसी ही उल्लू आदि की तरह के (अलोक) याने सन्मार्ग का
न देखने वाले जन्म या अवस्था विशेष अथवा जड़ आदि रूप
होना और असूर्य याने सूर्य रहित रात्रि की तरह या उन में
रहने वाले जो कहे जाते हैं राक्षस वगैरह या राम को देखने
चलने वाले जानवर उन की योनि में मरकर प्राप्त होते हैं वो
वैसे ही पत्थर बन कर चूना पान में खाने के काम आवेंगे ऐसा
अभिप्राय उन के मत के अनुसार होसकता है ४

मगर इस की समीक्षा इस के साथ करलें कि मूर्ति पूजा
सनातन सिद्धान्त जो चला आता है उस का क्या अर्थ है कि
जैसे शरीर के द्वारा जीव का पूजन होता है ऐसे पत्थर के द्वारा
सर्वव्यापक परमात्मा का पूजन होता है यह भई मूर्त्ति में
पूजा दूसरा अर्थ है कि जैसे शरीर के खाने पीने से आत्मा
शरीरव्यापक जीव पूजन होता है वसी—

नामेवनहावस्यायिस्यमुक्तलस्वादित्यभिप्रायः३ दयानन्दमतेयथा विनियोगम पूक्षिप्तलाविरुद्धस्मृते इत्याहथ कुमार्थंविस्याद्यथा यथार्थ दर्शितजनानुमायमनुतिष्ठन्तामहर्षं सुपदेशकमणे दक धर्मननुतिष्ठितामुक्तस्वर्यस्य लानत द्विपथंयणजन्म नभूम्य दृविजह पूजादिपाखण्डमतमनुतिष्ठतामात्मजह ॥ रूपवैलक्षघात क्या त्मघातः ततो विहीनाना—

मपितुनिन्दिताचाराणां कुयोनिरूपजन्मान्तरलाभ आत्मघातरत स्कारिणो निन्दिताचरणात्ते अन्धेनअज्ञानेनपैतन्येजडभावना रूपपरमात्ममूर्ति पूजादिपरायणात्वादि तमसाऽवृताश्चादृगा जलूनादृश्यद्भवते ऽज्ञोकादृष्टिरहिताः सम्मार्गेलोकाअज्ञानापाविशे- षावाजडादि रूपाद्वाअसूर्यारहितारान्नयद्भवतस्तस्मात्तद्धनंज्ञसुर्य

———:o:———

तरह पत्थर करके परमात्मा पूजन पूजित होते हैं यही मूर्ति पूजा और जैसे मुंह के खाना रूप मस्तक के तिलक रूप पूजन से शरीरावच्छिन्न जीव का सारे ही का पूजन हो इसी तरह पत्थर की पूजा से पाषाणावच्छिन्न तदाकार सर्वव्यापक परमा- त्मा का पूजन होता है यह भई मूर्ति की पूजा यही असली है इसी को नाम मूर्ती कोपासना है तो अब समझिये कि पार्थिव शरीर के पूजन से आप अगर जड़ की पूजा नहीं करते किन्तु जीव की पूजा करते हो तो कहिये पत्थर की पूजा वाला क्यों नहीं परमात्मा की पूजा करता और दयानन्द के नियोग पर न चलना पत्थर की पूजा करना इन में अगर आत्मघात और नरक तो शरीरजड़पूजक दयानन्दीभी नरकमें क्योंनपड़ेंऔर एक सिद्धान्त कीगुद्दीको फटी टूटीठगुत्पत्ति जिसकोकलइभागेखुलेगी रखनवालेदयानन्दजैसेमहर्षिऔरविनियोग करनेवालेबनजाते हैं जो महा भाष्य परिभाषेन्दु पढ़े तो सैंकड़ों संन्यासी उदासी फिर रहे हैं वह भी वैसे ही बाते बावेंगे तो फिर किस के कहने पर

अमुमादेवजीवन्तो येनमात्मानं मृतमिवमन्यं कर्तुं मुद्यतास्तेनात्र लोकानुभवन्त्याः प्रेत्याभिगच्छन्ति तथैवोपनादिपुनश्च भवन्ति नाम्नूकादिनाभक्ष्यभूता ताहृशावस्थाः प्रेत्यप्राप्याभिगच्छन्ति वेदवाद्याभवन्तो नित्यऽभिप्रायः ४

अत्र स्वामीदयानन्दैः येतत्पूजाशरीरद्वारिके वात्मनोजीवस्य मूर्तेः प्रमाणतोरोपयितृत्व स्यात्तन्नस्यशरीरस्यमूर्त्यो पूजा वाशरीरेणात्मोपस्य किंवदाध्यात्मकेन विज्ञातावाप्यादयते आत्मनः पार्थिवशरीरेण पूजावाहृत्थात्वेनहरएवभवान् किंयदनुयोक्तुं समर्थः स्याद घापिच द्ययन्त्स्वदेवयहुनराःसंन्यासिनस्तुस्वताकरणादि नापिचि

स्वर्ग ठगवन्धा हो और लोक नरकादि इन के मत में नहीं यह भी निकम्म विरुद्ध है यहां नरकंच्यवकं वीवेगंनन नालयमपिरमणंस्थानमत्राभित इसी उत्पत्ति मैकेद के कमरों की से स्थान का नाम कहीं नरक है वरुण लोक इत्यादि शब्द सूत्र के भाष्य गौतम में वेद के स्वभिर्भिरित्यादि मन्त्र देवयानपितृ यानमार्ग उपदेशादि से भी यहांलोक इस लोकका नाम नहीं यही जगन्नाटकके तरीके में मालूमहो रहा है और स्थानसे मूर्ति पूजा इतन ही आस्तिक सिद्धान्त है तो इस में शिव भाव देवता के संग वही बनेगा इस से पत्थर पूजक पत्थर होगा यह कहना उन्मत्त प्रलाप मात्र हैं हां आप के मत में निराकार जो विभु के साथ साथ भी व्यापक होनेसे संबन्ध रखता है उसीका सा होजायगा उसमे तोआपजनाही शायद परमात्माक तुम्हारी तर्फ द्वारीसेशरीर मरने पर अगर पत्थर भी हो जायगा तो भी अत्युत्तम है लोगों को पूजा को पिटारीयों में हो बैठेगा आदर के स्वर्ग को तो देखेगा ही और आप तो पत्थर में कैसे निराकार में रहना ही

मनरकपातःस्यात् किंचअलीकात्वत्यनेन किंतु अर्घेनेत्यादिविशेष णानर्थक्यापत्ति लोकाद्युपवदणतोके इत्यादि वैभववचनं दि निरूपणतदीयस्वरूपस्य अस्य विशेषणं तु पलङ्कानकासंयुक्तम् क चव्याजेन तस्य प्रतीकस्यमूर्तेः पूजनमित्यादिकं तु नत एवंदूयं भावकमलमित्युक्त्यादिवभावेन अतादिः हदेव तथा निराकरणं भावत देहात्य प्रतिविष्टादिठयावकनिराकरणवर्तेतिपाषाणव दी एवभवतोजयति कस्यचित्पूजासु भविष्यत्य छाच्छादनादिबहुविधनपदांतु तस्य भूयो पि नु भविष्यतीत्यनिर्दिष्ट एवकिंवनि राकारेस्वरूपस्थितिरववर्ते मुक्तिरतन्तमवभावंपाषाणेवेतप्राप्ते

मुक्ति मान बैठते है तो पत्थर में रहे जीव तो जरूर तुम्हारे मत के मुताबिक तो मुक्त ही हैं बल्के आप वैसी भुक्ति में राग द्वेष से भरे हुए पखाने क नजदीक परमात्मा में पड़े हुए विटरूमि से ही क्यों न माने जाने चाहियें इत्यादि शङ्का उपहास की सनातनी तुम से कम नहीं जानते ठठे उड़ान व शास्त्र अश्रद्धेय करना आस्तिक का काम नहीं ।

सांख्य मत में जो शास्त्र तत्व न जानने से आत्मा को असङ्ग नहीं समझते वही आत्महा कहे जावेंगे क्यों कि उन्हों ने आत्मा को जाना ही नहीं वे जानी वस्तु नहोने के तुल्य समझी जाती है तो जरूर आत्माकाज्ञान और असङ्ग आत्माका तत्व न मानने वाला यथार्थ आत्मा स्वरूप से ही हाथ धोबैठे तो जरूर आत्महा शब्द का भी वो भागी हैं ही व मनुष्य अन्ध तामस महा मोह द्वेष से भरे ही होते हैं (क्यों कि जितनी आत्मा में दूसर के देह सुख दुःख के संग का ज्यादह ख्याल होगा इतना ज्यादह द्वेष बढ़ेगा) इससे परलोक में भी वो

स्तिस्य शरीरमुक्तिमन्तर्हि प्रागेव एवैतस्य का हानिः किं च मुक्तिकाले भानमात्रदृष्टिविष्टहृतां कुतोनाप्नो निराकारत्वादिति शङ्का प्रतिबिम्बितया तुल्यैवेश्वरमत्र एपो रहोत्सवाद एवइति ध्येयम् ।

सांख्यमते केचन अज्ञा आत्मतत्त्वस्य असङ्गिनमात्मानमप्यजानन्तः किमु तेषां परमार्थतत्त्वं ऽज्ञानेएवात्महनो चित्तदत्तात्मानहत्वा ज्ञानं हि असद्विध भवति ते जनाअन्धेनेव तमसावृता संनद्धः मोहेनान्धतामस रूपद्वेषावशेन नारका अष्टविधेमाऽऽराः सहैवयुक्ताः यत्र वतेऽसूर्या सूर्यरहित्वेन तादृशा असुराणां तादृशानां वा ते लोकाः अतएव प्रशस्तलोके जीवैरहिता अदृश्या

असूर्य जो असुरों के वा सूर्य से रहित नरक लोक वा गर्भवासादि लोक उन में ही मर कर अनेक बार पहुंचते हैं यहां भाव होसकता है ५

विज्ञान भिक्षु मत में भी सांख्यानुसारी का यही अर्थ है परन्तु इस के मत में आत्महत्यारे होंगे जो प्रति बिम्ब रूप आत्मा के देखन से बिम्ब रूप को भूलने से आत्मा को ही अपने हाथ से खो बैठे हैं वहां जन्मान्तर गर्भवासादि व्यथा के भागी हैं वाचस्पति और विज्ञान भिक्षु प्रति बिम्ब वाद यद्यपि दोनों मानते हैं परन्तु वाचस्पति सांख्य में प्रकृति में चित्त के धर्म का उपर न मानता है विज्ञान भिक्षु धर्म धर्मि दोनों का प्रति बिम्ब मानता हुआ प्रति बिम्बवादि शाङ्करों की ओट में मुंह छिपाता है इतना ही इन का मत भेद इस विषय में है ६

दयानन्द भी प्रकृति वगैरह सांख्य की फ़राट में आकर मानता है तो उसके मत में यह भी अर्थ हो सकता है कि परमाणु वगैरह की प्रकृति सृष्टि से बना अन्तःकरण देहधारी जीव इत्यादि

वाऽन्तरिक्षगर्भवासादिलोकावातानुप्रेत्यमृत्वाभभितःसर्वतोनेक वारंगच्छन्ति संसरन्तिप्राकृतात्मानइव इत्यभिप्रायः ५

विज्ञानभिक्षुमतेसांख्येएषएवार्थः परंप्रकृतेरासङ्गेना प्राकृतात्मदर्शिनो हिप्रतिविम्बात्म दर्शिनोविम्बाज्ञानिनइत्यर्थे विशेषः वृत्तौवोधप्रति विम्बोहीतरेषां धर्माध्यासस्वीकारात विज्ञानभिक्षोस्तु वेदान्तिनामिव धर्मधर्म्युभय प्रतिविम्ब इति मतभेद इतिध्येयम् ६

दयानन्देनप्रकृतेः सत्वादिरूपाया अपिस्वीकारात्तदधोन परमाण्वादि पूर्वकसृष्टौसत्वादि गुणसंगेनराजसतामसरागद्वेषाद्य

गुणरूप प्रकृति के स्वभाव से सात्विक राजस तामस हैं उन में राग द्वेष के अभि निवेश से आत्मा को नीचे डालने वाले राजस तामस अन्ध तमो महा मोहसे ढके हैं इससे वे राक्षसगुण कर्म स्वभाव वाले वैसे गुणों वालों में ही पैदा होंगे ७

परन्तु दयानन्दकी यह दार्शनिक बुद्धिकी तरफ गौर फरमाईएगा कि परमाणु नित्य भी आप साहिव मान जाते हैं सदकारण वन्नित्यं वैशेषिक सूत्र की आर्थिक वृत्ति से बुद्धि चक्कर खाजाती है प्रकृति भी परमाण्वादि भूत सूक्ष्मों के कारण अहंकार के कारण महत्तत्व का हेतु मानने वाले सांख्य जी मनाय जाते हैं परन्तु दयानन्द जी उस चक्करमें पडकर कारण प्रकृति औरकार्य परमाणु दोनोंको अनुपन्न नित्यत्वमानजातेहैं और देखिये आप की याददाश्त एक जगह लिखते हैं कि प्रकृति जीव ईश्वर तीन पदार्थ नित्य है फिर एते नित्येषु नित्या इस वैशेषिक सूत्र के अर्थ करनेमें नित्य द्रव्य परमाणुवता कर उन के संख्यादि कितने ही गुणों को नित्य बता जाते है इत्यादि युक्ति शास्त्र

भिनिविशेनात्मोपकर्ष कारकास्तामसाद्योऽन्धेनतमसावृतामहा मोहयुक्ताराक्षसगुण कर्मस्वभावायेलोकास्ते पूत्पद्यन्ते इत्यपितद नुसारेणार्थः संभवतीतिध्येयम् १

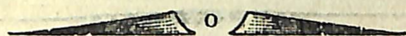
घटंपरमाणुनित्यस्वीकर्तुं स्तस्यतार्किकस्येवनप्रकृतिस्वीका रेफलम् परमाणोरेवसत्वादि गुणकनित्यत्वस्वीकारेण सृष्टिकारण त्वात्प्रकृतिव्यपदेशइष्यते इतिब्रूयेतहि अहंकारादिकारण त्वंतद्वैव स्तीकृतंविरुध्येत तन्मात्ररूपपरमाणोस्तत्र प्रकृतिजन्यत्वेन स्वी काराज्जन्यत्वनित्यत्वयोर्विरोधः रजःपरिणामस्येत्रपरमाणु परिणा मस्वीकारे ऽनित्यत्वंप्रसज्यतेक्षीरादिवत् सत्वाद्यवयवत्रयवत्वेसा

विरुद्ध और शास्त्रों के कर्त्ताओं को बेवकूफ बनाने वाले दार्शनिक अर्थ और सिद्धान्तों से बनाये मतों के मुताबिक अर्थ की ज्यादह समीक्षा की भी क्या जरूरत है

योग मत में यह अर्थ हो सकता है येकेच जो कोई कि यह अनादर का शब्द है इस से यह कहा कि सत्पुरुषो से निष्का सित जिन का यह ठिकना नहीं कि यह कौन हैं कोई आत्मा के अस्थिर मानने वाले विक्षिप्त वृत्तिभेद क्षणिक ज्ञानकोआत्मा मानने वाले बौद्धादि वे लोग क्षणिक विनाशि आत्मा मानते हैं इससेभी एकस्थिर उन का स्वरूप नहीं होसकता और वृत्ति भेद भी शून्य अपोहरूप में दाखिल है तो इस से वे अपने को शून्य मानने से आत्महा कहे गये विज्ञान वादी बौद्ध यद्यपि शून्यवादी नहीं तो भी क्षणिक विज्ञान मानने से उन का भी आत्मा स्थिर नही वेभी शून्य रूप मुक्ति मांगते आत्महा पद के ही भागी हैं वे तो आत्मा को ही नहीं चाहते तो दूसरे पर क्या उनको दया होगी वे किसी को भी न देखें कोई भी तरहहो ऐसे

वयवत्वसांख्य सिद्धस्यापत्ताव नित्यत्वापत्तेः तार्किकाभिमत नित्यत्वसाधनप्रया सस्यवैशेषिकसूत्ररीत्या कृतस्यसांख्यरीत्यापरि णामिनित्यत्वविलक्षण स्यत्रिकालाविनाइय स्वरूपत्वस्यस्वीकार विरोधएवंएत नित्येषुनित्या इति वै सूत्रार्थे ।

नित्यद्रव्यगुणानां नित्यतवमुक्त्वाअन्यत्रप्रकृति जीवेश्वरत्रय स्यनित्यत्वस्वीकारविरोधइत्यादिसमीक्षितव्यमुयोगमतेयेकेचकेचि देत्रापात्वेनानादार्थककिंशठडो पादानादयुक्ताक्षिप्तचित्तावौ द्धादिकानयेषामपिएकतानंक्षणिकत्वा चित्तं मात्मइनस्तेशून्यात्म विज्ञानादात्मर हिताइशून्यवादिनो वैभाषिकादयोविज्ञानवादि



महा मोह तामस वृत्ति से भरे हुए शरीरादि को क्षणिक मानने वाले अर्द्ध वैनाशिक वैशेषिकादि के उच्छिष्ट बुराई से भरे अपने अश्रय के छेदक उल्लूकादिकी तरह से अन्धे वे बौद्धसूर्य रहित या वैसे ही राक्षस बुद्धि वाले या उल्लूकादि असुर प्राय जानवर की योनी में जाते हैं वे राक्षस मुंह से तो अहिंसा परमोधर्मः का झंडा उठाते हैं सिद्धान्तमें सभी शून्य करना चाहतेहैं उन केचेले जिन की यह गति है संकोच विकाश शालि आतमा उसका भी छलेडा भूत जिसे पञ्जाबी भाषा में कहते हैं बिनाशि होने से वेभी आत्महा कोटि के हैं दूसरोंको दया के उपदेशसे धोखेबाजो से वार करना सिद्धान्त माने है

दयनन्दकी रागद्वेष भरित प्रेतरूप मुक्तिकी यहीदुरवस्था है यह तो सभ मत केवल वेदस्मृति मत को वामी कहकर उन की तह उडाने के लिये ही रूपान्तर में पलट पलटकर कईएक रूप से सनातन के भी बच्चे बन बैठे हैं परन्तु पण्डित और मर्म दर्शि इन के धोखे की लकचराहट को खट खटाहट के नीचे कब

नः शून्यात्मनुक्त्यभिलाषुकाः शून्यात्मपूर्ति संधानाश्रयोगा गाचारास्तेखलुआत्मनहनअतएवात्मान मपिनपश्यन्तिकिं परमि तितेऽन्धेन तमसागाढाज्ञानेनोवृताअन्धाअद्व वैनाशिकस्यशरीरा दि क्षणिकवादिनो वैशेषिकस्यौलूक्यस्यैवोच्छिष्टा अधिकरणात्म ज्ञानेनतद् धर्मस्यक्षणिक ज्ञानमात्रस्यैवानालम्बनस्यस्वीकाराद्उलू काएवाअन्धास्ते असुर्यासूयरहितलोका अवस्थादेशाःस्वरूपाणि दिवान्धादीनितान्प्रेत्याभिगच्छन्तिअथवाअन्धाएवक्रोधादिगलेन असुराणांकोटिमाप्नुवन्ति आत्मदर्शिनां हिंदयाअहिंसापरमोधर्म इतिवाद्याडम्बरेऽपिस्वात्म शून्यतेववैदिककर्म विलोपेनान्येषाम

आते हैं वेद भगवान् भूत भावि दर्शि जो कोई ऐसे वेद वाह्य आत्महा है होंगे कल्पान्तर में होते रहते हैं इन सभ के लिये येकेघोत्महनऐसे लेख से नरक पात ही वताते हैं ८

अब शङ्कर भाष्य का अपनी संस्कृत टीकानुसार भाषा भावअर्थ लिखा जाता है

अविद्वान् याने अज्ञानी और आसक्त ज्ञानी भी क्यों कि मिथ्यात्व (होते हुए भी वस्तुतःयह आत्म धर्मनहीं ऐसीदृष्टि) के नहोनेसे ज्ञानी भी अज्ञानी के तुल्य है तो इस मन्त्र से आसक्त की निन्दा कहते हैं पर ब्रह्म आत्म तत्व एकहै ऐसे अद्वैत असङ्ग आत्म दर्शन जिन्हे वह देवादि याने द्वौवैदेवा मनुष्य देवादेवदेवाश्च इसशतपथ शतश्रुतिमें लिखे गये मनुष्यदेव आदि भी असुर है असुरों की तरह से रागद्वेष भरित वृत्ति का हेतु भेद दृष्टि उन को भी है उन सभ के जो कर्म सुकृत दुष्कृत अच्छे बुरे के फल के भोगने के लिये जन्म वे सभ असुर्य लोक है वे सभ अज्ञान रूप तमः अन्धकार से ढके हैं क्योंकि भेद दृष्टि

विक्रोधादिभिश्च घातकाइतिराक्षसस्तुशून्यवादिनइति अत्रेवात्रेश्रे पितथाभवन्ति तत्स्वभावत्वात ८

शा॰अथेदानीम-विद्वन्निन्दार्थीयमारभ्य असुर्याःपरमात्मभा वमद्वयमपेक्ष्य देवादयोऽप्यसुरास्तेषांचस्वभूतालोका असुर्यानाम नामशब्दोंऽनर्थ कोनिपातः तेलोकाकर्मफलानि लोक्यन्तेदृश्यन्ते भुञ्जते जन्मानि अन्धेनादर्शनातम केनाज्ञानेनतमसा ऽऽवृताआछा दिता स्तान्स्थावरान्ता न्प्रेत्यत्यक्त्वेमंदेह मभिगच्छन्ति यथाकन यथाश्रुतम्। येकेचाऽऽत्महनः आत्मानंघ्नन्तीत्यात्मनः केतेजना येऽविद्वांसः कथंतआत्मामं नित्यंहिंसन्ति अविद्यादोषेण विद्य-

---

को सत्य मानते ज्ञान का कहां संभव है अपने२ कर्मानुसार वृक्ष पर्यन्त उन सब असुर्य योनि नारकियोंकि मैं इस देहको छोड उन्हें आसक्त दुराचारिओं को जाना पडता है जो आत्मा का नित्य घात करते हैं वे कैसे घात करते हैं (उत्तर अविद्यारूप दोष से विद्यमान आत्मा के छिपाने से अर्थात विद्यमान आत्मा का काम है कि उसे अजर नबूढा अमर (न मरने वाला) इत्यादि असङ्ग स्वरूप देखना वह उन्हे आसक्त पुरुषों को नही इस से वे आत्म घाती कहे जाते हैं वे लोग अपने २ कर्म के फल पुण्य पाप के मुताबिक जिन की खतमी नहीं ऐसी २ जन्मों की परम्परा (फिर ऐसा जन्म फिर जन्म) को जो की वैसे ही अज्ञान घोर आसुर भाव से भरे हुए हैं मर कर उन्हे पहुंचते हैं जो फिर किसी जन्म में आत्म ज्ञान से असङ्गात्म दर्शन होगा या तो सुकृत भक्ति आदि करते उन का फल भोगते २ देव क्रम से या भूमिका विशेष प्राप्त होकर उसी क्रम से विदे हमुक्त हो सकते हैं नहीं तो उसी आत्म घात दोष से पुनः

मानस्यात्मन स्तिरस्करणात् । विद्यमानस्यात्मनो यत्कार्यं फल मजरामरत्वादि संवेदनलक्षणं तद्धतस्यैवतिरो भूतंभवतीति प्राकृताविद्वांसोजना आत्महनउच्यन्ते तेनस्यात्महननदोषेण संसरन्तिते ३ । ९

अविद्वदित्यात्म स्वरूपानाभिज्ञाना मासक्तानामभिज्ञानामजितेंद्रियाणांतत्तुलनापत्ते रनासक्ताना मपिमिथ्यात्वदृष्टिदार्ढ्येनासफल धर्माचरण मन्तरानिरर्थं कानाचारणमात्र जुषांभक्तिविहीनामांच निन्दार्थंमित्यर्थः देवाद्य इति मनुष्य

देवाद्यो ऽविज्ञातवेदान्त तत्वाःकेवलाधिकार लम्पटास्तादृश

संसार में ही वृक्षादि पर्यन्त बनकर रोजमर्रा की भाजी बनकर अनेक जन्म त्याग के कष्टों कोही सहते रहते हैं यह भाव है १०

माध्व के मत में विष्णु भक्ति ही न होने से अपने को नीचे गिरानाही स्वभाव से सर्वठयापकदास आत्माको बड़ेपन से छोटे दर्जे में लाना आत्म घात लिया है वे विष्णु भक्ति ही न इस दोष से अन्ध याने सन्मार्ग विष्णु भक्ति के नजानने के हेतु अज्ञान की तामस वृत्ति वाली प्रकृति से युक्त असुरों के जो देवता लोगों की भक्ति के अनुयायि नहीं सर्व देव मूर्ति भगवान् हरि परमात्मा की भक्ति से हीन है उन्हीं के असदाचारों के लोकस्थान नरकादि से राक्षस बुद्धि वाले देवताभक्त हीन जन्मों में पुनः२ रहते हैं ११

भट्टभास्कर के मत में हरिके साथ भेदाभेद ज्ञान भक्ति से विरोधि अज्ञान की तामस वृत्ति से भरे हुए केवल भेद ज्ञान से अपने को छोटे बनाने रूप (आत्म घात) दोष से कर्मों को छोड़ देने में और भी विधि बाह्यता दोष से असत्कर्म करने में

मनुष्यजन्मवन्तश्च साधुवृत्तयोप्यत्रनिर्दिश्यन्तेदेवादयः आजानसि द्धानांतु तद्विज्ञानमस्ति तद्विचारएवतुतेषांमधिकारस्तद्धयत्तेपिवा दरायणस्संभवादिति सूत्रेऽयस्यात, त्वान्तेषांनिन्दित लोकत्वेतद्वि रोधपत्तेः अपि शब्दागृहीतमर्थं माहजन्मानि इति अनिष्ठान्त ।

जन्मानीत्यर्थःवेदान्तशून्यत्वेकदापि पर्यवसानासंभवाज्जन्म नामित्यर्थः अतएवाग्रेस्थावरान्तानूवृक्षादोनित्याह प्राकृताविद्वां- सः प्राकृतस्यामाया विलासस्यात्मनआरोपितस्वरूपेणयाथात्म्ये नात्मनश्चाविद्वांसइत्यर्थः एतेनप्राकृतकर्मतत्फलाधिकारा सक्ति करणादिकमजानन्तः संगृहीताः तेस्यात्मेति यथाभूत स्वरूपाछा-

---

और भी निषेध विधि के बल से केवाला भेद ज्ञान में भी यथार्थ अपने को न जानने दोष से कर्म छोड़ने पर पूर्वोक्त दोष से सब आत्म घाती वे असुर याने देवता विमुख हरि भक्ति हीन उन्ही में जन्म लेते २ वैसे ही तामस बनते हैं १२

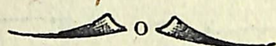
निम्बार्क मत में विवर्त्त भिन्न और अभिन्न स्वरूप हरि की ज्ञान भक्ति से हीन इसी भक्ति हीनता अन्धियारे से अन्ध हुए अपने को न्यून कोटिमें लायरहेहैं ऐसे आत्मा यथार्थ ज्ञान न होनेसे आत्मा घाती वे असुरो के हरी भक्ति हीन वैसे तामस लोगों के नरक तुल्य स्थान जन्मान्तरों को पाते रहते हैं १३

रामानुज मत में नारायण रामादि मूर्त्ति भगवान् से विशिष्टा द्वितीय पूर्वोक्त ज्ञान और उसी भक्ति से हीनता यही अज्ञान रूप अन्धियारा तमोवृत्ति वही ताभिस्र नरक तुल्य है उस में पड़े उसी आतमहत्या वाले समाश्रय से रहित असुर भगवद्भक्ति हीन वैसे ही तामस लोगों में जनम लेते हैं १४

बल्लभ मत में शुद्धा द्वितीय आत्मा ज्ञान से हीन होना

दना ग्रजन्मसु भूमिका विशेषे षुजयायान्त: करणावच्छिन्नस्य कर्मसुखोपभोगादि वञ्चितत्वान्निरर्थ कपापजन्मादिभिरुपचितविप रीतफलेन मिथ्यादुःखरूपं प्रतियोगितायाा भासमानमनुभवन्तः सुखसामानाधिकरण्या भावरूपघात संपादको इत्यभिप्रायः १०

माध्वमते विष्णुभक्तिविहीनतयाऽऽत्मनोऽधः पातसंपाद कत्वमेवात्महत्वम् अतएवान्धे नसन्मार्ग ज्ञानलक्षणेनतमसातमो वृत्याप्रकृतया ऽन्वितास्तेऽसुराणांसर्वदेवमयो, हरिःसर्वदेवनमस्का रःकेशवंप्रतिगच्छतिइतयुक्तेःसुराननुयायिनो भगवद्भक्तिविहि ताना वारासरवराशस्तषां लोकानप्रेतया पिगच्छन्तीत्यर्थभक्ति



ब्रह्म संबन्ध से रहित हरि पुष्टिर भक्ति रहित होने से अपना यथार्थ ज्ञान न होने से ब्रह्म सगं न होने से अपने को नीच दर्जे में लाने वाले आत्महा इसी अज्ञान अन्धियारे तामस वृत्ति वाले समर्पण रहित असुर जिन्हों को देव शरण मन्त्रन ही उन्हों के अनाश्रय (असुरागहीन) दरिद्र लोगों के नरक तुल्य स्थान जन्म आदि लेते हैं उन्हें आत्मा के सुख के अनुभव की जगह कैसे मिल सकती है १५

विज्ञान भिक्षु के वेदान्त सिद्धान्त में अज्ञान से आत्मा को परमात्मा के समान न कर सकने वाले अज्ञानी आत्म घाती शब्द से कहे जाते हैं रागद्वेष आदि अन्धियारे की रात्रि समवृत्ति वाले मर कर असुर्य जो हत्यारे कैसे नरक फल वैसे राग द्वेष से भरे पशु सर्प कीटादि जन्मो में जाते हैं १५

साहित्य मत में रसका आस्वाद जैसे रामायणादि के पढ़नेसे रामशृङ्गार दशरथ करुणा अनेकरसका अनुभव होताहै उस ही रसभरे हरि कीर्तन गान के परम आनन्द के विमुख और

तादृशेष्वेवधि निपातस्यायुक्तत्वात् इतिभावः ११

भट्टभास्करमते भिन्नाभिन्न त्मानानाच्छादितातयोऽन्धे मानेन गाढेनतमसावृतता अतएवात्मनःकेवलभेदभानेनतत्परिछे दात्मयातदोषेण सकलकर्मत्यागेनाकर्मोश्रयणेनवाकेवलाभेदज्ञाने न युक्ततया विस्वयाथात्म्यरहित तयाऽऽत्महन इतेअसुर्याअसुरा णां हरिभक्तिविहीनानां लोकानुगच्छन्ति तामसाएवतथाभूता इतिभावः १२

निम्बार्कमते विवर्समान भिन्नस्वरूपाभिन्नहर्यात्म विज्ञान राहित्यरूपान्धतमोवृताअतएवात्मयाथात्म्यज्ञानभक्तितत्कर्मविर

उस की प्राप्ति भी तो बड़े पुण्यों का फल है उस के लायक शास्त्र विहित कर्म उन से भी जो विहीन है वह आत्म स्वरूप के स्वाद से रहित अज्ञान रूप अन्धियारा तमो गुण की वृत्ति वाले थियटर की भीत लकड़ी की तुल्यता से सहृदयों में गिने जाने वाले इसी से आत्मा से विमुख शास्त्रादि भगवद्गुणगाना दि होने वाले सत्व गुण के न बढने से आत्मा को छोटा बनाने वाले वे भी मर कर आत्महा के तुल्य नरक सदृश वैसे मूढ ना कीय स्थान जन्मों में जायेंगे क्यों न कहा जाय वेहराकिवे वगैरह बनना ही ऐसे निरर्थक काम वालों को दण्ड है १६

मीमांसक मत में आत्महा तोवे हैं जो आत्मादेहा दि अनित्य पदार्थ को समझकर या और स्वर्गइसलोक से भिन्न कोई भी नही यह मानकर उसे न जानकर या अनधिकारि सप्तम भूमिका के होकर भी अपने को वेदान्ति या संन्यासी बताकर कर्म निष्ठा छोड़ देने वाले सभी कहे जायेंगे क्यों कि

हेण तद्वातिनस्तेऽसुराणां हरिभक्तिविहीनानां ताद्दृशलोकान्गा च्छन्ति इतिभावः १३

रामानुजमते नारायणरामविशिष्टद्वितीयात्मस्वरूपाज्ञाना न्धतामिसूपतिताहतामस वृन्ययोतएव्रातम हनोऽसमाश्रितास्ते असुराणामभागवतानामेव तेषांलोकान्गच्छन्ति इतिभावः १४

वल्लभमते शुद्धाद्वितीयात्मज्ञानराहित्य रूपस्वन्धेनातएवा न्धतो ऽप्यधिकेनसंमन्ताद्ाऽऽवृतायलोऽतएवशाखा भेदइवपृक्षस्या त्मह्नोये अनाअसमर्पितात्मकृष्णास्तेअसुरानामदेवा नामशरणा मांलोका निराश्रिता दरिद्रादयास्तेषांलोकाःस्थानानितद्गृह

नित्य (यावत्सृष्टि) स्वर्गादि भोक्ता आत्माजिसे वेदान्ती अन्तः करणावच्छिन्न कहते हैं वही है उसे जानना या स्वर्गादि से हटा कर नरकादि योग्यता लाने से छोटा और दण्ड्यबना देना ही घात है वे इसी अज्ञानरूप अन्धेरे से ढके हुए ऐसे आतमहा असुरों के तुल्य नरकादि स्थान के लायक हैं १७

नकुली शपाशुपतके मतमें पशुपतिकी दीक्षाकी प्राप्तिरूप जीवन्मुक्ति स्वरूप से रहित वगैर मालक के कुत्ते की तरह स्वामी को छोड इधर उधर घूमने वाले अपने स्वरूप पद (औदह) से हीन रक्षक के न होने से आत्म घाति कहाते हैं उन्हे अपना पद न मिलकर पशुपति भक्ति के अज्ञान रूप अन्धियारे में फसे तामस वृत्ति वाले अन्ध भूखे रोगी आदि राक्षसों के स्थान नरक या उन के तुल्य जन्मान्तर दरीद्र भूखे या भूता वेश वाले जन्मों को प्राप्त होते हैं उस में फिर वैसे ही राक्षस वृति उन की होती है क्यों कि कहा है भूखा क्या नहीं पाप करे और खोटपै कोनहीं घाव करे है क्यों कि उन

जन्मादीनि तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्तिनं तेषामात्मगुणानुभवः पुष्टि पुष्टि भक्तिरहितानामितिभावः १४

विज्ञानभिक्षु वेदान्तिमते ऽपिआत्माप कर्षकतयेना त्मेश्वर साम्य सपादकतयात्मघातिनोऽज्ञानिनोऽन्धेनतमसावृशकृतरागद्वे षाद्यन्धतमसा ऽऽवृतास्ते प्रेत्याऽसुर्या आत्मघाति नरकफलंतर दृशंमेवद्वेषाभिन्नि विण्टक्रूर पशुसरिसृपादि जन्मगच्छन्तीति भावः १५

साहित्यमते रामायणादिरसास्वाद हरिकीर्त्तन परमानन्द सन्दोहमकरन्दा स्वादविमुखतया तदुपधिषकपुण्य संचायककर्म

——— :o: ———

ने अपनी आपत्ति जिस भी रास्ते हो अगर वो दुष्ट मार्ग भी हो तो उस ने उसी मार्ग में चलना है १८

माहेश्वर के मत में अपने से भिन्न अभिन्न शिव की भक्ति के अज्ञानी गुढ लिङ्ग (स्त्री लोगों में अङ्गष्ठ मट्टी आदि में ओत प्रोत) अगूढ लिङ्ग (मनुष्यों में वमट्टी आदि का बनाने से) आत्मस्वरूप हीन न पुंसक इसी से अज्ञानी अन्धेर से अन्धे हुए शिव मन्त्रोंपदेश उत्तम नत्र पूतवस्तुओं के भक्षण से परम पवित्र देहादि लिङ्ग न होने से देवता भाव बनाने वाली भूमि से रहित नपुंसक है जिस लिङ्गाकार परमात्मा से जन्म हुआ मूत्रादि व्यभिचारादि सेहर वक्त उसे अपवित्र बना कर पितृदेवो भव पितरो को देव भाव से देखो इस श्रुति से विरोध कर उसी स्थानको बहुत बुरा समझने वाले बलिक जिन को उस से आनन्द और परमात्मा की भक्ति यजन ध्यान कर्म योग भोग समुच्चय में कोई अंशभीनहो उसी जन्म या वैसे लिङ्गच्छेदादि तप्त लोह स्त्री संभोग वाले नरक स्वप्न होवा

विधुरतयाचात्म स्वरूपाज्ञानविधुरत्वे मान्धतमसागाढाज्ञान विशिष्टतयाऽऽत्मघ्न स्यभिन्नकाष्ठादि तुल्यतयाऽऽत्मापकर्षका श्ले तादृशासुराणां मूढानामेवलोकान्गच्छन्ति पूत्येति भावः १६

कर्मनांशकमते चेकेचनात्महनोनित्यात्मस्वर्गादिफलभोक्तृकर्तृया गविधिशेषात्मपरस्वरूप ज्ञानपरस्वर्गाज्ञानतद्भावज्ञानानित्यादर्श नस्यानधिकार दवयंयोग्यास्तेऽन्धेना दर्शनस्वरूपपरलोकज्ञानराहि त्यात्मकेन तमसाशरीरात्मज्ञानसद्भावलक्षण मोहेनावृताःतेतान् पूत्यमृत्वाऽसुराणमकर्मणानिसात्मकामांस्वर्गरहितानाम सुखा नांलोकान्गच्छन्ति इतिभावः १७



दि दोनों वाले जन्मसिलते हैं १९

पूत्यभिज्ञा वादि शाम्भव मत में शिव शक्त्यात्मक परमात्मासे अद्वैत ज्ञान हीन अपने २ स्त्रीत्व पुरुत्वस्पन्द ज्ञान नहीं भक्ति रहित क्लीवों की तरह अनित्य निश्चेष्टस्पन्द मात्र बने के कारण आत्मा आनंद रूप के घाति आत्महा कहाते है

यहउसी परमात्मा शाम्भवो पायपाशवो पाय आणवोपा यशीको पाय पूजा ज्ञान कर्म योग भाव भोग समुच्चय भक्ति के अज्ञानअन्धेरेमें फंसेतामस वृत्ति होनेसे उसी ज्ञान कर्मयोग भोग भक्ति के लायक सोहं जीवन्मुक्ति की पूत्यभिज्ञा (देखी चीज के सामने आने पर ऐसा वही है यह ज्ञान हो वैसे ज्ञान को पूत्यभिज्ञा कहते है) के न होने से बहुपशुओं में पडकर अपना आप भूल जाने वाले सिंह के बच्चे की तरह वैसे असुर देव भक्ति हीन क्लीवादि के लोक नरकादि में मरकर जाते हैं २०

शाक्त मत में देवी भक्ति के हीन बकरा के बच्चे की

नकुलीशपाशुपतानांमतेये आत्महनः पशुपतिदीक्षाऽज्ञा

प्त रूपजीवन्मुक्ति स्वरूपविधुरतयानि: स्वा।मिकपञ्च वद्भवत

स्वामिकाश्ले अपालितस्वरूपा: पालकाभावेन चात्मघातिनी

ऽप्राप्यस्थाना अन्धेनतमसाऽज्ञानेनआवृता: बुभुक्षिताअन्धकारादि

रोगग्रस्तरभवन्तिहिबुभुक्षाक्षमर्यंअदर्शनमूर्छादयोरोगानि:शुक्रादे:

शिर: पीडाध्वनेनिरोगादवस्तेषां असुराराक्षसानां लोकान्स्थाना

नितदावेशयोकय्यामिवा प्रेत्यगच्छन्तिबुभुक्षित:किंनकरोतिपापम्

क्षीणाजनानिष्करुणाभवन्ति इत्याद्यभियुक्तोक्तेः अतः स्वयथादुःख

निवृत्तिस्तत्साधने दुष्टेऽवितत्प्रवृत्ति रितिभावः १८

तरहमत प्राय बुभुक्षित अस्वामकत अपना स्वरूप ज्ञान से हीन

होने से आत्म घाती कहे जायेंगे वह उस माई के अज्ञान से

होने से आत्म घाती कहे जायेंगे वह उस भाई के ज्ञान से

अन्धेरे में फंसे तामस वैसे असुर देवी भक्ति रहित होने से

अप्सरा आदि स्त्रीजन के स्पर्श लायक नहोने से दव भाव

के अयोग्य दयालुता रहित जो गृहस्थ में न आयें यावनचर हों

ऐसे प्रसिद्धनरकादिकव उन के तुल्य जन्म में मर कर जाते हैं २१

हमारी समीक्षा यह आता है कि अगर देवता भक्ति करने वाले

भी परस्पर विरोध मत से व्यौर न करने वाले भी भक्तिवादि

यों के मत से भेदवादियों के मत से अभेद वादि उन के मत से

भेदवादि और उन दोनों मतों से भिन्न भिन्नवादी ज्ञानी अज्ञा

नी कर्म काण्डा कुर्मी आस्तिक नास्तिक सभी नरक ही जायें

परस्पर द्वेष से भर कर उन के देवता बिलियोकी एक रोटी

बाटने के वक्त कम ज्यादह रख कर पूरा तोल नहोने से ज्यादह

से ज्यादह खोने २ रोटी को अपने पेट में भर देनेवाले बानरके

माहेश्वराणांमते स्वाभिन्न भिन्नशिवाज्ञाना च्छिवभक्ति विहीनस्य गूढलिङ्गा गूढलिङ्ग रूपात्मस्वरूपस्य घातिनः क्लीवा स्तएवान्धेन तमसाअज्ञानेन पुंस्त्वादिज्ञानेन रहितास्तेतादृशाः असुराणां तथाभूतानांसुरादिवलतेजआकारशिवमन्त्रपरमपवित्री कृतवस्तु ग्रहणतद्भक्ति तद्भेरहितानां क्लीवानां जन्मसुलोके षुच प्रेत्यगच्छन्ति इतिभावः १९ ।

शैवमते पूत्यभिज्ञावादेनयेपुनः शिवशक्त्यात्मप रमात्मा द्वैतज्ञानेन रहितास्तेआत्मनः स्त्रीत्वपुंस्त्व स्वरूपस्यन्दरहित आत्मतत्वज्ञानविरहितत्वादनित्य क्लीबस्पन्दमात्रत्वाद् घातिनः

न्याय की तरह सभी नरक में ही धकेलते होंगे तो स्वर्ग किस के लिये रहेगा इसी लिये नास्तिक लोगों को जगह देने वाली आज कल के वैष्णव मन्यो के अनन्य भक्ति के अर्थों को छोड उन के आर्यों का एक एक कर सभ को अच्छा कहने में तात्पर्य है यही अनन्य भक्ति है जो सभी देवता एक ही व्यक्ति के ध्यान भेद मानें ॥

जाय अगर ऐसा उन्हे भी मन्तव्यहो तो वो भी पूक्षिप्तआदि झगडों को छोड ही दें जैसा समीक्षक मत रहस्य लहरी में भी पूकट है इस से यह मन्त्रार्थ है कि सभ देवता की भक्ति से हीन याने निर्गुण निर्विशेष पर्यवसायि आत्मस्वरूप में सभी कुछ मिथ्या (होता भी न होता) समझते हुए और मिथ्या नरक साधन झगडों को छोड एक परमात्मा के ध्यान भेद शिव शक्ति भैरव नारायणादि स्वरूप शुद्धाद्वितीय ज्ञान से उन्ही सभ की भक्ति करतेहुए भैरव एद्दुलिसङ्गीतहरि भैरवात्म परमात्मा

त्मणिकाःशब्दादयस्तोत्यन्नविषयरतास्ते अन्धेतमदात्मस्वरूपा ज्ञा
नेनशाम्भवो पायप्रकाशाणवोपायप्रका शादीपरिहितलयात्मनऽन्ध
कारेणावृतान्दुर्विज्ञज्ञानकर्मा लीढाःसोहंजिवशक्त्यात्मकोहं तत्वप
त्यभिज्ञारहिताःछागमध्यपतिनसिंह शावकवअसुराणां तथांक्ली
वानांलोकान् शिवादिसुरविमुखानांलोकान् प्रेत्यमृत्वागच्छन्ति
इतिभावः २०

शक्तमते देवी भक्तिरहित्येन निमोलुकान्यरहित मृतप्राय
बालवदाछादितात्मस्वरूपज्ञानविधुरत्वेनात्मघातिनस्तेअन्धेनम
वज्ञानलक्षणेन तमसाऽऽवृतास्ते असुराणाऽदेवीविमुखानां स्त्रोजन

———:o:———

से सोहं प्रत्यभिज्ञा करनेवालों से विपरीत चार्वाक वगैरह
या शून्य आत्मा मानने वाले या केवल भेद दर्शि आत्मा से हीन
या फूटे टूटे छोटे से जड आत्मा मानने वाले आत्मघाती कहे
जानेचाहियें वेही उसी अन्धयारा अज्ञान में फंसे हुए तमोगुणी
असुर असृत आदि में और भक्ष्य वगैरह न खाते और उस के
अनाधिकारी हों उन को शाम्भवो पाय प्रकाशादि हीन होने से
अन्धियारे में फंसे हुए वे मार्ग न देखने से जरूर पद्धति भ्रष्ट
होंगे जैसे बाइस सौ वर्ष से जैनमत का प्रवेश होने से सभ वेद
तन्त्र पुराण धर्म शास्त्र दर्शन सम्मत पद्धति उडगई जैन तत्व
भीतर घुसगया वेद पद्धति सभी घृणामात्र होगई वो सभी
अज्ञान का फल (बाईस) है है उस अज्ञान से भरे हुए ऐसे ही
अज्ञानीयों को नरक तुल्य जैसे ढूंढेरे के मकान में कभी दीपा
नहीं होता विष्टा के कृमि बचाने के उपदेश सुनने पडते हैं वैसे
और वैसे कुम्भी पाक अन्धरौरव जैसा हारीत स्मृति वाक्य
रहस्य लहरी पृष्ट में दिया है उन अन्धतामिस्त्रादि को लेना

अनेजदेकमनसोजवीयोनैनद्देवाआप्नुवन्पूर्वमर्षत्
तद्धावतोऽन्यानत्येतितिष्ठत्तस्मिन्नपोमातरिश्वादधाति ४

स्वरवग्यनां दयालुनारहितानाकर्नांठितबुन्यानांनिर्गुणाणांवनेच
खाणांलोकान् प्रेत्यगच्छन्ति इतिभावः २१

अत्रेदंसमीक्ष्यं यदिसर्वएव देवभक्ताअदेवभक्ता अभेदवा
दिनोभेदवादिनो भिन्नाभिन्न वादिनः सर्वएवनरक गामारित
काः आस्तिका स्वर्गस्तर्हि मनोरथमात्रंस्यात किञ्चानन्यभक्ति
कल्पेपरस्परविरोधश्चपरिहार्यातन्नोत इतिरिक्तःकश्चनपन्थाभेदाभेद
भेदाभेद सत्यत्वमिथ्यात्वदेवभक्तत्वादेवभक्तत्वतिरिक्त प्रकारा
भावाततश्चेत्थमेवयुज्यतेसर्वभक्तिहीनायेपुनःनिर्गुणपर्यवसायि
निर्विशेषात्मनिसर्वंमिथ्याप्रतियोगितयाविद्यमानपरमात्मध्यानव

मन अवश्य वेद विरुद्ध कुकर्म करने से वृत्ति के अनुसार मरकर
जाते हैं यही अर्थ ठीक है वृत्ति को जैसा बढ़ाया जाये वैसी हीं
बढ़ जाती है तो तोमसत्व का नाम शास्त्र पद्धति पै चलानेवाला
तामोगुण है

तामस वृत्ति के बढ़ जानेकी काष्टा अन्ध तामस होहै २२

वैशेषिक मत में इस का अर्थ है कि एक परमात्मा हरज
गह होने से चलने से रहित है क्योंकि जहां जो नहीं होता
वह वहां जाताहै अगर वहां पहले ही हो तो वहां जाय कैसे
सकता है मनसे भी वेगवान् है यह विरोधा लङ्कार है
इस का अभिप्राय है कि जैसे आगे भागता हुआधौरे पीछे
चलने वाले से नहीं पकड़ा जाता वैसे वह परमात्मा मन से
संयुक्त हुआ भीपकड़ा नहीं जाताया मन उसकोसाक्षी ज्ञान

ना कारनाना विधशिवश—
क्तिभिरवादि स्वरूप शुद्धाद्वितीय ज्ञानेनतद्भक्ति निर्विशेषानन्द
शरणतया हरिभिरवात्म परमात्म पूत्यभिज्ञा रहितास्ते एवचा
र्वाकादय इवशून्यात्मतया केवलभेददर्शितयावा निरात्मका
भिन्नात्मकावा आत्महन इतिततश्चतेहि

अन्धेनाज्ञानेनगा ढेनतमसा ऽऽवृतास्ते असुराणा मात्मनाद्रा
नांभवयपेयराहित्येनक्रोधादि वैशिष्ट्यतयाऽऽतमक्षोभकानांलोका
स्तान् पूत्यमृत्वागच्छन्ति इतिभावः २२

अनेजदेक मिति वैशेषिक मतेयमर्थः तदेकंपरमात्म तत्व

नहीं करसकता इस से चलते की नाई है ऐसी उत्पूेक्षा से
विरोध का वारण है क्यों कि नैयायिक मतमें अपने आत्मा
का मन का जो संयोगहै वही पूत्यक्ष का कारण है इससे अनन्त
जीव दूसरों के भी अपने मनसें लगे हुए साक्षात नही होसकत
तो परमात्मा कैसे होंगा इस को देवता याने इन्द्रियां
(पूकाशक होने से देवताओं को अधिष्टाता बनने से नहीं जान
सकते क्यों कि वैशेषिक मत में वहि रिन्द्रय (चक्षुःश्रोत्र,त्वचा
जिह्वा घ्राण) से द्रव्य पूत्यक्ष करने में रूप कारण है द्रव्य के
पूत्यक्ष कराने वाली चक्षुःत्व चादो ही हैं वह भी रूप के विना
साक्षात् नहीं कर सकते और के भी शब्द रस गन्ध उन की
जाति यही विषयहैं परमात्मा रूपसेहीन द्रव्यहै उसमेंरस गन्ध
शब्दरूप ग्रहण नहीं इससे उनके मतमें इन्द्रयां दस परमात्मा
को देख नही सकती और इन्द्रियां भी सृष्टि से पीछे होती
हैं वर्तमान विषय का ही ग्रहण करती हैं परमात्मा उन से
पहले भी है उन के वक्त भी है उन के पीछे भी है इससे तीन

मनेजत् गतिक्रियाशून्यंसर्वं विभुसंयोगित्वेन प्राप्यस्थानाभावना त् इतिभाव:

मनसोजवीवो वेगवत्तरमिव मनोऽग्राह्यत्वान्मनोऽहिपरा त्मविजातीय संयोगेनतस्यज्ञान जनकंनमनसा स्वस्वाम्य तिरिक्तंगृह्यते इतिविरोधाभासउत्प्रेक्षयाविरोधपरिहारातएन्त देवाइन्द्रियाणि द्योत मानत्वाद्दे वाधिष्ठितत्वाच्चदेवाना आ- प्नुवन् रूपादिप्रति नियतहेतुरहितत्वेन तद्विषयत्वात् अतएवाय पूर्वमेवेन्द्रियसत्वा ज्जनकत्वादिना सकलसृष्टिपूर्वभावित्व नेन्द्रियाणां भूतभाविज्ञानराहित्येनयथाभूतरूप परमात्मज्ञान

काल में यथार्थ स्वरूप जैसा परमात्मा का है थोड़ी देर रहने वाली इन्द्रयां उस का ऐसा स्वरूप कैसे जान सकती है अथवा जैसा मनुष्य मन परमात्मा को नहीं जान सकता वैसे देवता भी उसे नहीं जानते क्यों कि वो सभ को पैदा करने वाला है उन से पहले भी था वो स्वरूप उन के पहले भी था और उन का मन अपने आत्मा का ही प्रत्यक्ष करसकता है योग भी उन का अगर चलेगा तो अपने से छोटी सामर्थ्य वाले जीवों पर ही चलेगा परमात्मा के सामर्थ्य ने दबकर उसका कुल हाल उनका योगभीनहीं जान सकता वैशेषिक इसमन्त्रसे वहिरिन्द्रियप्रत्यक्ष में रूप कारण है प्रत्यक्ष में वर्त्तमान विषय हेतु है विजातीय अपने आत्मा मनका संयोग मानस लौकिक प्रत्यक्ष काहेतु है यह तीनकार्य कारण भाव और बड़ेयोग सामर्थ्य से छोटे योग का अभि भव होता है यह अपना मत व्यतिरे कि अनुमान से तात्पर्य ज्ञान रीती से सूचन कर सकते हैं

इसी तात्पर्य का खुलासा कर रहा है तद्धावतः याने अर्थ

नेन्द्रियाणां साध्यदेवपूर्वत्वाश्चनतत्माध्यम् एतेनवैशेषिकाणां कार्यकारणभावत्रयं वहिरिन्द्रियजप्रत्यक्षे रूपकारणत्वं विजातीय मनःसंयोगस्यमानसलौकिक प्रत्यक्षेकारणत्वंप्रत्यक्षेवर्त्तमानविषय हेतुतेतिसूचित योगस्यप्रकृष्टयोग्यभिभवस्सूचितोवेदस्ततत्रयहेतुहे सतुद्भावेश्वरयोगसामर्थ्याभिभावकत्वतात्पर्यकईश्वर प्रत्यक्षाभाव बोधकत्वात्तद्भावतोर्थसंबन्धरूपाप्तिशीलानन्यान्स्वभिन्नानत्येति अतिक्रम्यवर्त्तेयथावत्स्वस्वरूपं स्वयमेवजानातिसर्वज्ञत्वात्दति रिक्तस्यातादृशत्वात् नाद्योऽन्येनज्ञेयंवस्तुअथवाततधावतइत्यत्रतंत्र धावतइतिपुंलिङ्गस्यापिसमाससंभव स्तिस्मिन्स्वस्मिन्नलक्षानन्त

में इन्द्रियादि के ज्ञान का विषय के साथ संबन्ध विषय विषयि भाव है वही प्राप्ति धावन है उनको करने कराने वालों से सभ से बिलक्षण परमात्मा है उस का प्रत्यक्ष न करसकने से और लोगों के ज्ञान का विषय सर्वज्ञ नहीं है वह अपने को खुद ही जानता है उस में जलको मातरिश्वावायु धारण करता है याने कारणत्व संबन्धेन वायु जल उसी में पैदा होते हैं अर्थात् आकाश को नित्य देख कर उसी से मिले हुए वायु को पैदा कर तेज जल परमात्मा पैदा करता है पीछे पृथ्वी वगैरह होती है यह सृष्टि प्रक्रिया वैशेषिक में भाष्य में लिखी यहां से सूचना होती है या जल वायु की आकाश में धृति उस के कारण किसी का सामान्य रूप से अनुमान कराती ईश्वर को किसी रूप से बता रहीहै आत्माजीव मेंप्रयत्नद्वारावायुरसक्त आदि भूतकपैदा करताहैगौतम मत में अर्थ है कि वह आत्म तत्व वा परमात्मा एक है अर्थात् जो योगसमाधिसे अधिक सामर्थ्यवान् जीव होगा वही परमात्मा है यह गौतम मानता है तो एक जीव ही आत्म

रीत्याकाशोत्पत्यनन्तरंतस्मिन् सतितत्साधारणकारणकोमात रिश्वावायुस्तत्साधारणकारणकसेवस्वोत्तरतेज उत्पादयतीवतद्द्वा राधापउत्पादयति भवतिहिपूर्वभाविन्यकारणेऽपिसादृश्यात्तदभि मानःअतएवकारणत्वंपरित्यज्यकारणत्व संबन्धाच्छिन्नसामानाधि करण्य मेवदर्धातिइत्यनेनसूचितमूतस्मादात्मन इति श्रुतिश्चैतत्व रास्फुटं चैतद्वैशेषिकभाष्ये उत्पत्तिप्रलयप्रकरणे यद्वावात्स्वपामा काशा दौधृतिः प्रयत्नवत्वेनतद्धेतुककत यासामान्यतईशमनुमा पयती त्यर्थः कार्या योजन धृत्यादेः पदात्प्रत्ययतः श्रुतेर्वाक्या त्संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्वजिदव्यय इति कुसमाञ्जलिरेतंवेद मुपजीव्य प्रवर्त्तं १

तत्वहै अथवा जब तक दूसरा वैसा न तैय्यार होले तबतक सभ से बड़ा एक ही जीव परमात्मा या परमेश्वर नाम से कहा जाता है वैसाही वात्स्यायन भाष्यमें तत्कारितत्वादहेतुःसूत्र पर लिखा है योग समाधि जन्यानैश्वर्यं उसका है जीव कल्प से उसका कुछ इलाहदा कल्प नहीं और वह सर्वव्यापक है इस से जाने की जगह न होने से चल नहीं सकता अगर ऐसी शंका हो कि जीव परलोक कैसे जाता है और योगी कायव्यूह कैसे लेता है जन्मान्तर कैसे होता है इस से कहा मनसो जवीयः मन के संबन्ध से मन की गति उस में मानकर उस को गतिमान कहते हैं नाना मन से कायव्यूह उस का माना जाता है वैशेषिक मत में भी गौतम की तरह जीते हुए मन शरीर से वाहिर नहीं जा सकता इस से परलोक जन्मान्तर में वह जाता है कायव्यूह में नाना मन का स्वामी बन जाता है उन में वै जात्य पैदाहोता है जीव व्यापक ही है शरीर और मिल जाते हैं शरीर संबन्ध से ज्ञानादि भोगो का अनुभव करता है अथवा विभु होनेसे

गौतममते तदात्मत्वं मेकंप्रतिपुरुषमीश्वरस्यापि योगस्मा धि जैश्वर्यस्यैक नियत्यभावेना धिकारमनाप्त पुण्यक्षयानन्तर मन्यस्यैवतथाभाव्य त्वेनैकत्वस्यैव मेवव्यवसे यत्वान्नात्मकल्पाद् न्यः कल्पइनिभाव्य लेखेनस्फुटमेवप्रतीयतेअनेजद्गतिरहितंविभु त्वात्प्राप्त व्यदेशाभावा

त्कथंतर्हि परलोकगति कायव्यूहजन्मान्तरादिअतआहमनसःहेतु नाजवीयोमन एवलोकान्तर जन्मान्तरेगच्छति नानामनांसि कार्यव्यूहेतत्र चतत्थाभूतवायव्या दिशरीरग्रहणेनानु भवति भोग मितिद्व्यागत्या दिमान्कल्पयतेजीव स्तुतंच्छरीरस्थइति

परमाणु तुल्य मन की अपेक्षा बहुत सा वेगवान् की तरह है सभ जगहोने से मन के जाने के पहले मन के जाने की जगह स्थित होनेसे दौडते की तरह उत्प्रेक्षा किया जा सकताहै इससे क्षणिक विज्ञान रूप नही क्रिया वत्व आदि अनित्यता साधक हेत्वा भास भी नहीं विभु होने से मन परमाण्वादि नही किन्तु इन सभ से विलक्षण है इसी बात को गौतम ने ३ अध्याय में स्मरण कर गौतम स्मृति बताई है मन यद्यपि परमाणुहै परन्तु आत्मा तुम सर्व व्यापक मानते हो मन जहांभी हो आत्म मन से योग ही रहेगा वही ज्ञान का कारण है तो सब काल में ज्ञान होना चाहिये और ईश्वर संयोग भीहै तो सर्वज्ञ भी होना चाहिये इस शंका को हटाने लिये कहा मनसोजवीयः याने मन रूप कारण से विजातीय (अपने स्वामी का और पुरीतति नाडी से बाहर) संयोग द्वारा ज्ञान को करता है और इस को रूपस्पर्श रहित होनेसे इन्द्रिय नही जा सकती अथवा उस स्वरूप को इन्द्रिय नही पाते याने इन्द्रियस्वरूप आत्मा नही

कथ्यते 'नान्तः शरीरवृत्तित्वात्मनस, इति सूत्रेणमनसोऽन्यत्रजीव लोगतिनिषधाभिधानात वैशिषकेऽप्येषैव परलोकगतिः यद्वा विभुत्वादेव जीवोंमनसोऽणोः सकाशाजवीयस्त्वपरलोकेयत्रापि मनोगच्छेत्त्राप्यहती त्युत्प्रेक्षन्तइवइत्यभिप्रायः एतेनएकत्वान्नक्ष णिकविज्ञानं क्रियावत्वाद्यनित्यताहेत्वभावान्नित्यत्वान्नशरीरा दिविभुत्वान्नाणु रूपमनआदिआत्माकिन्तु अतिरिक्तइति सूचितम् स्फूटमेतद् ३ अध्यायेगौतमस्मतौएतद्स्मृतेश्च तस्याः स्मृ तित्वम् एवं मनस्संयुक्तेऽपिआत्म संनिधानस्य सर्वत्रसत्वाज्ज्ञाना पत्तिस्तथेश्वर सयागस्यावंश्च चस्यादिति शङ्कापरिहृत्यर्थंमनसो हेतुभूतात संयोगद्वाराजवनंज्ञानं प्राप्ति विषयस्यकरोति इत्यर्थ सूचनायचेद मुक्तम् तथाएनद् आत्मानं देवाइन्द्रिणिनीरूपनिःस्य

इस मेंहेतु विभुत्वनित्यत्वा आदि कह चुके हैं इन्द्रियोंसे पहले होने करके वर्त्तमान विषय का प्रत्यक्ष कारण होने से त्रिकाल स्वरूप आत्मा के यथार्थ स्वरूप को इन्द्रियें नहीं जान सकते वो दौडते हुए जन्मान्तर में भी जाते हुए मिले मन इन्द्रिय देहआदि से विलक्षण है व्यापक होने से जाने बनने की जरूरत नहीं रखता जीवन योनि (प्राण के चलाने वाले) प्रयत्न (उत्साह चेतन धर्म) के सहाय से प्राणात्मा वायु इस केनिमित रसादिको समान बनकर पकाता है अथवा स्वानुकूलकृति मत्व संबन्ध से इस में पैदा करता है इस तरह जीव पक्ष में दूसरा परमात्मा पक्ष में पहला अर्थ हुआर उभय को इकटठा कर मत चलाने वाले तार्किकों के मत में दोनों अर्थ समझे जासकते हैं और पूर्वार्द्ध से एक परमात्मा व्यापक मन इन्द्रियों का अविषय सभ से पहले ही पूर्व कारण कर्ता है यह बताया और उत्तरार्द्ध से

शीत्वान्नाप्नुवन् नशानन्तिष्ठत्यर्थः अथत्रानैतदात्मकानि एकत्वनि
त्यत्वविभुत्वादिभिरेवैतेनेन्द्रियाण्यभौतिकानीतिपक्षोऽपिनिरस्तो
यतोहिइदं पूर्वमेवात्मतत्त्वंनिद्रुम् नैतदर्थं इर्येन्द्रियापेक्षसिद्धिः
वीतरागजन्मादर्शनात इतिसूत्रमस्फुटोक्ते: पूर्वरागचेष्टाफला
र्थं जन्मान्तरस्य लाभान्नेन्द्रियाणि साक्षात्वकत्तात्साध्ययथा
र्थंस्वरूपाऽविषयतयेन्द्रियज प्रत्यक्ष विषयस्यतादात्म्येनकारण
त्वात्तदात्मतत्त्वधावलागतिशीलान् जन्मान्तरदेहचविनाशिनः
कारणत्वाद्वै अन्यान् इन्द्रियदेहादीन् अतिक्रम्यवर्त्ततेभिन्नस्वभावम्
तस्मिन् आत्मतत्त्वेतन्निमित्तंतत्राप्सत्येव जीवनयोनिप्रयत्नसहः
येनमातरिश्वावायुः प्राणात्माअपोरसादीन् दधातिसमानात्म

जीव माना उन सभ से अल्प विषयो में दौडने वालों (जानने
वालों) से अधिक ज्ञाता याने सर्वज्ञ है ऐसा ईश्वर जीव
वे धर्म्म बताते है यह भी अर्थ होसकता है ३

दयानन्द के मत में भी हम ऐसा अर्थ कर सकते है कि
कि वह परमात्मा व्यापक है एक सभ से पहले याने नित्य है
और इन्द्रियों का विषय भी नही इसी से जड मूर्त्ति वगैरह
उस का रूप नहीं और जन्मान्तर लेने वाले व्याप्य
अल्पज्ञ जीवों से बढ कर उन के मान्य दर्जेमेंहै उस की प्रेरणा
से वायु मेघादि द्वारावर्षा करताहै जैसा अयंस शिङ्कते मन्त्र और
उसकी व्याख्या निरुक्त की से जाहिर होताहै कि वह बिजली
को प्रेरकर मनुष्यों को वर्षा द्वारा गिराता है अगर उस में कह
कि बिजली होती है ऐसे अर्थ का भवन्ती शब्द है तो उस को
अन्तर्भावितण्यर्थ मान कर गुजारा करसकते हैं अगर कहो कि
निरुक्त में ईश्वर का पुरुष स्त्री दोनो रूप का आकार इस

स्वरूपेण संपादयति प्राणएकोऽपिस्थानभेदात् प्राणापानादिसं ज्ञांलभतेएतद्वाक्यस्यस्वानुकूल कृतिसंसर्गेणरसादौसमवायेनयतः कारणमितिच सूचितम् अत्रपक्षवैशेषिकार्थो ऽपिअवलिर्ह्यात ध्येयम् २

तार्किकोभयोच्छिष्टमतेउभयार्थसंग्रहेणार्थोहिसंपाद्यस्तादृश परमात्मा जीवश्चात्रस्वरूपतो निरूप्यते भुक्ति मुक्तियोग्यता संपादनायेतिबोध्यम् तत्रतत्परमात्मतत्वं पूर्वार्द्ध व्याख्यातम् अन्यान् जीवान् धावंतोविषयान् जानतोऽल्पज्ञान् अतिक्रम्यतत्र तसर्वज्ञत्वादित्यर्थः एतनजीवबहुत्वं मीश्वरैकत्वंचे त्यादिसूचितम् इति ध्येयम् ३

मन्त्र में सिद्ध किया है

मिलकर बिजली में प्रेरणा जल के गिराने को कराता है इस से उन दोनो के लिङ्गों से स्त्री लिङ्ग औरपुंलिङ्ग जाना ग ।

तो उस मन्त्र में मनुष्य दो प्रकारके स्त्री पुरुष नीचे जलद्वार गिराने लिखे हैं सर्व व्यापक परमात्मा उनके साथ मन्त्र में लिखा गया ऐसे निरुक्त का भी अर्थ बदलेंगे ४

अब इस में समीक्षा सनातन के मत से गुणग्राही बनकर हमें ही करनी पडती है ईश्वर व्यापक जीव व्याप्य यहमानकर ऐसा खेल का अर्थ हम करें तो ईश्वर का व्यापकत्व क्या है यही पहले हमें जानना चाहिये अगर सभ जगह जा सकता है ऐसा कहे तो अनेजत् (नही जाता) इस श्रुति का विरोधहोगा निर्भय ऐसा श्रुति का अर्थ बदलें तो निष्क्रियं सविरोध होगा और सभी दर्शनों का विरोध भी होगा

अपने सिद्धान्त का भी विरोध होगा और जो परिच्छिन्न

दयानन्दमतेपूर्वार्द्धे न परमात्मपरत्वेन विभुत्वरूपव्यापक
त्वनित्यत्वमिन्द्रियाग्राह्यत्वनेकत्वंचव्याख्यातुं शक्यंतथाजडमूर्त्ति
भिन्नत्वंच तद्भावतहत्यनेन अन्यान् बहून् इतस्ततोजन्मशीलान्
अतएवव्याप्यान् विषयान् धाश्तोऽल्पज्ञान् वाअतत्येति अतिक्रम्य
वर्तते तथातत्प्रेरितोमातरिश्वावायुरपोदधाति पृथिव्यांमेघादि
मावर्षयतिइत्यर्थः उपरिस्थामधोदधाति अयं सशिङ्क्ते
पुरुषोवृणीते मिमातिमायुंचंसमावधिश्रितः सापूर्वस्यचित्तिभिर्नि
हियकारमर्त्यं विद्युद्भवन्ति पृतिवव्रिमीहत इतिमन्त्रेनिरुक्ते
ऽपिस्पष्टम्एतत् ।

है वह अनित्य है जैसे घटादि ईश्वर अगर गति मान् होगा तो
परिच्छिन्न होगा तो अनित्य होना चाहिये इस अनुमान से अनि
त्यत्व व्याप्यपरिच्छिन्नत्वहैऐसेदूषणदिया जायगाऔरजहां वहआ
जाय उसमूर्त्ति सेंपूजा करनी पडेगी अगरसभ जगहमौजूद हैयह
व्यापकत्व है तो वेहो एको देव स्सर्व भूतेषु गूढ इस श्रुति
सें भी वही जीव कहा है उसी तरह वह भी व्यापक है और
तो उसी अनुमान से अनित्य सिद्ध होगा जीव ईश्वर प्रकृति
तीनो को नित्य दयानन्दमानताहै फिरजीवकोव्याप्यबतलाताहै
उस की पण्डिताई के पीछे लगकर कहां तक अर्थ ठीकहोसकता
उस की पण्डिताई के पीछे लगकर कहां तक अर्थ ठीकहोसकता
है और परिच्छिन्नमान कर भी उसे मध्यम परिमाण (देहव्यापक)
मानें तो देहतुल्य अनित्य ठहरेगा अणु माने तो हृद में स्नान
के वक्त देह व्यापक शैत्य कैसे ज्ञात होगा देह व्यापक प्रभाव
उस कीडे जीव की मानही नही सकते यह तो निरवयवहै न ही
तो नित्य नहो बनेगा जीव का उपाधि अन्तःकरण छोटा ईश्वर
की माया उपाधि बडी ऐसा उपाधि व्यापक व्याप्य तो वेदान्ती

अत्रैतन्मते विद्युद्भवनं भावनमःतभूं तत्पर्यत्वात तच्चप्रेरणरूपं यद्यपिएलदवतरणे देवतोभयलिङ्गो प्रादुर्वभूवेतिपाठेन ईश्वरसाकारत्वंस्वसिद्धान्तविरुद्धम पद्यते तथापिनैवविरोध प्रादुर्भावोहियोगेनतज्ज्ञानंतच्चप्रेरणाकालिकस्त्रीलिङ्ग विद्युत्सहचारितत्वात्तल्लिङ्ग त्वंस्वीयपुंलिङ्ग परमात्मशब्द प्रतिपाद्यत्वाच्चाथवामत्यं निहिधकारेत्यत्र मर्त्यत्वजाति स्त्रीपुंसुभनीचैः करणलिङ्गेन व्याप्यस्यव्यापकनैयत्येनोभयसाह चर्यादुभयलिङ्गेन व्यपदेशश्चापिप्रादुर्भूतः उभयकारण भूतत्वेनैवा परमात्माज्ञांतइत्यादिरर्थः परिणमयितुंशक्यते इतिध्येयम् ४

सोचते हैं बावाजी की भाषा तोईश्वर व्यापकोपाधिमानेतो ईश्वर उपाधि के नाश से नहीं रहेगा न जीव ही रहेगा बावाजी की भाषा जीव ईश्वर दोनों नित्य कोटि की ध्वजा मे लिख चुकी है ऐसा ईश्वर माने और बा वाजी का चाहे मानें भी अगर सभ जगह है तो गौ जैसे सींग पकड बतायें ऐसे पतथर पकड ईश्वर बताय कर लिङ्ग पूजा जबरदस्ती वा बाजी से करायेंगे निरूक्त देवता उभय लिङ्ग बताता है दूसरे के लिये स्त्री तोन हीं सुनें उस दृष्टान्त से लक्षणा कर निरूक्त कैसे बदलें प्रादुर्भाव शब्द साकार और अवतार बताताहै सभ देवता रूपबननेवालापरमात्मादेवीदेवदोनोंरूपका होकरविजलीकीसी चमकऔरोंकोबिजलीप्रतीतहोता हुआजलद्वाराजीवों कोनीचे भेजता है यही मन्त्र और निरुक्तकी अवाज से निकलताहै भवन्तीयह शतृ प्रत्ययमन्त्रका इस को साफ कहता है बिना प्रमाण पहले दिखाई दार्शनिक विद्वता वा बाजी की के ऊपर शब्दार्थ (असली) को छोड नकली (लक्षण) का अर्थ करते भाई लज्जा आती है बस आगे आप ही देखो इस मन्त्र के हमारे

असैदंसमीक्ष्यते किमिदमीश्वरेऽव्यापक त्वंसर्वगति शीलत्वं चेद्गनेजदिति श्रुतिविरोधः निर्भयवत्वेन कम्परहितत्वं श्रुत्यर्थ इति चेन्निष्क्रिय मितिश्रुतिविरोधः

किंश्रुगतिमच्चे सकलदर्शन विरोधः परिच्छिन्नता पत्तिश्च मूर्तिपूजापत्तिश्चईश्वरपरिच्छिन्नतायाः क्वापिकेनापिमुनिनाऽऽस्ति केर्द्ध्यानविद भिर्मतेनचस्वीकृतेनास्वीकृतत्वात्परिच्छिन्नत्वादनि- त्यत्वंघटादिवदितिप्रयोगेणानित्यतापत्तेः एवंजीवेऽव्याप्यत्वमन्य देशावृत्तित्वं चेत्परिच्छिन्नत्वेनानित्यत्वापत्तिरणुत्वेऽपितुल्याऽणु त्वेसकलदेहवृत्तिशैत्यज्ञानानुपपत्तिः प्रभावादस्मरामानुजादिवन्नि

अर्थदेख हमारीतरह निष्पक्षपात दोनोंतर्फ सोचकर किसी मतम भक्काकरोसोयो तोनिराकार तो ज्ञान रूपनिर्गुण ब्रह्मके वगैरकोई हो ही नहीं सकता मायावच्छिन्न तो जगदुत्पादक का बृत्या का रही होगा ज्ञान से भिन्न जड ब्रह्म माननेमें पाषण वादी जीत जायेंगे यह परमात्मा की नमोऽस्त्वनन्ताय होगी।

सांख्य मत में अर्थ है कि हर एक शरीर में जीव तत्व एक २ और गति(क्रिया)रहित प्रारब्धभोग तक रहताहै और मन से ज्यादह दौडने वाला (याने मन के विष याकार होतेही पहलेभी प्रति विम्बित होने वाला सभ से पहले होने से किसी इन्द्रिय का विषय नहीं वह प्रकृति आदि की तरह परिणामि नहीं नित्य और असंगहै तोभीउसके प्रतिविम्ब को आत्मारूप समझने वालोंके रसआदि समानवायु प्रारब्धभोग तकरखता है अथवाप्रकृतितत्वब्रह्मएकहैपरिणामितोहैपरन्तु सर्वव्यापकहोनेसे गतिरहितहैयाने सभजगह मौजूदहै और मनसे वेगवान्हैमनभी तो प्राकृतहै इससे विकार द्वारा गतिभी उस में है अथवा उसकी

रयस्यस्वीकर्तुं मशक्यत्वात्निरवयवत्वात्उपाधिरूपात्व व्यापक भावेवेदान्तिनोजीयासु जडादिव्यापकपूजापरितत्वप्रतीकतयाजी वेश्वर प्रकृतीनांतेन नित्यत्वाभ्युपगम विरोधश्च नित्यत्वानभ्युपग मेदुरुद्धर आपद्यते इति तदनुरोध्यर्थयोग्यतामत्यानांजन्मान्तरग्रहरीतिर्जलादिनापञ्चहुतिप्रकरणवन्निरुक्तेव्याख्यातातन्म न्त्रार्थंत याअयमितिदेवता शब्दरूपास्वमतविरुद्धाचोक्तेतिप्रादुर्भवज्ञातृप्र योगाभ्यामन्तर्भावितण्यर्थतायामानाभावोऽन्यलिङ्गारोपेश्रुतिवि रोधः साकारारिक्तब्रह्मरूपस्यसगुणेस्वीकर्तुं मशक्यतावज्ञानाकार स्तुतमृमायासित्सादि वृत्याकारितरतस्यनिराकारत्वोक्तौ वदतो याघातश्चज्ञानाश्रयस्तुजडो नश्रुति-

:o:

वेदाथ में प्रकृत्यापूरकी जरूरतहै इसमें नही सभसे पहले होनेसे देवता यानेबौद्ध दशहजारवर्ष सुखभोगते इत्यादि वचनमेंपरलोक गामी इसे नहीं पहुंचते सांख्यों के केवल वैराग्य प्रकृति आत्म बादि कि पहुंचने की वह जगह है जीवादि की तरह स्वार्थी नही परार्थ ही प्रकृति का खेल है उस प्रकृति के आपूरक होते हुए बायु समान रस आदि के देह पुष्टि के लिये बनाता है।

सांख्य विज्ञान भिक्षु के मत में भी ऊपर दो प्रकार के सांख्य मत के अर्थ हो सकते हैं मगर विज्ञान भिक्षु प्रति बिम्ब मान कर प्रकृति में ईश्वर तर्क भी यही अर्थ लगाते हैं

योग मत में अर्थ है कि ईश्वर तत्व एक है सर्वज्ञ सर्वशक्ति पुरुष विशेष बिना योग नित्य सामर्थ्य वाला उन्हों ने परमात्मा माना है उस को किसी का भय नहीं संकल्प रूप मन का भी प्रेरक है चित्त के बिक्षेप को भी हटाता है योग सूत्र में लिखा है ईश्वर प्रणिधान से चित रुक जाता है प्रेरणा भी और श्रुति में बताते है बही अच्छा काम उस से कराता जिस को बहा अच्छा

संमतइति विभावयन्तुविचारशीलाविमत्सराइतिध्येयम्

सांख्यमते जीवतत्वमने जदगतिएकं प्रति शरीरंमनसो जवीयचितिच्छायया तत्सम्बन्धिवेगवत्वा दिनाकारोपरागेणउपर क्तंयद्भ्रदेवाःप्राकृताइन्द्रियान्तानाप्नुवन् सर्वेभ्यःसृष्टिकालकेभ्यः पूर्वकालत्वात् इत्यर्थःयद्वाप्रकृतितत्वमेकंअनेजत्स्पन्दात्मकलित् गतिरहितं व्यापकत्वात् परिणामक्रियाहिप्रकृतिर्नस्पन्दशीलात धामनसोजवीयस्तस्य प्राकृतत्वात्तज्जननेऽप्यहं कारस्यप्रकृत्यो पुरापेक्षणात्अतएवसकलपूर्वत्वाच्चैनं देवा बौद्धादशसहस्राणीत्या द्युक्ताबुद्ध्यादितत्त्वात्म चिन्तकानाप्नुवनृतत्प्राप्ताःत्यत

दर्जा देना चाहता है वही बुरा काम कराता है जिसको नीचे गिराना बुरा बनाना चाहता हैं इस को तदाकार भी इन्द्रिय क वृति नही पहुंच सकती रूपस्पर्श रहित होनेसे इन्द्रिय ग्राह्य नही अथवा देवता इतना ऐश्वर्य नही रखते इससे इस को नहीं पहुंच सकते यह सभसे बडे ऐश्वर्य वालेहैं उसके अपने व्यूहकेकायदेवा देवता भी कम सामर्थ्य रखते हैं अंश न्यून होने से और कर्म देवता भी क्षीण और जीव होने से हीन पुण्य को रखने से उतने ही ऐश्वर्य के मालिक होते हैं इस में हेतु हैं कि वह तो सभ से पहले से है वह बैठाहुआ भी सभ जगह मौजूद होने से दौड २ कर जाने वालों से भी आगे ही पहुंचा मालूम होता है सूर्यादि रूवं अंशरूप व्यूह के कार्यों से प्रेरणा वह करता है तो भी श्रद्धा से पीछे कामों कों देहादि चेष्टादिरूप से वायु संपादन करता है अथवा उसी के सूर्यादि रूप से खेंचते हुए जलादि को ग्रिसआदिक द्वारा वायु मेघादि द्वारा जलादिको पृथिवीआदि रूपवृक्षादि रूप से गिराता है (रखता है)

ऽमयत्वात्स्वे त्यप्यर्थः महात्मतत्वंघावतःपरिणामिनो ऽन्यानत्येति अतिक्रम्य वर्त्ततेऽपरिणामित्वाऽसङ्गत्वादि प्रकृतिवैरूप्यात् यद्वातत्प्रकृतितत्वमन्यान्बहून् जीवान्अतिक्रम्यवर्तते परार्थमात्र कार्यकारित्वतद्विलक्षण गुणवत्वादित्यर्थः तस्मिन्प्रकृतितत्वएवनै मितकभावानामुपभोगायो पूरकेरसादीनांमातरिश्वाप्राणएवअपी रसादीन्दधाति पोषयतितस्मिन्नसंगएवात्मा ततत्वात्स्यवद्भूते यावद्दृष्टं देहधारणंप्राणः करोतिमतद्ग्रेसोस्तीति इतिभावः

विज्ञानाभिक्षुमतेप्रकृतिकल्पोक्तोऽर्थोनुवर्त्तव्योजीवकल्पी यो ऽपिप्रतिविम्ब कल्पनेनतदीयोपि सम्भवतीतिध्येयम् ६



अथवा जीव तत्व असङ्ग है क्यों कि असंप्रज्ञात समाधि दशा में योग सूत्र में लिखा है कि उस काल में द्रष्टा जीव की स्वरूप में स्थिति होती है वृत्ति का स्थूल सूक्ष्माकार नहोने में प्रति विम्ब तदाकार आत्मा न नही होता इस से वास्तव में वृत्यादि संङ्ग हेतु मन की वृत्ति काल में भी उस से पहले ही तदाकार होता है ऐसे निमि होता है ।

योग सूत्र में भी लिखा है असंप्रज्ञात के बगैर संप्रज्ञात काल में वृति के समान रूप का ज्ञान रूप आत्मा जाहिर होता है इस के असली स्वरूप को घधुप्रती का आदि भूमिका भी नहीं पहुंचती क्यों कि उस वक्त भी वृति सारूप्य होता ही है क्यों कि उन से भी पहले असङ्ग रूप से वह स्थित ही है कि जिसका वह प्रति विम्ब मात्र है वह कूटस्थनि त्य भी (लुहार के लोहाकूटने के स्थल आदि की तरह) निश्चल है परन्तु दौड रहे इन्द्रिय आदि से भी बढ़ कर दौडते की तरह है क्यों कि जैसे एक दौड रहे दूसरे बहे दौडने वलों को नही

योगमते एकमीश्वरतत्वं सर्वज्ञसर्वशक्ति अनेजदभीति
स्वादृकस्प्यंमनसो जवीयोदः सङ्कल्पादि प्रेरकत्वाद
कम्प्यं मनसोजवीरतोऽपिवेगवत्परमीश्वर प्रणिधानाद्धेति
सूत्रेणातद्प्रणिधानादिजविक्षेपस्तत्नैवशमनीयतेतिबोधयतिश्रुतिर
यत्रापिसएवसाधुकर्मकारयति यमुन्निनीषतिस एवासाधुकारयति
यमधोनिनीषतीतिश्रुतःएनद्देवास्तदाकारवृत्तयोनाप्नुवनुइन्द्रिया
तीतत्वात्देव वैश्वर्येणनाप्नुवनूर्वत्तोधिकैश्वर्यंत्वात्कर्मदेवानांक्षर्ये
श्वर्यात्तत्रान्योपिहेतु रित्याहपूर्वमर्षत्तेभ्योऽपिपूर्वतनइत्यर्थःतिष्ठ
मतद्धावतोऽन्यान् अत्येति भूतभौतिकान् सर्वव्यापकमित्यर्थात्

पकड़ सकते ऐसे यह भी इन्द्रिय से नहीं पकड़ा जाता
मन आदि संपूर्ण यथार्थ सर्व व्यापक रूप से नहीं पकड़ सकते
जब कुछ ग्रहण करते भी हैं तो जितनी या जिस प्रकार की
वृति हो उसी क उतने ही प्रति बिम्ब को ग्रहण करसकते है
उसमें गौणरूपसे आत्मा प्राणसबशारीरक कामोंकोकराता हुआ
भीप्रकृतिकर्तृत्वका प्रति बिम्बात्माके साथदादात्म्याध्यासद्वारा
मुख्य आत्मा को उस स्वरूप में मानता हुआ आत्मा को कर्ता
धार्मिक आदि मानता जाता है अथवा वशीकृत मन योगी का
वशीकृत प्राण आत्मा के सर्व व्यापक होने से वहां रहते हुएभी
धारणा ध्यान समाधि आदि क प्रभाव से परकाया प्रवेशादि
विभूति के कामों को कर देता है

अथवा विषय वाली वृति में धारणा ध्यान समाधि आदि
के प्रभाव से रसा स्वाद विचित्र गन्ध का सूंघना स्पर्श का
अनुभव इत्यादि विचित्र कामों को प्राण महा वायुके मेल से
देता है अथवा अन्तःकरण प्रति बिम्बत होकर उस क ठहरनेपर

व्यापित्वसकलसंयोगः तस्मिन्परमात्मनि सूर्यादिरूपैरापू रितरि-
आपः अद्भुआपोत्रै अद्भुतिश्रुतेः तत्संपाद्यानिकर्माणिवायुःसंपाद
यतियद्वा तस्मिन्सूर्यादिरूपैरश्मिसंयोगाज्जलादिकर्षणादिकंवायुः
संपादयतिवृष्ट्याद्भम् इतिभावः
यद्वातद्रात्म तत्वमसङ्गिअनेजद् वस्तुतोवृत्ति विरहदशायांरहि
तमुपरागेणासंप्रज्ञातसमाधीयंतदाद्रष्टः स्वरूपेऽवस्थानमितिसूत्रबो
धित निवातदीपइवाचलमेकंपू तिपुरुषमृमनसोवृत्तिवशादुवृतिसा
रूप्य मितरत्रेति सूत्रात् जवीयः चलंक्षणिकत्वात्वृत्तेःनैनद्देवा
अपिसाधुवृतयो ॥

———:o:———

वायुः कर्म धर्म काल अवस्था तीन तरह के परिणाम (जैसा घट बनने में मट्टी में घट धर्म बर्तमान काल घटा कर अवस्था का होना मट्टी धर्म भूत काल उस पिण्डा कार अबस्था का होना भावी काल मट्टी धर्म विरडश कल (टुकडा) आदि अबस्था का होना यह तीन परिणाम होता है) बनाता है योग मत में अन्तःकरण के मध्यम परिणाम साबयव अनित्य होने पर भी सभ ज्ञान इकठे क्यों नही होते इस शङ्का का समाधान यहहै कि वृति एनेकानेक होतीहै वह इकठी नही होती इसी मे ज्ञान वृति इकठे नही होते

मीमांसक मत में अर्थहै कि वह आत्मा अकम्प्यहै याने धर्म या गार्द क्रिया अनित्य भी परन्तु धार्मिक आत्मा नित्य है धर्म धार्मिक का भेदा भेद हैं इस शरीर की धर्मक्रिया आत्मा का उस के उत्पादक यत्न (उत्साह)यह अनित्य भी हैं तभी आत्मा अनित्यन ही होता वह मरकर भी धर्म के फल स्वर्ग को भोगता है इस से चार्वाकों को (भस्मी भूतस्यदेहस्य

मधुपूतीकादय आप्नुवन् तदापिवृत्तिस्वरूपस्यैवग्रहात् पूर्वमर्षत् यतस्तेभ्योपि पूर्वतमेनअसक्तरूपेणस्थितोनतत्रत्यप्र तिबिम्बमात्रम् तत्तिष्ठत निश्चलमपिधावतोऽन्यान् मनआदीन् अत्येतिधावन्तिअपीन्द्रियमनआदि साधनानिसाकल्येन येमंगृहीतुंन शक्नुवन्ति एतेनवृत्तिसारूप्य गृहीतंनयथार्थ रूपमितिदर्शयतितस्मिन् मातरिश्वापूाणः सर्वाणिशरीराणि कर्माणिसंपाद्य दधातिवृत्तिसारूप्येणान्तः करणावच्छिन्नचेतनोहंकरोमीत्याद्य वसायपूर्वकमहं धार्मिकइत्यवध्यासंयति गौण्यावृत्यामात रिश्वापूाणश्चवशीकृतोधारणा ध्यानसमाधि भिस्तिष्ठत्येवतस्मिन्नेव कर्माणि इत

पुन राग मनं कुतः) जब शरीर भस्म होगा या तो पुण्य पाप किसे होना है कहां फिर उसने आना है स्वर्ग नरक कोई नही स्वर्ग के लिये यज्ञ फजूल (अग्नि होत्रं त्रयों वेदा स्त्रि दण्डं भस्म कुण्ठनं बुद्धि पौरुष हीनानांजीविका धातृ निर्मिता)अग्नि होत्र तीनों वेदत्रिदण्ड लेना भस्म आदि मस्तकको चित्र(रङ्गबरंगा) बनाना यह तो बुद्धि पुरुषार्थ हीन मूर्ख निकमों पोपों की जीवका है इस शङ्का अपने का भी दयानन्द का भी तो जवाब खुद वेद भगवान् भूत भावि वर्त्तमान वक्ता होंने से कह चुके और एक है याने हर एक शरीर में इलहदार स्वामि होकर स्थित वही आत्मतत्व है जोर जिसर काम्य कर्मको करताहैवह वही उसी फल को यथा जन्म यथा लोक सिद्ध करता है दूसरा नही स्वर्गादि देश में गति किस की होती है अगर आत्मा सर्व व्यापकहै इस शङ्का को दूर करता है मन सोजवीय याने मन के संबन्ध से इस को गति कही जाती है वहां जाकर दिव्य देह दिव्य स्त्री अमृत (स्वप्राप्यदेशान्तरोप भोगा श्रयत्व)संसर्ग से

रकाय प्रवेशादीनि दधाति संपादयति इतिवामा तरिश्वावायुः विषयवत्यो वावृत्तय इति सूत्रोक्त रीत्या •

तद्रसादिद्रव्य संपादनेन विचित्राणि कर्माणि रसज्ञाना दीनि संपादयति इति वाअथवा तिष्ठतिअन्तः करणविश्वति तस्मिन्नेव मातरिश्वावायुः अपःकर्माणि धर्मकालावस्था परिणा माख्यानि संपादयति वृत्तिमतो ऽसङ्गात्म नश्चैकत्वेऽपिवृत्ति मात्रपरिणामाज्ज्ञाना यौगपद्य व्यवस्थेतिवाभावः ७

मीमांसकमतेअनेजत् तद्विधिशेषभूतात्मतत्वमकम्प्यमना स्यानित्यक्रियातत्कर्तृत्वेऽपिअनित्यत्वापत्तिदोषः शरीरवृत्तित्वा

इस को कर्म भोक्ता लोग उच्च नीच भाव से याने जैसे बड़े के पास छोटा जाये इसतरह से) नहीं प्राप्त होते याने किसीको वहां अपने को छोटा बड़ा भाव समझ कर ईर्ष्याराग द्वेषादि से दुःख जो नास्ति कया अपने मत के सलाह देने वाले साख्यादि को शङ्का में रखा है वह नहीं उतन केवल सुख का ही अनुभव होता है ये वेद भगवान् खुद ही जवाब देते हैं और यह आ-त्मतत्व देव लोक में भी तो पहले ही स्थित है तो भी वह प्राणादि के उसदेश में गति से ही गतिमान्कहाता है क्योंकि पहले दौड़ गया जैसे पहलेपहुंच जाय ऐसे सभ जगह होने से यह तो पहले वहां ठहराहुआ है इस से वह यज्ञ करता यज-मान यज्ञ रूपी शस्त्रों से सहित स्वर्गलोक को जाता है ऐसे श्रुति में चार्वाकों की शरीरतो यहां ही रह जाता है जाता आता कोई नहीं इस शङ्का को प्राणमन आदि गति से जाता है धर्म क्रिया से उत्पन्न अदृष्ट वाला आत्मा तो वही है यह उत्तर सूचन से हटा दिया उसी आतमा में प्राण शरीरादि क्रिया से

नक्रियायाः प्रयत्नस्यतज्जनितापूर्वस्यचकर्तृत्वादात्मनःतिष्ठत्वाद्धर्म धर्मिणो र्मीमांसकैर्भेदाभेद स्वीकारेण धर्मानित्यत्वेऽपिधर्मिणो नित्यत्वाऽप्रसक्तेः एकंचस्वामित्वेन प्रतिशरीरं नियतंतदात्म त्वमितिस्वाम्य व्यवस्थया नान्यदीय त्वापत्तिर पूर्वस्येतिना न्यकृतमन्य उपभुङ्क्ते उद्देश्यतांविनेतिभावःस्वर्गादौकथमु पभो गइत्यतआह मनसस्संसर्गा त्तद्गमनेनतत्रत्यदि व्योपभोगैर्दि व्यदेहवनि तारामादिभिर्जन्मान्तरे चैहिकैस्तैः संसर्गाज्जीवो गतिमत्तयोपभुंक्त स्वाश्रयप्राप्यदेशोपभोगाश्रय त्वेनगतिरत्रे ति भावः

अदृष्ट पैदा करने की श्रद्धा से कर देता है योगादि शास्त्रीय कर्मों को स्थापन कर देता है याने यागादि कर्त्ता में यागादि पैदा हुए धर्मज अदृष्ट याने प्रारब्ध स्वर्गकी समाप्तितकरहता है उस से फल को भोगता है इस से शरीर क्रिया याग है वह तो याग समाप्ति कालमेंहों चुकि फल किसका होइसचार्वा कादि शङ्का का वेद भगवान् खुद ही उतर कर चुके अथवा श्रद्धा से बनाए कर्मों को फल द्वारा सूर्यादि लोक उस से २ मेघ में पहुंचा कर वायु वृष्टि द्वारा ३ फल पुष्प पत्रादि में जीवके प्राण मनआदि पहुंचा शरीरसे खासरस रक्त मास मज्जा अस्थि शुक्र बनाता हुआ ४ स्त्री के योनी में हवन होने पर गर्भाशय में पहुंचाय बढता हुआ पैदा कर पुरुष रूपमें लोक जन्मान्तर के पुण्य पापों के फल को यथा योग्य अनुभव कराता है ८

शङ्कराचार्यका हमारी संस्कृत टीकानुसारअर्थ यहहै कि जिस आत्मा (अन्तःकरणो पाधि से मिले हुए आत्मा को मान कर व्यवहार से यथार्थ असङ्ग आत्म रूप को शास्त्रा दिन जान

नैनदात्म तत्वंदेवाआप्नुवन् कर्मभोक्तारोऽन्यथातारतम्ये न कर्मणउपभोगतारतम्य ईर्ष्याद्यापत्ते र्निरन्तरसुखोपभोग रूप स्वर्गानुपपत्तेः पूर्वञ्चेदमर्षत् विज्ञानवत् तत्रवःदेवलोकेऽस्थितंनित्य र्थः तद्वात्मतत्वंधावतो गच्छतः प्राणादीनन्यानत्येति सएषयज्ञा- युधीयजमानो ऽञ्जसास्वर्गलोकंयातीति श्रुत्युक्तेः

प्राणादिगमने ऽपिनित्यः सर्वत्रसंस्थितएवभवतितद्गत्यैवतु गतिव्यपदेश एतेन तदनुपपत्तिः परिहृतालाक्षणि कस्यविशेष णा प्राणादिगते रेवतत्राभिप्रेतत्वादिति भाव. तिष्ठत् इतिअत्य यन हेतूक्तम्

मान कर संसार जन्म परम्परा का अनुभव करते हैं उस से विपरीत असली सत चित माया तीत आनन्द निर्गुण निर्विशेष निष्क्रिय असंग आदि यथार्थ रूप से जान और मान संसार बनध से छूटेहुए का छूटना जान और मान लेते है उसी आत्म स्व रूप माया अंश से दूसरे अधिष्ठान मात्र सत् स्वरुप का निरूपण करते हैं

वह एक रस है याने नित्य जैसा उसका कूटस्थ स्वरूप अपना है सभ जगह सबकाल में वह वैसा ही है जब भी अन्तः कारणा वच्छिन्न संसारियों को संसारी भी प्रतीत होता है तवभी विद्वान् उस को उस वक्त भी वैसा ही शास्त्र से जान मान कर संसार को मिथ्या जान असक्त नित्य मुक्त कूटस्थ ही कहाते हैं॥

अन्तः करणा वच्छिन्न ब्रह्मलोक (सत्य लोक) आदि गम न करते हैं वहां भी स्वर्ग व्यापक होने से पहुंचे के तरह तादात्म्याध्यास होने से उस के जानने से गतिमान् कहाया इस से कूटस्थ नित्य असङ्ग का भी उपाधि भेद से गमन अगमन

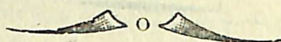
तस्मिन्नात्मनि पूाणःशरीर क्रियाअपः कर्माणि पूर्वंद्वारा संस्कार रूपेणदधातीति आशुविनाशिनः कथंस्वर्गादि जनकत्वमिति शङ्कापरिहृता यद्वापञ्चम्या माहुतांवापः पुरुषवचसोभवन्ती तिछान्दोग्योक्त जन्मान्तर परिपाटी अत्रानेन दर्शिताअपः श्रद्धा तत्साध्य कर्माणि सूर्यलोकादि गत्यावृष्ट्याऽन्नादिद्वारा यौनीषि क्तरेतः पुरुषरूपेण भवन्तीति तत्कर्मविशिष्ट पुरुषःपुरुषांन्तरं भवति इति मातरिश्वातस्मिन् संपादिते स्वेनैवजन्मान्तरविशिष्ट कर्मफलं दधातीति भावः ८

शा॰यस्याऽऽत्मनो हननादविद्वांसःसंसरन्तितद्विपर्ययेणावि

लिख दिया यह विरोधा भासा लङ्कार है दोष नही और उसे इन्द्रिय नही पहुंच सकते क्यों कि जब इन्द्रिय व्यापार करते हैं तो मन उस से पहले पृति विम्ब ग्राहि होता है वह उन से भी जलद है इस से उस के व्यवधान से उस के पृति विम्ब (स्फुरण का भी इन्द्रिय ग्रहण नहो करसकते विम्बरूप शुद्धचैतन्य को ही ग्रहण करेंगे वह सब के जाने से पहले ही सभ जगह मौजूद होने से पहुंचा हुआहै इससे निरूपाधि(याने चैतन्य एकला) सांसारिक धर्म रहित अपने उस शुद्धरूप से विकार हीन है और उपाधि के धर्म होने से उपाधि के साथ अविविक्त (मिला हुआ) सभ संसार क्रिया का अनुभव कर्ता की तरह पृतीत होता है अज्ञानी मूर्खों को और एक भी अनेक देह संबन्ध से अनेककी तरह मालूम पडने लगजाता है क्यों कि वह सभ जगह मौजूद है इस से अपने आप निर्विकार भी दौडते हए बिषयादि से मन और इन्द्रिय आदि से पहले दौड कर पहुंचने वाले की तरह है उस आत्मतत्व के इस तरह के निर्विकार होते हुए भी मातरि

द्वांतौजना मृत्यन्नेते नाऽऽत्मदहन: । तत्कीदृशमात्म तत्त्वमित्युच्य ते अनेजदिति अनेजद्नएजद् एजृकम्पने कम्पनं स्वावस्थाप्रच्युति स्तद्वर्जितं सर्वदैकरूप मित्यर्थ: एकमेकं सर्वभूतेषुमनस: संकल्प लक्षणाज्जवी योजववत्तरम् । कथंविरुद्धमुच्यते ध्रुवंनिश्चलमिदंमन सोजवीय इतिच

नैषदोष: निरूपाध्युपाधिम त्वेनोपपत्ते: तत्रनिरूपाधिके नस्वेनरूपेणोच्यते ऽनेजदेक मितिमनसोऽन्त: करणस्यसंकल्प विकल्पलक्षण त्वोपाधेरनु वर्त्तनादिहदेहस्थस्य मनसो ब्रह्मलोका दिदूरगमनं संकल्पेन क्षणमात्राद्भवती त्यतोमनसोजविष्ठत्व



श्वास सभ जीवोंकी गति देने वाला अन्तरिक्षचर वायु सूत्रात्म। जिस से सभ कार्य कारण प्रादुर्भूत होते हैं वह सभ जगत् का धारण कर्त्ता सभ संसार के अग्नि आदित्य पर्जन्य आदि के जलना पकाना प्रकाश वर्षा आदि सभ कामों का विभाग कर्त्ता है अथवा धारण कर्त्ता है जैसा लोगों का भी कथनहै राम संवारे सभ के काम श्रुति में और जगह भी कहा है उसी के डर से वायु चलता है सूर्य तपता है इत्यादि वह सभी सत्ता देने वाले चैतन्य रूप आत्मा के होने पर ही हो सकता है अन्यथा नित्य सर्वातिक्रान्त किसी का विषयभी कैसे हो इससे उसी पर कारण कार्यारोपसे स्वस्वरूप से प्रतीत होता हुआ उसको भी विषयकर रहा है यही इन सभ का वह प्रकाश कर रहा है १०

माध्व मत में अर्थ है कि वहएक हरि रूप परमात्मातत्व गति शून्य है अथवा किसी से डर कर कांपता नहीं क्यों कि उस के भय से सूर्य उदय होता है उस से डरता हुआ वायु चलता है इत्यादि श्रुति में लिखा है वेगवान् मन से भी वह ज्यादह

लोकप्रसिद्धम् । तस्मिन्मनसि ब्रह्मलोकादीन्द्रुतंगच्छति सति प्रथमं प्राप्त इव आत्मचैतन्याभासो गृह्यते ऽतो मनसो जवीय इत्याह नैन द्देवाश्चोतनाद्देवाश्चक्षुरादीनीन्द्रियाण्येनत्प्रकृतमात्मनं प्राप्तव न्तस्तेभ्यो मनो जवीयो मनो व्यापारव्यव हितत्वात् आभास-मात्रमप्यात्म नो नैव देवानां विषयी भवति यस्माज्जवा न्मन सोपि पूर्वमर्षत्पूर्वमेव गतम् व्योमवद्व्यापित्वात् सर्वव्यापितदा त्मतत्वं सर्वसंसारधर्मवर्जितं स्वेनानिरुपाधिकेनस्वरूपेणा विक्रिय मेव सदुपाधिकृताः सर्वाः संसारक्रिया अनुभवतीव विवेकिनां मूढा नामनेकमिव च प्रतिदेहं प्रत्यवभासते त्यं तदाह तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् ...

दौड़ने वाले की तरह अप्राप्य है क्योंकि मन अल्प वृति है वह अनन्त उत्तमोत्तम गुण से बडी महीमा वाला सर्वज्ञ इत्यादि अधिक वृत्ति गुण वाला है श्रुति में भी लिखा है कि उस को मन भी मनन नहीं कर सकता अथवा मन के जाने से दौडने वाले मन से भी वह ज्यादह दौडने वाले की तरह है इस से वह सर्व-व्यापक है यह सिद्ध हुआ अथवा मन का प्रेरक होने से एक दौडरहे को पीछे दौडने वाला जैसे दौडता ज्यादह वेगवान् कर देता है इसी तरह वह ज्यादह दौडने दुडाने वाला है याने अन्तर्यामि है जैसे द्वासुपर्णा श्रुति में लिखा है कि एक शरीर रूप वृक्ष में दो पक्षि रूप आत्मा और परमात्मा है जिस में एक जीव सुख दुःख भोक्ता है नभोक्ता हुआ स्वाद लेरहा दूसरा प्रेरक तमाशा देखने वाला बैठा है जैसे लोग भी कहते हैं कि राम झरोखे बैठ कर जग का मुजरले याने परमात्मा के स्वाद को खाता हो तो अनाशि रूप से शरण हो कर उस के देखे आनन्द का अनुभव राजा के सामने नाच देखने वाले नौकर की तरहदास

तोऽन्यानात्मविलक्षणान्म नोवागिन्द्रियप्रभृतीनन्यानत्ये त्यती त्यगच्छतीव इत्यर्थस्वयमेवइर्शयतितिष्ठदिति स्वयमविक्रियमेव सदित्यर्थः तस्मिन्नात्म तत्वेसति नित्यचैतन्य स्वभावे मातरिश्वा मातर्यन्तरिक्षे श्वयतिगच्छतीति मातरिश्वावायुःसर्वप्राणभृत्क्रिया त्मकोयदाश्रयाणि कार्यकरणजाता नियस्मिन्नोता निप्रोतानिचय स्सूत्रसंज्ञकं सर्वस्यजगतो विधारयितृसमातरिश्वाअपः कर्माणिप्रा णिनां चेष्टालक्षणानि अग्न्यादित्य पर्जन्यादीनां ज्वलनदहनप्र- काशा भिवर्षणादिलक्षणानिदातिविभजति इत्यर्थः धारयती तिवाभीषास्माद्वातः पवतइत्यादिश्रुतिभ्यः सर्वाहिकार्य कारणादि

वन कर लो (शङ्करादि मतमें इस भाषा आभाणक कासोंहंपक्ष में परमात्माके रोकयसे अनुभावानन्द होना अर्थहोगा) सएवसाधु कर्म कारयतीत्यादि श्रुति भी बताती है कि वह अच्छा बुरा जैसा जिसे बनाना चाहता है वैसा ही उस से कर्म कराताहै और देवता और सेवक भी उसी की महिमा को नहीं पासकते इसी गीता में भी देवयज्ञ करता देवता बनते मेरे यज्ञ से मुझे नीचे नीचे दर्जे नहीं लौटते सभ देवता का नमस्कार मुझे ही प्राप्त होता है।

इत्यादि कहा है इस में हेतु भी कहा कि वह तो सभ से पहले हुआ अथवा सभ में वाठ्याप्त हुआ और दौडने वाले से न प्राप्त होने वाली चीज को जैसा कोई दूसरा प्राप्त करल इस तरह से ज्ञेयवस्तु को जान लेताहै अथवा दौडते रहने पर भी और से जो अप्राप्य हो वह बैठा ही पाचुका है

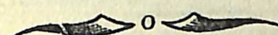
सभ जगह मौजूद होने से ही उसके प्राणादिक दास तुल्य वायूवादि सभकाम कररहे हैं अथवा उसके हुकम से प्राणधारीयों

दि विक्रियामित्य चैतन्यात्म स्वरूपेसर्वास्पदभूते सत्येवमव्ती त्यर्थः ४ । ९

विद्वांस इतिअविद्वत्वादिकमात्महत्व प्रयोजकमित्युक्तं तद्विपरी तानात्महनोविद्वांसोऽनासक्तास्ततप्रयोजकंचात्मतत्वंतत्किमित्या शङ्कतेतत्किमिति इत्याहेतितउपाध्यवच्छिन्न त्वेनकल्पितस्यैवावि दुषोवाच्यस्ययाथार्थ्येन विदुषाप्रति योगितया

वाधसामाना धिकरण्येन वाच्यस्वभानंनकूटस्थ लक्ष्यस्य सकलवाधवत् इति भावः

मनोऽव्यापार व्यवहितत्वा सर्वगतत्वेतद्भानवारणायहेतु



में काम चलता है जिस से पैदा हुए जी रहे हैं ऐसा और श्रुति में भी लिखा है याने सभ का पालक वही है अथवा वायु या प्राण उन की आज्ञानुंसार सभ को श्रद्धा से करने लायक भगव दाराधन भक्ति स्वाध्याय यज्ञ चित्त शुद्धि आदि को भक्ति प्रताप से कर देता है जैसा योग सूत्र में भी लिखी है कि चित्त वृति निरोध ईश्वर प्राणि धान से होता है और गीता में भी कहा है उस बुद्धि योग को देदेता हूं जिस से वो मुझे पा लेते हैं ११

रामानुज के मत में ऐसा अर्थ होगा कि वही विशिष्टा द्वितीय हरि तत्व चतुर्व्यूह नारायण एक ही वासुदेव तत्व है वासुदेव एक परमात्मा है वह कारण रूप हैं कि स्थूल अचिद्रूप प्रपञ्च कार्य का सूक्ष्म चिद् माया विशिष्टा द्वितीय वासुदेवरूप है बाकी संकर्षणादि कार्य रूप उसी के कहे हैं जैसे पहल मन्त्र का व्याख्या में खुलासा कर लिख आये हैं परन्तु चिदंश यद्यपि जीव पुण्य रूप ज्ञान विकार वाले प्रभाज्ञान गुण वाले नित्य हैं तथापि विशिष्टा द्वितीय परमात्मा का चिदंश तो नित्य अनन्त

अवभासहेतूना धिवर्जितत्वादितीतिभाव:सर्वोऽस्पदभूते इति सूत्रा त्मावायुरपि हिरण्यगर्भोऽपि यस्मिन्नधिष्ठाने ततस्तयासत्त् मा यिकंमायिक: कार्यमारो पयतिसर्वाधिष्ठान कूटस्थनित्य: सर्वा तिक्रान्त: कथंकस्यचिद्विषय: स्यादितिभाव: एतदौपनिष दीमनो वृतिरपि यत्रावरण भङ्गमात्रार्था नित्यप्रकाशनित्यप्रकाशको जनस्तंप्रकाशयेदिति भाव: १०

माध्वमते तद्धुरिरूपमेकं परमात्म तत्वमनेजद्गति शून्यं भीषास्माद्वात: पवतेभीषोदेतिसूर्य इत्युक्तेः सकलभीषकत्वेन स्वयं भीषकराहित्यान्निर्भय मितिवा तथामनस: वेगवतोऽपिजवीयो

गुण वाला सर्व व्यापक विकार रहित है प्राकृत अप्राकृत दोनों प्रकार के विकार या और परमात्मा शक्ति रूप अनन्त कल्याण गुण के कार्य हैं विशिष्ट में विकार इन से नहीं कहसकते जैसे पृथ्वी जल दो में गन्ध नही एक पृथ्वी में है ऐसे स्थूल दर्शियों की प्रतीति हैं और वेगवान् प्रद्युम्न नामक मन से भी वेगवान् याने ज्यादह शक्ति अर्थात कारण शक्ति मान् है क्यों कि इस मत के एक भी चतुर्व्यूहरूप प्रद्युम्नादि कार्यव्यूह का कारण परमात्मा वासुदेव माना है ।

इस वास्ते जिन का मन प्रद्युम्न होचुकाहै वही समाश्रित संस्कृत मन इस अपने कारण को पालें तो पालें असंस्कृत मन असमाश्रित भक्ति हीन अशरण तोकभी भी इसे नहीं पासकते उस को मन नहीं पहुंचसकता मन से ही वह देखा जाता है ऐसा अर्थ वाली 'तन्मनोमनुते,'मनसैवानुद्रष्टव्य: इन श्रुतियों का भी यही अर्थ है इस की पहुंच को और देवता और इसके जो उपासक नहीं पहुंचसकते क्योंकि यह सभ का कारण है

अनन्तकल्याणगुणगणमहिमत्वसर्वज्ञत्वादि स्वरूपरूपेण तन्मनमो नमनुते इत्यादि श्रुति भिर्मनोप्राप्य त्वेनबोधितम् यद्वासर्वव्या पकम् यद्वामनस पूरकत्वेनान्तर्या मित्वादिभिर्द्वासुपर्णे त्यादि- श्रुतिभिः सर्वत्रस्थित मितिबोधितम् अतएवसएवसाधुकर्मकारय तीत्युक्तम् देवा अन्येना अप्नुवत् तंसेन्द्रकाद्यास्यम हिमानमूदेवान्देव जो यान्तियान्तिमद्याजिनो ऽपिमाम् मांपूप्यन निवर्न्तेसर्वदेव नमस्कारः केशवंप्रतिगच्छती त्याद्युक्तिरप्येतन्मूलै वात्रहेतुमाह पूर्वमर्षत सर्वेभ्यः पूर्वजातत्वाद् गतत्वादितिवा तदात्मतत्वं बुद्धिविषये धावतो ऽप्यन्यान् अत्येतिअनयान तिक्रामति अन्ये

कारण कार्य को व्याप्त कर लेताहै कार्यको कारण नहीं व्याप्त कर सकता इसी वास्ते पुरुषसूक्त में भी लिखाहै कि पूर्णचौदह भुवन उसके एक पाद समझो तीन पाद इस का अमृतदिव्य कोटि का है याने प्राकृत अप्राकृत दोनों सृष्टि में प्राकत एक पाद है अप्राकृत दूसरा पाद है अपने दो पाद और भी है इस तरह से विशिष्टा द्वितीय संसार के अन्तर्गत भी और बाहर भी है और सभ जगह मौजूद भी और असमाश्रित दौड रहे याने उसकी खोजकर रहै भी जो जन उन से अप्राप्य है क्यों कि वह तो अनन्य भक्ति से ही लभ्य है।

अथवा दूसरे लोकान्तर में जाकर भी असमाश्रितउसे नही पायेंगे अथवा दौडने वालों से ऊपर दर्जे में ठहरने वाला याने सर्वव्यापक इस को भी समाश्रित के बगैर और नही पासकते उस के ही प्रेरणा पर या उस के ही डर से वायु आदि अपने २ कामों को या वायु औरों के कामों को चलाता है १२

भट्ट भास्कर मत में अर्थ है कि वह कूटस्थ एक भी मन

यान्यपि वान्यैर्जानातिअथवातिष्ठदपिधावतोऽन्यान त्येतियद्वा वद्भिः प्राप्यंतन्निष्ठदपि प्राप्तं व्यापकत्वाततिष्ठतितस्मिन्नपः कर्माणिवायुःसंपादयति तद्भयेनवाय्वादय:कर्मकरा वातस्मिन्नेव प्रेरयितरि शारीराणि कर्माणिप्राणः संपादयतिवोयेनजातानि जीवन्ति इति श्रुतेः

सकल जीविताधायकत्वात् यद्वाअपः श्रद्धाभक्ति संपाद्यान्यपि कर्माणिनितान्तनिर्मलत्वान्त तवनिरन्तरभगवदेकतानतालक्षणानि कर्माणिवायुः प्राणोवास्वायामादिभि स्तत्प्रेरित एवकरोति ईश्वरप्रणिधानाद्वेति योगसूत्रे ददामिबुद्धियोगंतंयेन

से भी वेगवान् है याने एक है मगर एक ही तो नहीं किन्तु भिन्ना भिन्न होने से वैसे। मन आदि रूप से वेगवान् भी वही भिन्ना भिन्न है यद्यपि वह सभका कारण होने से अभिन्नात्मा है तथापि कार्यरूप देवता भिन्न रूप है वह इस कारण दर्जे के भन्ना भिन्न को नही पहुंचसकते इस से सभ से पहलेही उन से भिन्न यह जानागया कारण रूप इस से भिन्ना भिन्न ही यह पहले हुआ इससे दौड रहे जीव मानो उसी के भेद हैं एक भी मैबहुत होऊं इसी इच्छा से उसी के बनाए हैं ऐसा और श्रुतिमें भी लिखा है फिर यह स्थित भी सर्वव्यापक उन से विलक्षणएक है इस तरह से उन भेदों से भिन्न स्थित स्वरूप से अभिन्न भी यह भिन्ना भिन्नहै उसीकी कृपासे वायु अपने कामको चलाताहै

निम्बादित्य के मत में ऐसा अर्थ होगा कि वह परमात्मतत्व वास्तव से सगुण भी रज्जु में सांप और उस के विकार के अभाव की तरह माया विकार प्रपञ्च के अभाव वाला है इस से एक याने अद्वितीय भी है इस से असंस्कृत मनसे भी अप्राप्य है

मामुपयान्तिते इति गीतायांचोक्तेः ११

रामानुजमते ऽपितदेव विशिष्टाद्वितीयं चतुर्व्यूहनारायण तत्वमेकम् तत्रवासुदेवएकः परमात्मा कारणरूपोविशिष्टसूक्ष्म चिदचिद्रूपमाया विशिष्ट कारणत्वात् नतुकेवलः सतुअनेजदेकनविकारशालि विशिष्टपरिणामे ऽपिसूक्ष्माचिदं शस्यैवपरिणाम गवेषणात् विशिष्टे ऽपिपृथिवीजलयोर्नगान्ध इतिवत्तद्भावात्तथामनआख्य प्रद्युम्नाऽजवी यस्तत्कारणत्वादेकोऽपिचतुर्व्यूहात्मा प्रद्युम्नादेः कार्यात्परएव वासुदेवाख्यः अतएवासंस्कृतमनसाऽप्राप्योवातमम नोवमनुतेइतिश्रुत्या मनसैवानुद्रष्टव्यइत्येतद्विरोधोनास्तीय पर

अथवा वेगवान् मन के वेग को भी माया द्वारा वही प्रेरणा कर्त्ता है इस से संकल्पित भेद करके माया से झूठा प्रतीय मान वेगादि भेद परमात्मा भी है याने उस सगुण एक ब्रह्म सत्ता के ऊपर माया से नाना भेद स्वप्नवत् विकार झूठे ही प्रतीयमान (है भी वही) होते हैं इस से विवर्त्त भिन्ना भिन्न उस का स्वरूप है परमार्थ से भी भिन्न ही प्रतीत होने वाले माया के प्रभाव से देवता लोग वास्तविक एक विवर्त्त भिन्न उस सर्वत्र स्थित रूप को नही पहुंच सकते यह तो उन से पहले भी वैसा ही विवर्त्त भावि भिन्न रूप एक होने से विवर्त्त भिन्ना भिन्न ही था और ऐसा जीवन्मुक्त केवल भेद के हटाने वाला रूप गोपियों तरह जुदाई के हटाने वाली परम भक्ति के बिना कोई भी पासकता नही एक भी वह सभ जगह दौड रहे नाना विषयों में जीव जो विवर्त्त भिन्नहैं उन को अति क्रमण कर रहा है उस विवर्त्त भिन्न अपने स्वरूप को अभिन्न रखता है

मात्मानैनमत्वंदेवा इन्द्रियाणि अन्येदेवास्तत्सेवकावाआप्नुवन्ति पूर्वमाध्ववदर्थः अत्रहेतु पूर्वमर्षद्वगतं पूर्वत्वेनसर्वतः कारणं हिकार्यं व्याप्नोतिनकार्यं कारण मितिवार्थः पादोस्यविश्वा भूतानित्रिपादस्यामृतं दिवीतिपुरुषसूक्तोः तिष्ठदेवसर्वत्रतत्वरमात्म तत्वमसमाश्रिताम त्यान्धावतो ऽप्यत्येति अर्थ् अन्यवन्तंतेनप्राप्यमित्यर्थः भक्त्यात्वनन्यया लभ्यइत्युक्तेः यद्वासर्वव्यापक त्वाद्धावतो ऽप्यतिक्रान्तं तिष्ठदपि दूरंगताअपि लोकान्तरे वानैनहप्राप्नुवन्तिसमाश्रितमन्तरातस्मिन्नेवपरयितरिवायुः कर्माणिकरो तिशेषार्थो माध्वमत वदत्रबोध्यः १२

केवल वैसे दीक्षितही उसे प्राप्त होसकतेहैं जिन्हे जुदाई झूठी भानहै उस गोपीकी तरह हृदयभक्ति शरण मन्त्रादिसेहो चुकी है उस विवर्त्त भिन्नमें ही वायु क्रिया कर रहा सभ कर्मों का फल उस झूठी जुदाई को हटाना ही समानाधि करण फल होगा इन की पुष्टि भक्ति है शुद्धा द्वितीय की पुष्टि २ भक्ति है इन मे विलक्षण है १४

वल्लभ मत में अर्थ है कि वह शुद्ध अद्वितीय एक चिन्मात्र है क्यों कि और आचार्य शक्ति शक्तिमान् का अभेद मानते हुए भी उस को न छोड कर विशिष्ट आदि शब्दों को बोलते हैं इस से वह लीला नामक अपने स्वरूप अपनी शक्ति से संसार विकार वाला भी उमसंसारका उत्पादक वही परिणामिहैं परन्तु सक्रियाभी अक्रियसगुण भी निर्गुण है केवल स्वरूपसे जवलीला दिखाना चाहे तो सगुणादि बन दिखादे जव चाहे तव निर्गुणादि स्वरूप बन जाता है इस से मन से भी जवीय वेगवान् की तरह अप्राप्य है सर्वव्यापक है अथवा प्रेरक है अथवा तद्रूप है अगर

भट्टभास्करमते तदनेजत् कूटस्थं परमात्म तत्वमेक मद्वितीयमग्निमनसः सकल्पलक्षणात् द्वैताद्वैतमेव अप्राप्ताश्चदेवा अपिकार्यात्मान:कारणरूपत्वे ऽपितद्भिन्नरूपेण पूर्वमपियत इद मभिन्नमेवतद्देवादिनांकारणमृतद्धावतोजीवान्स्वभेदान्स्वेनरूपेणभवद् भेदेनएकोऽहं बहुस्यामित्युक्ते स्तिष्टदेवा भेदात्सर्वत्रानत्येति आलकूस्यवर्तते ऽतस्वधावज्जीवादिवहुभेद भिन्नमपितिष्ठदेकं तस्मिन्नेव भिन्नाभिन्ने मातरि श्वाअपःकर्माणिदधातीति पूर्ववदर्थः १३

———— :०: ————

गोपियों की तरह तन मन धन आत्म समर्पण कर ब्रह्म संबन्ध रूप पुष्टि पुष्टि भक्ति नहीली तो देवताभी शरणमन्त्र रहित नही प्राप्त होतअथवा वह इन्द्रिय विषय नही अथवा उस के भक्त न होकर और देवता के भक्त भी उसे प्राप्त नही हुए वह सभ से पहले ही अप्राकृत गोलोक वासी लीलादह से प्रादुभूत हुआ अथवा मैं क्रीडा करूं इकले रमण नही होता इस से एक मैं बहुत रूप वनजाऊ ऐसा जानता भया और सभ विकार शील प्रपञ्च अपने अंशजीव आदि सभ से अपनी रमण की सामग्री से उत्कृष्ट है।

सर्वत्र स्थित होता हुआ अपनी लीला के विकार अपने आनन्द रमण के लिये बनाकर भी खुद अवि क्रिया है ऐसे शुद्धा द्वितीय में लीला वायु सूत्रात्मा सभ लौकिक कामों को और भगुवद् भजनादिकी को सपादन करता है

(शैव) मतमें अर्थ है कि शिव तत्व एक और निर्भयहै मनसे पहचान ही जासकता अथवा मनका भी प्रेरक है इस

निरञ्जादित्यमतेतदनेजत् वस्तुत एवैजदगुणमपिरज्जाविद्यभुजङ्गी यमर्वक्रियश्च क्रियारहितमेक मद्वितीयं मनसोजवीयो वेगवन्नरतद प्राप्यंनह्य संस्कृतेन मनमातत्प्राप्तुं शक्यम्तस्यापि पूरक सिति बातत्संकल्पित भेदेनपरमार्थमते नानादिसिद्धमाया विवर्त्तेन प्रतीयमानमेवैजत्
क्रियावद्विकारादि लक्षणम् देवाअपि नैनद्भिन्न तयास्थिताःपर मार्थतो विवर्त्तमान स्वरूपाञ्भेदम स्थितम्प्याप्नुवन् पूर्वंहिते भ्योजातमवगतंवा नापितेस्तदुपा सकैर्वाप्राप्यं विनाभागवताद् भक्तात् तत्तिष्ठदेकरवम भेदेनधावतोन्यान् विवर्त्तं भिन्नानन्त्ये तिजलादीनूदीक्षितमात्रप्राप्यं तस्मिन्नपोऽधिवर्त्तं भिन्नेअपःकर्मा

—— :o: ——

की सामर्थ को देवता नहीं पहुंच सकते अथवा और देवता के उपसक नहीं पासकते और वह अपनी समाधि में स्थित हो अपने२ कार्य में दौड़ रहे औरों से सभ से (देवजीव) आदियों से अधिक दर्जे पर है क्योंकि संकल्पमात्र से कार्य कर रहा है अथवा सर्व व्यापक है उसकी प्रेरणा से मातरिश्वावायुः सूत्रात्मा सभ कार्य कर रहा है अथवा वजरौली क्रिया आदि द्वारा उस को प्रेरणा सेप्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रतर्पण नाभितर्पण कुण्डगोलोद्भ वादि उत्तमोतम पारमार्थिक सांसारिक उभयथाश्रेष्ठ कर्मों से पुण्य को संपादन करता है १५

नकुलीश पाशुपत (शैवभेद) मतमें अर्थ है कि वह आतम तत्व विकार रहित और एक हैअथवा निर्भय आदि होने से किसी के कम्पाने लायक नहीं विकारि कारक| भय आदि दोष- यदि आयें तो वैसे विकारिकम्प्य सभ जगत् के उपादानवादि वल्लभादियों को हो जो तो केवल निमित्त मात्र वादि शैव है

संदप्रायतीत्यादि पूर्ववत् १४

बल्लभमते तच्छुद्धाद्वितीय मेकं चिन्मात्रं शक्तिशक्तिमतोर नपन्यतत्वाद् भेदाल्लीलयाशक्त्यासक्रियमपिभासमानमनेजदक्रियम् मनसोजवीयो वेगवद् प्राप्यत्वात्सर्वव्यापक त्वात्प्रेरकत्वात्तदात्म कत्वादगोचरत्वाद्वाएनद्देवाअपि अकृतसमर्पणतयाऽब्रह्मसंबन्धा अशरणानाप्नुवन्अर्थादिन्द्रियागोचरमूनाप्यन्यदेवास्तदक्ततावातत्प्राप्तिमइनुवते इतिवापूर्वं हिमवं

न्योऽवगतं सद्धितीपमिच्छत् एकाकीनरमते एकोहंबहु स्यामिति अवाबुध्यतवा तद्भावतोविकारशीलानन्यान् मणीयान

उनको यह कैसे होसकते हैं अथवा सभ पशु संज्ञक (दीक्षा रहित होने से अज्ञानि जीव) जीव गण का स्वामी पशुपति नाथ है उसे इराने वगैरह वाला कौन पशु होसकता है जीवत्व का हेतु मन है उसी से बद्ध मुक्त अपने को मानता है ।

उस मन से अगम्य है अथवा वह तो बद्धता आदि पशुवृति हीन स्वामी वाले पशुपति योग करने वाले दीक्षित लिङ्गार्चक मनुष्यों से ही प्राप्य है इस की पहुंच की इन्द्रिय अथवा और देवता भक्त या और देवता और जीव नही पहुंचते सभ का वह कारण लिङ्ग रूप ही है अथवा सभ पशुमात्र का स्वामी है उस भूत (जगत्) कारण को धीर (शास्त्रदीक्षा भक्ति संपन्न भक्ति वाले) प्राप्त हो सकतेहैं ऐसा और श्रुतिमें भी लिखा इस से भक्ति रहित पाशबद्धों को वह नही मिल सकता पाशमुक्त स्वयं शिवों का ही वह मिल सकता है इसी वास्ते किसी कवि ने कहा कि बडा आश्चर्य मैने दक्षिण देश की ओर एक देखा कि पशुपतिसे विमुख वगैर रोग के दग्धाङ्गमृगमय गोदि

त्येति उत्कर्षणवर्त्तते तेभ्यास्तिष्ठद् विक्रियंशुद्धाद्वितीयंस्वरमणमा त्राय' एकाकीनरमत इतिश्रुतः सर्गकरत्वात्

तस्मिन्नेवं भूतशुद्धाद्वितीये लीला मातरिश्वा कर्माण्यपः संपादयति लौकिकानि भगवद्भजनादिरूपाणि चेतिभावः १५

शैवमते शिवतत्वमेक मनेजन्निर्भयं मनसोजवीयो ऽगम्यंप्रेरक मप्राप्यंवा एनद्देवानाप्नुवन् सामर्थ्येन इन्द्रियाविषयमन्य देवतदुपासकाद्य प्राप्यंवा तिष्ठत्तत्व मनाधिश्यनेव धावतः स्वकार्येषु अन्यानत्येतिअतिक्रान्तं संकल्पमात्रेण सर्वकार्यकरत्वा सर्वव्यापकत्वाद्वा तस्मिन्प्रेरयित रिमातरिश्वावायुःसर्वाणिकर्मा

चंदनादि के सींग वाले पशु मैंने देखे विष्वादि सभ से ही पहले हुआ विष्वादि संहृति काल में भी वही सृष्टि कारण और पालक होगा जो सर्व लिङ्गानु गत एक शिवतत्व हैं अथवा जहां भी पहुंचना है वहां परलोकादि में भी वही तत्व पहले है क्यों कि वह सभ जगह मौजूद है सभ जगह दौडने वालों से भी बढ़ बढ़कर दौडते की तरह नहीं पाया जा सकता याने अन्य मात्रा श्रित या उस के अनाश्रित उसे कभी भी पहुंच नहीं सकते उसी के आश्रय पर प्राण सभ का जीवन चला रहा है स्वामी बिनु ख कोई नहीं जी सकता उसी स्वामी के अनुग्रह से सभ का जीवन बीत रहा है १७

स्वतन्त्र शिव को निमितकारण मानने में वैषम्य (किसी को छोटा किसी को बड़ा मानने से समदृष्टि न होना) और नैर्घृण्य (दुःखी को पैदा कर उस को दुःख देते समय दया न होना) दोष आयेंगे इस लिये और माहेश्वर भेद अदृष्ट को (पूर्वजन्म के पुण्य पाप को) सहायक लेकर एक ईश्वर शिव

णि दधाति संपादयति इत्यादिपूर्ववत् प्राणोवाव जरीत्यादिद्वारा ब्रह्मरन्ध्रतर्पणना भिहोमकुण्डगोलोद्भवादिपुरुष तमैहिकपा मार्थिकसत्कर्माणिसंपादयति १६

माहेश्वराणां नकुलीशपा शुपतानांमते तदेकमात्र तत्वम मेजदविक्रियंअकम्प्यवो निमित्तकारणमात्रत्वात्सकलप श्वाख्यजी व स्वामित्वाद्वा मनसोजीवत्वकार काज्जवीयोऽगम्यं पशुवृतिवि हीनैः सस्वामिकैः पशुपति यागपरायणै रेवावाप्य त्वादितिधाने नद्देवा इन्द्रियाणि जीवाऽन्यदेव परायणात्तद्देवा वाआप्नुवन् सकलदेवहेतु त्वात्स्वामित्वाद्वातंभूतयोनिंपरि पश्यन्तिधीरा इत्यु

निमित्तकरण मानते हैं उन के मत में उसी का स्वरूप बताना इस श्रुति का अर्थ होगा जैसे वह ईश्वर शिव नहीचलता याने जैसे वायु रहित देशमें दीप अचल हो वैसेही असंप्रज्ञात समाधि में से अचल (कूटस्थ) है मन का भी प्रेरक अन्तर्यामी है देवता लोग भी उसी की माया से ही प्रकृति परिणाम देहादि विशिष्ट हैं इसी से उन सभ से भी पहले कारणरूप से जाना है जैसे देवी भागवत पञ्चम स्कन्ध में अर्द्धनारीश्वर शिव से अर्द्धनारीश्वरलक्ष्मी नारायण प्रादुर्भूत लिख उनसे आगे ब्रह्म विष्णुरुद्रआदि पैदा कर भागवतादि की एकवाक्यता की सृष्टि प्रक्रिया लिखी है इस से वह तिष्ठत्याने निश्चल समाधि में है इसी से वह शिव तत्व इतस्ततःवृत्ति वाले ब्रह्मा विष्णु पर्यंन्त देवता योगआदि से भी और लोकान्तर आदि गामि विक्षिप्त चित जीवों से भी विलक्षण हैअथवा आगे ही दौडा है जैसे लिङ्ग पुराण में कथा आतीहै कि सती के पीछेदौडे जब आगेदौडती है तबभी आगे से हो लिङ्ग उन का स्थित है ।

क्तेस्त द्भक्ति विहीनानां तद्लभ्यत्वाद्त एवकश्चित्कविः चित्रं दक्षिणदेशेवंहवःपशवोमयादृष्टा द्विपदोमृण्मय शृङ्गाः-पशुपतिवि मुखा अरोगदग्धाङ्गाइत्याहयतोहि पूर्वमेवावगतं विष्णवाद्युत्पा दकत्वात्तत्संहारे चतन्मायाद्वारक सृष्टि तत्सत्ताया एवशास्त्रसं मतत्वाद्वा जातंवासर्वपूर्वं प्राप्यदेशेवा प्रथममेव प्राप्तमतएव तिष्ठत सर्वत्रधावतोऽप्यन्यानत्येति अतिक्रम्यवर्त्तते अन्यस्वामि कैरस्वामिकैरलभ्यइतिवातस्मिन्नेवापःकर्माणिमातरिश्वाप्राणोद् धातिजीवितादिलक्षणानितत्स्वाम्यधीनमेवजीवितसर्वस्यतद्विमुख स्यकुतोनपिकर्षयेत्जीवित मपिकालरूपःस्सनूकोहि स्वामिविमुखो

अथवा पीछे दौड रहे शक्सों से आगे दौड जाताहै जैसे भागवत में भी लिखा है भस्मासुर राक्षस ने तपश्चर्या की महादेव भोले नाथ शिवजी झट ही दिगम्बर मूर्ति प्रत्यक्ष सामने खडे होगये साथ पार्वती जी भी थी वरंब्रूही कह बैठे तो लो दुष्ट जन ने वैसे ही काम करने हुए जो दुष्ट हों उस ने कहा मैं जिस के सिर पर हाथ रखूं वह भस्म ही होजाय महाराज शिव इस पर भी अनुग्रह कर इस बात को स्वीकार किये तब तो दुष्ट का चित्त और बिगडा उस ने कहा कि वर तो मिल ही गया साथ ही परीक्षा हो जायेगी साथ ही स्त्री मिल जायगी हो नहो तोइसी नांगे साधु के सिर पर हाथ रखदूं यह मन में सोच कर हाथ रखने लगा कि शिवजी आगे २ भागने लगे जैसा यहां वेद ने कहा कि वे दौडने वालों से आगे २ भी भागने लगता है तब तो विष्णुरूप स्वयं ही होकर भगवान् ने अपने शिवरूप को पागल बता पीछा छुडालिया वैसेभगवान् मनुष्य लिङ्ग प्रत्यक्षकराते अवतार धारण करते है और दुष्टों को विमुख देख कर भाग

जीवेत इत्यादिरर्थः १७

अन्येषां माहेश्वराणां मते स्वतन्त्रशिवकारण तथा विषस्य नि घृण्यदोषापत्त्या ऽदृष्टादि साहाय्येना द्वयईशएको हेतुस्तत्स्व रूपमाहानया श्रुत्यात व्याख्यायते अनेजदनिवात दीपवदचलंम नसो जवीयोवेगवत्तर पूरयितारं एनद्देवास्तदीय मायाजनित प्रकृति परिणामी अतएवतेभ्यो ऽपिपूर्वमर्षद्वगतो देवीभागवता दौअहं नारीश्वरशिवाद्विष्णुरित्युक्तिरितितिएनन्नप्राप्नुवन्तच्छिवत स्वंधावतोऽन्यानत्येतिनिश्चलसमा धिस्थत्वात्तदाहतिष्ठदितिएते मलिङ्गपुराणोयसतीपृष्ठधावनेनाग्रेमरश्चिङ्गस्यापनमपिअरद्ध

जाते है उन की वुद्धि के आगे भी नही आसकते यह पौराणिक कथा भी यहां सूचनकसदी इस का अभिप्राय नास्तिक भी तपः करे तो भगवान् प्रसन्न तो हो जाय पर फल दान कोटि और उन की बुद्धि का तुलना करना तो जरूरी है।

उसी शिव के आश्रय असाध्य भी काम वायु कर देता है अथवा अदृष्ट परमातमा की कृपा हीसे गर्भ धारण उस के पालन रसादि परिणाम आदि करता है अथवा उस में समाधि से सभ काम वायु सिद्ध करता है अथवा वायवीय देह वाले भूतादि की सिद्धि करता है अथवा अपनी भक्ति को अपने ही लायकी देख सूत्रात्मा वायु द्वारा बढाता है।

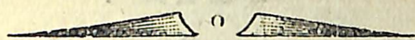
प्रत्यभिज्ञावादि शांभव मत में अर्थ है कि प्रत्यभिज्ञा के लाये शिव शक्ति दो रूप भी नित्य संवित् एक ही तत्व है इसी से किसी स्पन्द से उस को भय नही याने साधक कोटि में भी वो निर्भय होजाता है जिस को मैं वही शिव हूं ऐसा प्रत्यक्ष अपने स्वरूप को याद कर रहा हूं।

व्यङ्ग्यम् यद्वाधावतोऽन्यान् भस्मासुरादि राक्षसानत्येतिकांश्चि दयोग्यान्वस्तुतः सर्वान्सुरान्स्वभक्तिशक्तिदानाभिप्राया भावेन अग्रे धावत्यतोऽर्वाऽपिबुद्धौनारोहति कदाचिदित्यर्थक भस्मासुराख्यायिका चागूहंव्यज्यते तस्मिन्नेवायोऽसाध्यानि कर्माणि मातरिश्वावायुः प्राणाख्योवासमाधिना सिद्धिलक्षणानिचयायवीय पिशाचादि शरीरायततानि कर्माणि दधातितदधीनानिकरोतितद्भक्तं संपादयति श्रुतिभावः १८

१८९॰प्रत्यभिज्ञा वादिनांमते प्रत्यभिज्ञेयं तत्वमविदाख्य मेकमेनेजत् अकम्प्यामलएवतथापिशक्त्यात्मकःसोहमितिप्रत्य

मन से भी ज्यादह दौडन वाला याने शीघ्र सिद्ध है क्यों कि ऐसी निष्ठा तीव्र हो जाने से शीघ्र संकल्प सिद्ध होजाना शास्त्रों में लिखा है अथवा मन से भी अप्राप्य है क्यों कि यह तो मति से अतीत (जो समझ में आना मुश्किल होजाय ऐसा) महिमा वाला होजाताहै इस प्रत्यभिज्ञेय को और विष्ण्वादिन्यून सिद्ध वाले देवता और केवल उनके भक्त इस की पहुंच कोनही पहुंच सकते क्यों किवह सभ देवताओं से पहले जाना हुआ है यद्यपि किसी पुराण में सृष्टी विष्णु से बताई किसी में शिव से किसी में दुर्गा से तथापि सभ की अगर एक वाक्यता करो तो विष्णु सृष्टि शिव से बादहै यही मान कर विरोध परिहार होता है क्योंकि विष्णु से रुद्र होता है ब्रह्मा द्वारा यह तो विष्णु सृष्टिवादि पुराणों में मिलता है मगर सदा शिव विष्णु से पैदा कही नही शिववादियों में शिव से विष्णु ब्रह्मा रुद्र की सृष्टि लिखी है उस को मानने से अधिकं प्रविष्टं नतद्धानिः ज्यादह पड जाने से उस की हानि नही इस न्याय से विष्णु

भिजानन्निर्भय सर्वत: अभिलषितोपास्त्युक्ते: साधककोटावपि मनसोजवो: तीव्रसिद्धि: संकल्पविन्दुत्वात्मनसोऽविद्या अतएवलि-ङ्गादिनागर्भधारणादिकंतत्पूर्णिलवायु: कुण्डगोलक द्वाहरणाना भिहोम ब्रह्मन्धूतर्पणादिकंसंपादयतिअतएवलज्जा गुल्फादिना शिवपूजायैरामादयो रामेश्वरस्थापन शिवार्चादि कपाषाणादौ एवकलवन्त उत्तरकाण्ड रामायणादौ ४२ सर्गे सीतामादायहस्तेन मधुमैरेयकं शुचिपाय यामासकाकुत्स्थ: शचीमिवपुरन्दर: इत्याद्यु त्तयाभागवते मधुवन भङ्गलीला रासमण्डलादि लेखोपलम्भेन उभौमध्वा सक्षीबौ उभौचन्दन चर्चितौएकपर्यङ्कशयिनौ दृष्टौ



सृष्टिआदि अल्पा वयव दृष्टि से कह उस से आगे पर्यालोचन से शिव सृष्टि मानने से तीनो की एक वाक्यता हुई शिव सृष्टि के अवान्तर सृष्टि दूसरे पुराण ने बताई ऐसा मानने में विरोध हट जाता है (यह भी शिव मत से मन्त्रार्थ व्याख्यान को लिखा मगर देवी भागवतकी एक वाक्यताके लिये देवी सृष्टि मान कर उस के अवान्तर शिव उसके अवान्तर बिष्णुको सृष्टि मानना ही सब से अविरुद्ध मत है।

इसी से और भी इस का अर्थ है कि उस शिव का भृत्य भिक्षाला भी और संअपूधर्ष्य (दबाने लायक) नही न प्राप्त हो सकता है (उस की बरोबरी भी नही हो सकती) यम भी वैरों को देख भाग जाता है उन को कुछ भी कहने को चित्त भी भी नही करता दासवत् भागता रहता है जैसा मार्कण्डेय को चिरंजीव बनाने की कथा में आया है यम को देख १२ वर्ष की अवस्था में मार्कण्डेय लिङ्ग पकड़ बैठा शिवजी उसी में से प्रादुर्भूत हुए और यम को मारे त्रिशूलों के भगा दिया इस

नकेशवार्जुना विविप्रायश्चित्त प्रकरणीय ५२ श्लो केअरिष्टा सवभिन्नम्यं सुरलोऽपि भिन्नमिति विवेचनप्रस्तावे मिताक्षरा यां लिखितेन महाभारत श्लोकेनमद्यचन्दन द्रौपदीसहायार्जुन कृष्णशयना व्यर्थापत्त्याक्षिप्ता रामकृष्णादेर्महती भक्तिभैरवी पर्दष्ट शक्तिसंगमचक्रार्चनवीरवन्दनादिप्रति प्रतीयतेअतएवात दनुरोध्यर्थोत्रवेदस्य ॥।

अप्राप्यमत्यतिसहिम शालित्वात एनत्नान्ये देवाविषयवा दयस्तत्सेवका वाआप्नुवन् पूर्वं हितेभ्यः सर्वज्योद्वेभ्योऽर्षत् सदा शिवविष्णवादि क्रमेण सृष्टिस्थित्यादि संस्थितः सकलैकवाक्यत

पुरातन कथा को यहां भी सूचन किया वहदौड रहे (स्पन्द वाले होने से) स्पन्द रूप कार्य प्रपञ्च मात्र को अतिक्रमण कर रहा है उस कोटि का नही क्यों कियह तो कारण रूप नित्य संविन्मात्र है (प्रत्यभिज्ञावाद में चित् का पर्याय संवित् है परन्तु त्रिगुण भी संसार दशा में सर्व सिद्ध है इसी के भेद पर्यालोचन करने में भेद भेदा भेद विवर्त्त भेदा भेद प्रपञ्च विवर्त्ता भेद शुद्धाद्वैत सभीमत निकल जातेहैं समीक्षक भी अपनी कोटि निकाल लेता है स्पन्द एक लीला परिणाम है जिस से प्रपञ्च हुआ और प्रपञ्च भी सभी नही माया मात्र कहता है) इसी से वह नित्य होने से कूटस्थ है स्पन्द मात्र से देवता होते है इसी से वह सामर्थ्य बगैरहोनेसे उसेनही पहुंच सकते उसीके स्पन्द मात्र उद्यम नाम भैरव से (शिव सूत्र में उद्यमो भैरवः उद्यम को भैरव कहते हैं लिखा है) डरते हुए उस के प्रेरित वायुः आदि स्पन्द भी सभ कामों को धारण संपादन कररहे है उसी के डर से वायु चलता है इत्यादि श्रुति मे भी कहा है उसी उद्यम स्पन्द विशिष्ट

तथालाभात्नहिविष्णोः शिवोत्पत्तिःक्कापिशिवावान्तर सृष्टौ विष्णुब्रह्मरुद्रा इति क्रमेहिनाधिकं प्रविष्टं

तद्धानिरिति भवतिविरोध परिहारोनवैपरीत्ये अतएवतत्प्रत्यभिज्ञा ताऽप्यन्यैरप्यधर्ष्यो ऽप्राप्तश्चयमो ऽपिसा दृशानन्य शिवभक्तंनोक्तवान्पलायि तश्चमार्कण्डेयादि वदितिश्रू यते तदप्यनेना गूढव्यङ्ग्यम् तद्धावतस्स्पन्दतः स्पन्दमात्रशरीरं कार्यंजातंमत्येतिकारणत्वात् नित्यसंविन्मात्रत्वात अतएवततिष्ठत् नित्यत्वात्नचदेवाःस्पन्दप्रभवः सामर्थ्यादितआप्नु वन्एनत्तस्मि न्नेवमातरिश्वावायुः अपःकर्माणि दधातिभीषास्माद्वातःपवते

भैरव परमात्मा का पर्याय शब्द होता है जैसे नारायण भैरव शिव भैरव इत्यादि ।

शाक्त मत में अर्थ होसकता है कि देवी मायावच्छिन्न चैतन्य को कहते हैं वह परमात्म तत्व एक ही है और किसी के कम्पाने के योग्य नही और मन से वेगवान् याने संकल्प से ही सृष्टि करलेता है जैसा श्रुति में लिखा है कि इकला रमण नही होसकता इसी से उस ने शिव विष्णु ब्रह्मा रुद्रादि सृष्टि रचली इसी से देवता उस की शक्ति को नही पहुंच सकते है क्योंकि वह तो सृष्टि काल में सभ से पहले अवतार लेती हुई वह स्थिति रूप है जैसे चण्डी में भी लिखा स्थिति रूप वह पालन के वक्त होजाती है इसी से सभ का मालिक बन कर सभ की रक्षा करते वक्त उसके भय मारे सभी देवता इधर उधर दौडते उस के काम रक्षा कातरीका करते हैं उन सभ से वह बिलक्षण रहती है क्योंकि सभ का मालिक है अथवा उस के नाम भजनों पर उपासक नौकरादि की तरह

इतिश्रुते ग्रहमाहयभैरव भयातत्तामध्यौ देवसकलकार्ये सिद्धे-
रिति भावः १९

शाक्तमतेदेवीएवैका मायावच्छिन्न चिद्रूपंतदेवैकं तत्वमनेज
त् अविकम्पयम् मनसोजवीयः स्वसंकल्पमात्रेण एकाकीनरमते
इतिश्रुतेः सदाशिवादि सृष्टिरचनात् एतत्अतएवदेवा नाप्नुवन्
यतोहिसर्जन समयेसर्वेभ्यः पूर्वमवतीर्णम् तिष्ठद्देवतदेकतत्वम्
स्थितिरूपाच पालनेइतिचण्डी स्मृतेर्धावतो ऽन्यान् तद्भयात्
स्कार्यैऽस्येति अतिक्रम्य वर्त्ततेसर्वेश्वरत्वात् तदुपारुढफलधावतो
देवान्यानत्ये त्रिशूलंशूलीपाशमादाय पाशीचक्रचक्रीदण्ड

—— :o: ——

भागने वाले और देवों से वह बढकर है जैसे अभियुक्त कहते हैं
शूली महादेवभी शूल हाथ लिये और यमराज भी पाश को हाथ
में लिये विष्णु चक्रको हाथमें लिये दण्ड कोदण्ड पाणि भैरवभी
हाथ में लेकर नौकरों की तरह आगे पीछे दौडते रहते हैं जो
दुर्गा २ ऐसा नामको भी भजने वाले उनको रक्षा के लिये उसी
जगन्माता परमात्म तत्व के प्रेरक होते और सभ देवता
कुत्ते की तरह काम करने को त्यार रहते हैं सेवा वृत्ति को भी
कुत्ते तुल्य माना जाता है जैसे नीति वालों ने सेवाश्व वृत्ति
राख्याता सेवा कुत्ते की वृत्ति के तुल्य है यही कहा है वही
यहां देवता और अतिशय जगन्माता का वेद भगवान् दिखाते हैं
अथवा उस जगन्माता के हुकम होते ही कुत्तों को साथ रखने
वाले भैरवनाथ खुद ही उस काम को झटवजाने को त्यार
रहते हैं अथवा उस माता का प्रेरणा होने में शीघ्र ही सभ काम
होजाते हैं वह स्थिति रूपा हुई जगन्माता जगत् को आनन्द देने
वाली जगत की रक्षाकर रहीहै यही यहां वेद मन्त्रार्थ होगा २०

मादाय दण्डीधावत्यग्रेपृष्ठतश्चैवपार्श्वे दुर्गादुर्गावादिनोरक्षणाये स्तु
वतेःतस्मिन्पूरयितरितश्चेश्चैवअपः कार्याणिदधति सर्वोदेवःसस्य
स्वान्तःताहवर्योद्भ्राभ्राभैरवस्तत्पुत्री मातरितस्मिन् ततवेपूरकेत
दाज्ञया सर्वकार्यं संपादयतिशुभाशुभानिदधातीतिवासकलसमग्र
निर्मन्त्रजरि च्छिन्नतद्भजनपालनानन्द दातृतदेवैकंतत्वमिति
भाव २० सहित्यमते समष्ट्यभिप्रायाश्चिदभिप्रायाद्वाअद्भुतमेवा
हकृतीनारायणो रसमितिभावाद्वातदे कमखण्डा नन्दचिन्मात्र
स्वद्रूपात्मतत्वं नापुलिङ्गशब्दतः रसइतिअनेजदकम्प्यं स्वरहि
तानुपलब्धेः एषएवानन्दयाति इतिश्रुतेः

साहित्य मत में अर्थ है कि वह अखण्ड चिद्रूप आनन्दा-
त्मक परमात्मतत्व जो रस कहा जाता है एक ही है वस्तुतः सर्वा
नुगत एक है अथवा चिद्रूप से एक ही है वृति उपाधि के भेद
से सत्व समुद्रेक भेद भिन्न स्थायि भाव भेद को प्राप्त हुआ
आठ आदि अष्ट मूर्ति महादेवादि के तुल्य कहा जाता है अथवा
वही एकहीहै जैसा नारायण पण्डित ने कहा है इसमें चमत्कार
ही सार सब जगह अनुभूत होता है वह चमत्कार सार अद्भुत
ही सब जगह रसहै वहएकही नानाहै पुरुष भेदेन भेदभी उसक
औपाधिक है ऐसा यहां श्रुति का तात्पर्य है और वह हटाने
योग्य भी नही उस रस का स्वरूप ही जीव है श्रुतिमें भी लिखा
है वही परमात्मा सब को आनन्द देने वाला है।
सुख दुःखा श्रयजीवका स्वरूप भी उसके बिनानही अथवा
सब का जीवन वही है और मन से भी अत्यन्त वेगवान् है।
क्यों कि विभाव (रामादि शृङ्गारादि रस के कारण) अनुभाव
(उन के कार्यंतदुन्मुखत्वादि व्यभिचारि (रोमाञ्चआदि अस्व

मनसोंजवी योवेगवत् विभावानुभाव व्यभिचारिक्रमेण जायमान मप्यास्वादात्मकं तत्संयोगेणा थवाशुभावित्वाद् संलक्ष्यक्रम व्यङ्गयम् देवाइवकेचन प्राक्तनपुण्यशा लिनएमदा प्नुवन् तदितरालभ्यम् पूर्वं हिएवमर्षत् गच्छितिस्मतान् तद्भावतो ऽन्यान् केषुचिद्विभावादिष्वनुक्तेष्वपिअत्ये तिअतिक्रान्तं स्ततोपि भवति आक्षेपादिनाते षामास्वाद्यते एवयद्वाधावतों वृतिभेदान त्ये ति निश्चलमानसा स्वद्यमृतिष्ठतस्थायि रूपंतस्मिन्रसनिमित्ते सतिमातरिश्वावायुः स्वादीयकार्याण्यपो जलतरङ्गादिवाद्य वाप्यानि चकार्याणि संपादयतित्यर्थः दधातिआचरनिवा तथाश

काल वृति) इन सभ के वाचक शब्द या अनुकरण देखने से पैदा हुई वृति के परस्पर मिश्रण से अवयव और समुदायरूपेण एक विलक्षण पूर्ववृतियों के साथ मेलसे पैदा हुए की तरह रस याने शब्दसे रसः ऐसा पुलिङ्ग होताहै मालूम पडताहै वहइस क्रमकोनप्रतीत कराकर बहुत शीघ्र ही होजाता है इससे वह और नाबहा वेगवान् कहा है असंलक्ष्य क्रम व्यङ्गय इस को प्राप्त करने वाले भी बडे पुण्य शालि देवता लोगही हरि भजन कीर्तनादि में अनुभव करते हैं और काष्ठ कुड्य तुल्य मनुष्यों से कहां प्राप्त हो सकताहै क्यों कि वह पहले देवताओं कोहीनार दादिकों को प्राप्त हुआ इस के प्रकाशक नाटक के अङ्गीत्यादि के आचार्य नारद और हनुमान ही सभ से बढ़ कर माने गये हैं और सभी विभावानु भाव व्यभिचारि मिल कररस होताहै ऐसे ही भरत मुनि भी लिखते हैं परन्तु कहीं उन में से कुछ दौड भी जायें यानेन भी कहा हो तो भी आक्षेप से उस को लाभ कर रसप्रादुर्भूतहोजाता उसकी तरह दौडतानहीं ऐसा वैलक्षण्य

ह्वान् कारयतिबाद्यभेदेषु अयमतिशयितोहरिकीर्त्तनादिरसःकैश्च नैवोपलभ्य इतिभावः २१

अत्रेदंसमीक्ष्यं सकलेश्वाक्य तयादेवी एवंदेवार्थ वादिनां मते प्रधानतरा आयातिअनन्य भक्तिकल्पे इतरेषासहिं कागति रित्यनन्यभक्तिवादःकथमेवसंगच्छेतकिंचभेदाभेदादिसंहानुव्याको पःपृथक्त्वेसर्वेषां तस्मादेवमाचार्याणामभिप्रायोत्रावगम्यतेयतस्य तुत्यादसमयेशक्तिरवतीर्णापृथममित्येव भवतुतथापि सार्वदिकं तदेवैकंनिर्गुणपर्यवसायि धर्मज्ञानवैरोग्यैश्वर्य शुद्धाद्वितीयतत्वंहरि भैरवात्मकत्र्यभिधेयंना नाध्यानैर्नाना रूपात्मकंसकलसिद्धरव

ही यहां अतिक्रम लियागया है भरत मुनि भी ऐसा वेदार्थ मानते हैं अथवा वृत्ति भेद दौडते हैं उन से विलक्षण है याने योगी की तरह चित्त वृत्तिनिरोधहोने से प्रतीत होताहै अनिश्चल मनसे नही वेद्यान्तर स्पर्शशून्य ब्रह्म स्वादस छो दररस और उन हरि कीर्तन विषयों सेअतिरिक्त विषय के स्पर्श से भी शून्य शुष्क संन्यासि ब्रह्मा स्वाद काष्ठानन्द का बडा भाई आदि कोमल सहृदयानन्द रूप है वह स्थायि रूपही रससाना जाता है अन्य नही जैसा करुण पोषक शृङ्गारनी विविसूसनःकरः इसमें दिया हुआ नही वहां शृङ्गार रस नही कहाता करुण ही होता है उसी रस के निमित्त वायु षड्ज आदि स्वरों को कण्ठ आदि में पैदा करने वाला जलतरङ्गवीणाआदि वाद्य साध्य कामों को चलाता है यानें ऐसा परमात्मा हरि भजनादि में प्राप्त होने वाला रस बडे पुण्य शालि भक्ति परायण मनुष्योंसे हो प्राप्य है ऐसा परमात्मा का अलौकिक स्वरूप बड़ा दुर्लभ है यह वेद भगवान् का आशय है २१

स्वछन्दत्वात्म कसोहंप्रत्यभिज्ञया स्वानन्यमेवज्ञेयं भजनीयंच वाच्ये प्रतियोगितया अनेजत् अकम्प्यं कूटस्थत्वात् मनसोजवी योमनसोवृत्तिविशेषाद्ध्यानात्मकादेवस्वकल्पितकार्याणि साधयत्यणिमाद्यष्टसिद्धयोत्मक कार्यसिद्धि: एनद्देवानाप्नुवनूयत:पूर्वमेर्षोऽर्षद्वगतमृतहिपरस्याविद्धं षादिभिर्निगुणतत्वंनजानन्तिएक नित्याधिकारिणस्ते स्वाधिकारसम्बन्धत्वात्अतएवचनाप्नुवन्तिपद्धा देवाध्यान मात्रात्मकत्वान्नाप्नुवन् ठ्याप्नुवन् विशेषणमात्रत्वात विशेष्य धर्मिरूपत्वात धर्मात्पूर्वमपि अर्थादवगममृत्त्यर्षस्ततिष्ठ

अब यहां समीक्षकका विचार है कि सृष्टि प्रक्रिया तो सभ सभ पुराणों की एक वाक्यता से देवी से चलती है यही ठीक है जैसे देवी से सदा शिव उस से विष्णु आगे ब्रह्मा रुद्रादि परन्तु अपनी २ कुतकेी गलपटडी कीतरह एक ही परमात्माके किसी अवतार को बड़ा मान कर उसी के दूसरे अवतारको गाली देने वाली आज कल की अनन्य भक्ति मान कर एक २ अर्थ पर पक्के होने वाले की क्या कुछ समझ मानी जाय वह तो एक दफा परमात्मा को अच्छा कहकर उस के और रूपों को सैंकड़ों गाली बकते हुए निर्लज्ज अनन्य भक्त शब्द के बजाये महा घोर नास्तिक निन्दक राक्षस कंसादि के तुल्य जितना भी कहे जायें उतना ही थोडा है और इन के एक के चक्कर में पड़ कर भेद अभेद के धक्के खाते सभी नास्तिक वानर की कोटि में पड़ जायेंगे इस से आज कल के समझदारों के दिमाग कीड़ें के शब्दों को न सुन कर सभ आचार्य मुनि महर्षि भेद अभेदादि उपदेश अनन्य भक्ति बताने वालों का अभिप्राय ऐसा मानना चाहिये सृष्टिपैदा करनेके वक्त देवी पहले होकर वहीपरमात्म

तधावतोऽन्यान् वृत्तिभेदानत्येतिनिः संकल्पंभव तिसंतुष्टंभवति कृतार्थं भवाप्येतत्तत्वम् यद्वातिष्टद् धावतोऽत्येति विशेष्यतया सर्वव्यापक त्वादित्यर्थःतस्मिन्मातरिश्वदधात्यपःकर्माणिवायवाद् योपितद्धीनाभवन्तियद्वामातरिपूरिकायांप्रधानभूतायामन्यःश्वा तत्सहचरितः सर्वाणिसाधयतिकार्याणिमात् ध्यानवृत्ति प्राधान्य ममसर्वदेवदेवात्मकनिर्गुणपर्यवसायिशुद्धाद्वितियेतत्वेइतिभावः२२

———— :o: ————

शिव का नक्शा बदल वही नट राज विष्णु बन कर ब्रह्मादि बना मगर सर्वदा एक उस का सूक्ष्म रूप है जो तब भी था और अब भी है और होगा भी जो आकाशादि सूक्ष्म तम पदार्थों के भी कारणादि रूप से स्थित है सो मायांऽशसेभिन्न रूप देखोगे सो निर्गुण ही प्रतीत पायेगा वही मायावच्छिन्न परमात्म तत्व निर्गुण निर्विशेष पर्यवसायि शुद्धाद्वितीय एकतत्व हरि भैरवात्मा नाना रूप नाना ध्यान नाना नाम से स्तुति किया सब अपने अवतारों में स्तुति पूजा के ही लायक है वही धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य शुद्धाद्वितीय सोहं मैं ऐसा (प्रत्यभिज्ञा) साक्षात् याद किया गया परमात्मानन्य भक्तिसे भजना चाहिये ही यहां एकम् इस वेद का अर्थ है।

लौकिक मिथ्या व्यापार शासक मिथ्या क्रिया ही मिथ्या भक्ति मिथ्या सुखोपभोग मनुष्यादि दैवी लोकान्तर का अनुभव कराकर मिथ्यामायात्मिनिर्विशेषपर्यवसानरूप जीवन्मुक्ति भक्ति दशाकी की परम काष्ठा का अनुभव कराने वाले विदेह मुक्त्यात्मा बनाने वाली हैं इसी आशय से शङ्कराचार्य तक सब का विरोध परिहार हो जाता है अनेजत्प्यने वह उसी निर्विशेष रूप से कूटस्थ नित्य है धर्मज्ञान वैराग्यैश्वर्य शुद्धा द्वयरूप

तदेजतितन्नैजातितद् दूरेतद्वदन्तिके।
तदन्तरास्य सर्वतदुसर्वस्यषा वाह्यत ॥:

तदेजति ईतिव्यत्ययो बहुलमिति परस्मैपदमुत्रै—शेषिक मते तत्परमात्म तत्वनेजतिअन्तर्भावितण्यर्थ: भीषास्माद्वात:पवते भीषादेतिसूर्य: इतिश्रुते: तन्नैजतिस्वयंके नाप्यकम्पयत्वाऽ१ तद्यथादूरेतथा ऽन्तिकेऽपि व्यापकत्वत् इतिभाव:

ननुअनेजत् तद्वावतोन्यान त्येतीतिश्रुते: पुनरुक्तिर्नै षदोष आत्मपरमात्मतत्वस्यातिगहन त्वाद्दार्ढ्यार्थपुनरुक्तेरदोषाद्भ्यासा र्थं त्वादतएवतत्वम सीतिनवकृत्वउक्तम् एकस्मिन्नेव प्रकरणेआ वृत्तिरसकृदुपदे शादितिव्यास सूत्रमाहतदनारित्वात् किञ्चतदेज दितितत्रनोक्तमृतेनसाहचर्यादप्यपुनरुक्तमप्रकारभेदात् किञ्चएज तइतिएजस्पन्दस्य असौएजस्त कुतिसामर्थ्य शालीतदिवाचरति

---

१ मन से भी वेगवान् याने मन: संकल्पानुसार अणिमा द्यष्टसिद्धि के काम कर दिखाने वाला इस तरह के निर्विशेषपर्यव सा यिशुद्धा द्वय मे देवताओं की मति भी चक्कर खाजाती है जिस में वह तो उन से पहले की चीज है वे तो देवता परस्पर विद्वेषादि में भरे हैं खाली शुद्धाद्वय परमात्माके प्रसाद आतिशक्ष सिद्ध मात्र के अधिकार के दिमाक के हरदि की गुठिया लेकर पसारी बन वैठे हैं उस निर्विशेष पर्यवसायि शुद्धा द्वितीयके जानने के अधिकारि जरूर होंगे तदुपर्यपिबादरायण: स भवात् देवता भी अधिकारिहो सकते हैं ऐसा व्यास जी कहते है अधिकार मदान्ध है, एवं कुछ और समझते नहीं इसी से प्रमाद में आये गिर भी पड़ते हैं।

करते हुए उन की बुद्धि से भी भाग जाते हैं इत्यादि आध्यात्मिक और मित्र संमितोपदेश भी सूचन कर दिये।

इसी परमात्मा के आश्रय पर असाध्य भी काम वायुः प्राण समाधि से कर सकता है अथवा इस के उपदिष्ट मन्त्र काण्डों से साधित पिशाचादि मूर्त्ति वायु भूत खेला दिखा देता असाध्य भी काम को कर देता है लिङ्गादि से गर्भ धारणादि नाभि होम कुण्ड गोलका हरण ब्रह्म रन्ध्र तर्पणादि हर एक काम कर सकता है इसी से लज्जा से गुप्ति के मारे रामादिने भी पाषाण रामेश्वरादि स्थापन पूजनादि दिखा या उत्तर काण्ड रामायण ४२ सर्गने सीता मादायहस्तेन मधुमैरेयकं शुचिशयया मासकाकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः सीताको साथ ले हाथ से (शराब पिलाया और मांसानिचसुमृष्टानि फला निवि विधा निच अच्छे २ मांस और फल खिलाये ऐसे २ श्लोकों से कृष्णादि की गोपी लीला और उभौमध्वासवक्षीवौउभौचन्दनचर्चितौ एकपर्यङ्कशयिनौ दृष्टौमि केशवार्जुनौ इत्यादि महा भारत के प्रमाण मिताक्षरा में सुरा नाम शराब और मद्य आसव का नहीं इसव्याख्या में दिये प्रायश्चित्ताध्याय २५३ श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट शराबसेवीरचन्दनादि की पूजाकर द्रौपदीके साथ कृष्णार्जुन का शक्ति संगम लिखा देखने से भैरवी चक्रार्चन ही पुराणा है वही यहां वेद ने सूचन किया इससे आगे प्रत्य भिज्ञा वादी मत वाले अपने मत से अर्थ कर सकते हैं कि जिसकी सोहं प्रत्यभिज्ञा (वो ही हम हैं ऐसा पुराणी बात का प्रत्यक्ष याद करना है चित् स्वरूप परमात्मा) एक है और वही रास विलत्व (प्रकृति निष्ठ पुरुष शिव शक्त्यात्मक अकम्प्यहै इसी से भैरवादि पद्धति

सोहं भैरवोहं शिवोहं ऐसी प्रत्यभिज्ञा करते हुए सिद्ध पुरुष भावना के परिपाक से सकल सिद्धि युक्त हुए देवी गणसे आनन्द लेतेहुए क्रम से निर्भय होय राम कृष्णादि की तरह शक्ति संगम पद्धति पूजादि साधक कोटि में भी किसी तरह नही डरते जैसे छिन्न मस्तास्तोत्र में आया है अभिलषित परस्त्री योग पूजा परोहं बहुविधजन भावारम्भ संभावितोहं पशु जन विरतोहं भैरवी संस्थितोहं गुरुचरण परोहं भैरवोहं शिवोहम् उत्तमोत्तम अपनी इच्छा के अनुकूल दिव्य स्त्री से सिद्ध दशा में संयोग मात्र पूजा अथवा अपनी इच्छा शास्त्र सम्मति का बताई सधवा विधवा कुमार्यादि शक्ति से योग बजरौजीलीक्रिया वगैरह पूजा पद्धत्यंनुसार शक्ति शिवार्चन पूर्वक शक्ति संगम मन्त्र जप ध्यान देवता पूजा में लगा हुआ बहुत प्रकार के मनुष्यों की कुचेष्टा वगैरह पामर निन्दक नास्तिक वेदबाह्य शिश्नोदर परायण (जैसे आजकल विधवा सधवा नियोगनाम कुवैश्याकी तरह अनगिनत पति के साथ व्यभिचारि लोगों की) निन्दा आदि सुनता भी अथवा अपने शास्त्र मार्ग को लोकों की बुद्धि में अल्प समझ कर बहुत प्रकार से अपने दिव्य वीर भावों को गुप्त करने वाले मनुष्य भाव के प्रारम्भको कृष्णादिवत् दिखाता हुआ पशुअदीक्षित शास्त्र रहस्यान भिज्ञजनों से विमुख हुआ भैरवी शक्ति पर स्थित हुआ (मन्त्र जप की समाप्ति में स्तोत्र पाठ करता शक्ति संगम कर रहा अथवा भैरवी पद्धति पर चल रहा मैं भैरव हूं ।

अथवा ध्यान मात्र देवता उस परमात्म स्वरूप को व्याप्त नही कर सकते वह तो धर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्य विशिष्ट माया

वच्छिन्न चिद्रूप परमात्मा के विशेषण रूप अंश मात्र है चिद्रूप
धर्मितो धर्म से पहले ही जाना जायगा यहरूप कूटस्थ है इसी
से उस सर्व व्यापक धर्मि अंश तक वृत्ति प्रवाह से जो संप्रज्ञात
मधुमतिका दिभूमिक। नन्द अनुभव करता असंप्रज्ञा तसमाधिमें
स्थित हुआ निषेध कर सभ से पहली भूमिकाओं से निः संकल्प
हो जाता है याने ऐसे परमात्मा को जान मान ध्यान भक्ति
करने से कृतकृत्य हो जाता है क्यों कि जब तक विशेषण विशि
ष्टां शवृति प्रवाह है तब तक फलरूप उसकी भक्ति या परिणस्म
में सुखानुभव भोग संप्रज्ञा तसमाधि में भी असं प्रज्ञा तसमाधि
और परिणाम में मुक्ति दोनो हाथ लड्डू धर्म में लगो तो
भक्ति धर्मि में लगो तो मुक्ति *

अथवा तिष्ठत् विशेष्य रूप सर्व व्यापक वह सब से अति
क्रमण कर रहा है वाय्वादि भीकाम करने में उसके आधीन हो
जाते हैं अथवा जगदम्बा की प्रेरणा होने पर इस अद्वितीयरूप
परमात्मा चित्त के भैरव काम सभ करदेते हैं २२ ॥



तन्नातस्मिनापुरूषो जीववाद् एजतिकम्पते तेजश्विनोंनदो वायवन्हेः सर्वभुजोयथेति स्मृतेर्महतामयुक्ताच रितमपिकृष्णादी नांदृष्टश्चातदनुकृतिर्नजीवे नाल्पज्ञेनासमर्थेना श्चयेति इतिवेदः कृष्णगाथामैजुंनादि व्यभिचारात्मकनियोगादिकंभैरवीचक्रार्चन कल्पीयेंतरीत्याग्रहेरूत्तेः स्मारयन्नयुक्तमितिवदन्ति इतिध्येयम् तद्धावतश्त्युक्तं प्राकृतत्रहेतु माहव्यापक त्वंतद्दूरेतद्वदन्ति केअल

वैशेषिक मत में इस का अर्थ ऐसा है कि वह परमात्म तत्व सभके डराने वाला है क्यों कि उसके भय से वायु आदि सभ चलते हैं ऐसा और श्रुतिमें भी लिखा है यानी परमात्मा साधारण कारण कार्य मात्र का है राजा ज्ञा की तरह और उस को कम्पाने वाला कोई नही सर्वेश्वर होने से उस के उपर किसी की प्रबल नित्येच्छादि नही दूरान्तिकादि बुद्धि उसमें नही कालिका व्याप्य वृत्ति देशिका व्याप्य वृत्ति पदार्थों में वह हो सकती है वह– तो सर्व व्यापकहै याने सकल मूर्तिद्रव्य संयोगि है उसका संयोग दूरान्तिक (समय) सभी के साथ तुल्य ही है इसमें कोई शङ्का करे कि पीछे भी तोअनेजत और तद्धावतो ऽन्यान त्येति इन से यही अर्थ कहा था फिर दुबारा कहने में पुनरुक्ति दोष होगा तो उस का उत्तर यह है कि गौत्तम जी भी व्याख्यानकरते हैं कि अनर्थक अभ्यासहै यहअभ्यासका फल दहहै किआत्म परमात्म तत्व अति दुरवगाह है इसमें एकदफा कहनेसे अज्ञान और विपरीत ज्ञानसंशय आदि पड़ने किसंभावनाहै इससे पुन,पुनःकहनेसे जैसेयाथातथ्य निश्चयदृढहो वैसेही दृढसंस्कार पड़नेसे जन्मजन्मान्तराभ्यासका पाक यथार्थ होताहै वैसे स्मृति दृढ होती है और जगह भी तत्वमसि एक ही प्रकरण

तम्यत्वंदूर्लंक्ष्यत्व:तथास्त्र नुगम्य त्वात्तद्दूदन्तिके इतियार्थ दूरा
र्न्तिक संयोगित्वहेतुमाह तदन्तरस्येनिअन्त: सर्वस्यद्वातुपर्णोत्येक
वाक्यतयाऽक्त त्वेन स्थितत्वात वाह्यतोऽपि-
कर्तृत्वात अदृष्टभोग्य संपादनाय यद्वापूार्थनैषायद्भगवनूस्वंका
मर्थ्यत:हेतत परमात्मतत्व सर्वस्यतदन्त: मवंजीववृत्ति
इतियावत आस्यबाह्यकृत आद्यादित्वात द्वितीयार्थेतस्मि: बाह्यं
आस्येस्थापयितु मयोग्वमव।स्यं पापंम्यदरी कुरुखराडुयेत्यर्थ: १०

में नो दफा कहा है व्यास जो भी कहते हैं कि ततवाभ्यास आवृति नही छोडनी इसी वास्ते कि मनन रूप आवृत्ति पुन:पुन: होती रहे और यह भी उत्तर है कि वहां दूसरों के उडाने वाला सर्वेश्वर इस अर्थ का तदेजति यह शब्द नही कहा उस के हाथ यहां नैजति कहने से विशिष्टार्थ विशिष्टशब्द का भेद होता है तो शब्द पुनरुक्ति अर्थ पुनरुक्ति दोनो प्रकार का पुनरुक्ति दोष नड़ जाता है ।

अथवा यहां राजति शब्द में परस्मैपद है पहले यद्यपि व्यत्यय कर छान्दस होने से आत्मने पदका परस्मैपद कर लिया परन्तु परस्मैपद ही की उपत्ति करनी उचित है उसी रीति से एजनाम जीव का होगा क्यों कि परमात्मा धीन होने से उसे उसका भय है उसकी तरह अनुकरण करने वाला परमात्मा होगा जैसे रामादि अवतार धार मनुष्यलीला भगवान् करता है यह इतिहासादि में प्रसिद्ध ही है इससे यहां वेदसूचन करता है कि परमात्मा में मनुष्यधर्म नही परन्तु अवतार कर उसी तरह काम करता है और तत्रा उसका पुरुष जीव एजति डरता है याने उसके अनुकरण करने से डरना चाहिये याने भगवान् राम

गौत्रमम ते योगीश्व ोजीव: परमात्मरूप: सन्नेजतिएजति तदधीनोजीव: यतस्तद्दूरे दूरवर्त्ति सामर्थ्यंतोधिकम् उच्चकोटि इतियावत्तद्वदवियत्रात्मकल्पादन्यकल्पाभावेनसामर्थ्यहीनत्वा-दन्तिके नीचकोटौ सर्वस्यान्तरास्यबाह्यतश्चेतिएतदभिज्ञत्वाद्योगमहिम्नासर्वस्ययथा—

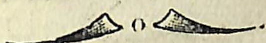
यमेव मेइत्युक्तएनदधी नंममत्तवंमने नशरण्येन ममसर्वसिद्धिरितिगम्यते आश्रयइतिचाध्याहारात्सर्वानिधकत्वात्तथात्रज्ञेयमृतद्वा

लीलादि करते थे और अर्जुनादि द्रौपदि के पास पाञ्ञो जाते थे कुन्ती ने सूर्यादि देवता से पैदा किये इत्यादि गाथा शास्त्र में आती है यद्यपि इस बात को और मनुष्यों की तरह व्यभि-चार नही समझा जा सकता एक तो वह देव लीला थी दूसरा संभावना हो सकती है कि वह भैरवो पदिष्ट यज्ञ पूजा पद्धति का ही अनुसरण करते थे जिस में बजाय पाप शब्द के दण्डभोगना पड़ता है प्रत्युतमहा पुण्य जनक ऐहिक पार लौकि काम्य सुखादि स्वर्गादि फलजनक मानना पड़ता है तथापि अगर ऐसा ही वैरागियों के हठ स फर्ज किया जाय कि वह लुच्चों की तरह व्यभिचार नियोग शब्दों से जिसे कहें वही बदफैली करते थे तो भी मनुष्यों को उस का अनुकरण नही करना चाहिये यही यहां वेद भगवान् कहते है भागवत में शुकदेवजी का भी यही परीक्षित के परमात्मा ने मनुष्यों के बिगाड़ने वाला व्यभिचार क्यों किया इसप्रश्न का जवाबहै कि तेजस्वि पुरुषोंको दोष नही लगता जैसा वह्नि में सभ अच्छा बुरा दिया जाय वह भस्म ही कर जाती है याने परमातमा को पाप संसर्ग नही मनुष्य ही पुण्य पाप का अधिकारी है उन का अनुकरण करना मनुष्य का

वतइत्युक्तं व्यापकत्वंविशदयति इतिवा भावः २ ॥

उभयोच्छिष्ट तार्किकमते वैशषिक वदर्थः ३ ।

दयानन्दमते तदेजति परमात्मतत्वं मयाह्रष्टोजीवः किमयं करिष्यति तन्नैजतिजीवः स्वतन्त्ररन् करोतितद्दूरेपरमात्मत त्वनकश्चनमांपश्यतिइतिमत्वाकरोत्यकर्तव्यमपिसतु परमात्मात दूदन्तिके समीपएव पश्यतिशुभा शुभमित्यर्थःननुकथंनकर्ताभोक्ता परतात्मा सहिसर्वान्तर इति शङ्कांवारयति यथासर्वस्यान्त



मूर्खता से अपने आप पापमें फंसनाहै वह नही बिगाडते बिगाड ना मनुष्यका अपने हाथहै और वह तोभक्ति कारड का उपदेश करतेहैं इससे उन का यह वैरागि सम्मतमार्ग नहीं यहतो गोकी स्तुति भागवतआदिसे स्फुट प्रतीत होताहै कि वहभैरव पद्धति से चलते थे जो मनुष्य को भी पुण्य जनक याग माना गया है तो तुम्हारी व्यभिचार शङ्का करना प्रत्युत पाप जनक है इस अर्थ में उत्तर भागका संबन्धनही है किन्तु तद्वावतः ऐसा पहले सर्वव्यापक कहाथा उसमें हेतु है कि दूरान्तिको भय देशसंयोगि त्वात् याने दूर और समीप दोनों देशी क्रिया के लिये उसका साधारण कारण परमात्मा दोनों देशके साथसंयोगि मानाजाता है अथवा संयोगि होने से अत्यन्त समीप भी वह दूरही समझो (क्यों कि आत्मा अपने का ही मनः संयोग प्रत्यक्ष करता है परमात्मा इस से दुलंक्ष्यहै शास्त्र मात्र गम्य उसेउपनिषत् कहती है अनुमानादि भी उसी के सहारे चलते हैं अन्तिक सबन्ध हेतु यह है कि शरीरान्तः संयोगित्वात शरीरके क्रिया के लियेउसका साधारण कारण परमात्माका शरीरके भीतरभी संयोग मानना चाहिये इस से वह समीप है यह सिद्ध हो ा है और श्रुति में

स्तथाबाह्यनो ऽपिसर्वस्यपद्मपत्र मिवाऽम्भसः संभोजकत्वेनान्त स्थितोऽपि प्रारब्धविपाक समये(सुख दुःख)कर्मजादृष्टजभोजयति कर्तृत्वेबाह्यतो भवतिइत्यर्थः संपादयितुंशक्यते ४।

अत्र इदं समीक्ष्य जीवः कर्तृत्वेस्वतन्त्रो भोक्तृत्वेइश्वराधीन इतिस्वीकृतंदयानन्देनतेनायमर्थःकृतोऽस्माभिःपरंकर्तृत्वेस्वातन्त्र्य यदिजीवस्यस्यादकर्तास्यादीश्वरः नत्वेवंजीवद्वारैवजीवक्रियायांत स्यकर्तृत्वेनसर्वकर्तृत्वस्वीकारात्कारकाणां स्वस्वक्रियायां स्वात

भी कहाहै द्वासुपर्णासुयुजा एकवृक्षरूप शरीरमें आत्मा परमात्मा दोनो यानि सभ जीवों का और परमात्मा का शरीर के साथ संयोग तुल्य है दोनों न्याय मत में व्यापक है दूरता में हेतु है कि तदुसर्वस्य बाह्यतः सर्व शरीरबहिः संयोगित्वात् यानि सर्वशरीरों के बाहिर संयोगि होनेसे अथवा इतना चतुर्थ पाद प्रार्थना है कि कि हे भगवान् सर्वरूप सबजीव से मुंहसे कहा न जासकने वाला यानि पाप उस को दूर करो १

गौतम मत में अर्थहै कि योगीश्वर जीव विशेष बडे भारी पुण्य के प्रभावसे सभ से अधिक सामर्थ्य ऐश्वर्य वाला परमात्मा जो गौतम सूत्र के तत्कारित्वात्सूत्र के व्याख्यान में वात्स्यायनने लिखा है वह किसी से डरने रुकने वाला नही अप्रतिहत शक्ति ही है तो डरन रुकने वाला जीव है उस से क्या कि वह उस के अधीन हैवह परमात्मा जो दूसरे सभ से सामर्थ्य से अधिक है औरआत्मत्व जीवत्वरूपसे उसके तुल्यभीहै औरजीवतो अन्तिक में सामर्थ्यसे नीच कोटिमें है परमात्मा तो योगकी महिमासे इस जीवके भीतर बाहिर की भी सभ बात जानने वाला सर्वज्ञ और शरण्य सभ का वही आश्रय है अथवा सर्वव्यापक है २

तन्त्रयेऽपिपरशुश्छिनत्तीतिवत्पशुनाछिनत्ति इतिचस्वातन्त्र्यमपि कारकाणामस्तीतिशरीरक्रियया:कर्तृत्वेस्वातन्त्र्येऽपि प्रयोजकापेक्षायांपारतन्त्र्य मस्त्येवसएवसधिवत्यादिश्रुतेश्चेतिकारयिताभोजयिताच पूजादिसद्धर्माणां सुखदु:खादिफलस्यचजगद्गुरु:परमात्मैव स्थितिल योद्‍भवकृत पूज्यश्चेतिसनातन: पन्थाएवयुक्त:कर्त्तापिन भेक्ते त्याशयेनार्थो ऽपिपूर्वोक्तोयोज्य: कर्मष्ट्वेतास्य स्थानेकार

———:o:———

उभयोच्छिष्ट तार्किक मत में वैशेषिक मत के तुल्यही अर्थ है वे गौत्तम वाला जीव विशेष परमात्मा नही मानते हैं ३

दयानन्द के वेद बहिर्भूत सप्तम दर्शन के अनुरोधसे यह अर्थ होसकता है कि वह परमात्मा तो डरता है कि मैने जीव बना तो दिया कहीं कुछ उत्पात न कर वैठे परन्तु जीव तो स्वतंत्र अपने करने में और परमात्माकी अधीनता तो मानता नहीं वह नही डरता जो चाहता है स्वतन्त्र हुआ करवैठता है (क्यों कि वह उस वक्त दयानन्द के लिखे नियोग देवता निन्दा आदि)महा घोर २ पाप करने वक्त समझताहै कि वह परमात्मा तो बहुत दूर है परलोक में मरकर उस को यम मूर्ति के पास जाना होगा पञ्जाबी भाषा में कहे हैं कन्ध ओले परदेस भिन्नि के पार नदेखो चोज परदेश के तुल्य है कौन जाने आगे की बातें मुझे कोई देखने रोकने वाला तो है हीनही परन्तु परमात्मा तो सर्व व्यापक है (मूर्ति में जैसे है जिस को वह निन्दा करताहै वैसे वह जहा खडा है उस जमीन पर भी है वह तो सभ देखता है यह भुगाता है उस पाप के फल को (जितना नियोग ज्यादह उतनी राड ज्यादह) फल भोगने में दयानन्द के मत में जीव परतन्त्र है कोई शङ्का करे कि परमात्मा अगर सभजगह मौजूद

प्रेसियोऽयंःसएवार्थः ५

सांख्यमते तत्पूकृतितवान्तः करणादितत्वम् एजतिपरिणमते नानाविक्रियां प्राप्नोतितन्ना पुरुषरूपतत्वम् तेनतत्संयुक्तत्वादेज तिइवगौण तद्धर्मारोपाद्वस्तुतोनै जतिनिर्विकारस सङ्गोऽयंपुरुष इति संवादात तद्दूरेअंस गत्वात्पूकृति संयोगस्यापितेन सहव क्तुमशक्यताअतआहतद्वन्तिके ऽपिपूकृतिसाक्षी प्यस्यावर्जनीय

है तो कर्त्ता भोक्ता भी क्यों नही दृष्टा की तरह माना जायतो इस का उत्तर है कि देखता है वह सभ के भीतर है परन्तु जैसे कमल के पत्तेके ऊपर जलका विन्दु हो वह पत्रके साथ चिपट ता नही इसी तरह देखता तो रहता है परन्तु भुगाय और पापों को कर्त्ता देख कर्त्ता भोक्ता बतनेके वक्त नही तब बाहिर की तरह नही फसता ४

इस की समीक्षा ब्रैकट देते हुए उन के मत का उन के लेख मुताबिक तत्व जाहिर होने से खुद ही पोल खुल जायगा यह समझते जाहिर की गई लक्षणा आदि अर्थ करने में क्लेश दयानन्द क अपने किये से कुछ कमती ही हैं परन्तु जीव स्वतन्त्र है कर्त्ता तो फिर कर्त्ता नही यह मानना भी जो ठीक समझदारों के अक़ल के बाहिर है परमात्मा तो सभ का कर्त्ता दयानन्द मानता है तो जीव क्रिया का कर्त्ता नही यह कितनी समझ की बात होगी यह खुद समझिये अगर परमात्मा और जीव दोनों उन क्रिया के कर्त्ता माने जायें तो क्या क्रिया में स्वातन्त्र्य कभी जीव का हट जायेगा और कर्त्ता होने से अपना स्वातन्त्र्य नही यह तो स्वतन्त्रः कर्त्ता सूत्र के आगे कौमुदी याअष्टाध्यायी जिनने नहीपढी यानहीसुनी यानसमझी

र्वैनो भयोर्विभु त्वात्प्रकृत्यै वतद्धर्मापत्याचेतनत्वाच्चिच्छायाप-
त्या संयुक्तत्वबद्धत्वादि व्यपदेशस्यापि आरोपितत्वात् तदेवदर्श
यति व्यापकत्वंचास्य षाट्कौशिकादिः चरस्याचरस्य चान्तर्बाह्यतः
प्रतिबिम्बादिविकारादि इतिभावः ६

सांख्यविज्ञान भिक्षुमते तन्नाएजति प्रतिबिम्बरूपंचितएज
तिवेदान्ति नस्तद्धर्मधर्मिप्रतिबिम्बस्वीकारात तत्प्रकृतितत्वंव्याप

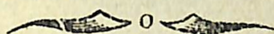
बा याद नहीं उन बालकों की बात है अपनी २ क्रिया में सभ
कारक स्वतन्त्र ही होते हैं प्रधान क्रिया की अपेक्षा वही परतन्त्र
होते हैं स्वतन्त्रःकर्त्ता सूत्र का भी अगर अर्थ आता हो तो इस
में कोई सन्देह नही होसकता देवदत्त जब परशु से लकड़ी
काटता है तो लकड़ी के ऊपर पडकर उसे फाडना यह परशु का
खुद काम है उस में वह स्वतन्त्र है प्रेरणा वहां गिरने का हेतु
गिराना क्रिया देवदत्त की है उस में परशु परतन्त्र है जब
गिराने की तर्फ खयाल छौडकर गिर कर लकडी फाडना इतनी
क्रिया की तरफ खयाल कर कहा जाय तो परशु श्छिनत्ति ऐसा
कर्मकर्तृ प्रयोग होता है भाषा की ओर देखो वह कह देते हैं
वाह २ यह तो चकू बड़ा साफ हैं यह तो कलम खुद
बखुद काटता जाता है तो क्या चकू चलाने वालेके परतन्त्र नही
बावाजी के चेले इसी तरह कितने भी स्वतन्त्र बनें परमात्माके
परतन्त्र जबरदस्ती अकल दौडानेवालेबना डालेंगे दया नन्दभीतो
सभ का कर्त्ता ईश्वर मानता हैतो जरूर मूर्ति पूजादि अच्छे
और नियोग विधवा विवहादि बुरे काममें स्वतन्त्र और परमा-
त्मा पेक्षया पारतन्त्र्य है यही सएव साधु कर्म कारयतिय मुन्नि
नीषति सएवा साधु कर्म कारयतिय मधोनि नीषति वही अच्छा

कत्वे नकल्येना समीक्ष्यत्वात् प्रतिबिम्बत्वं तद्वदन्तिकं तत्प्रकृतितत्वमाधारं दर्पणस्थानीय मस्यतद्वत् तथासदन्तिके एवान्तःकरणवृत्तित्वात् तदेवस्फुटयति तत्प्रतिबिम्बरूप मन्तास्यसर्वस्यचतुर्विधस्यवञ्चलमत्रअन्तश्चसर्वस्य प्रकृतित्वमुग्द्वासमष्ट्यन्तःकरणावच्छिन्नब्रह्मादि नैजति ऐश्वर्यवजीवस्वात्तदेवव्यष्ट्यन्तःकरणावच्छिन्ननैजतितद्दूरेउच्चकोटिस्थसमष्टिमत्अन्तिकेऽन्तिकव्यष्टिमत

काम कराता है (सनातनपूजादि करने वालों को) जिन को धार्मिक कोटि में अच्छे फलों से युक्त करना चाहता है वही बुरा काम कराता है (जन्म जन्मान्तरसे बुराईमें लगे नियोगादि महा घोर २ पापों के इकठा करने वालों को) जिन को वो बुरे खोटे फल (मृत्यु विवाह से विधवा होने पर राण्ड बढती ही जायें ऐसे को) दिखाना भुगाना चाहता है ऐसा श्रुत्यन्तर के विरोध से दुष्ट भी परतन्त्र होय मूर्ति शक्ति पूजादि शास्त्र विहितकामों पर श्रद्धा रख कर उत्तमोतम वैसे धार्मिक प्रबर होना ऐसी ही सनातन पद्धति चाहिये तो अब ब्रेकटसको साथ मिलाकर अर्थ ऐसा एक सनातन वालों को चटनी बनाकर दिखाओ कि परमात्मा तो डरता रहता है कि मेरा बनाया जीव कहीं दयानन्दकी अकलसे अकलभी संदूकमें बंदकर विधवा विवाह नियोग देवता पितर निन्दा उन का ध्यान मात्रका भी सत्कार नकरना वैदिक स्मार्त्त सभी प्रकार के शक्ति पूजान्त यज्ञ कर्मों को कुकर्म बासी बताः कर वेद वाह्य नास्तिक बना चार्वाकों की तरह अग्निहोत्रा तीन वेदतिलक धारण भस्म रमाना मूर्खपुरुषार्थ हीन पोपोंका काम है इत्यादि बताना इत्यादि महाघोर २ पाप करनेलग जायें परन्तु वे तो स्वतन्त्र अपने कोमान कर नही डरते नैजति

तदन्तरस्य शरीरिणश्च तुर्विधस्य प्रत्येकंबाह्यतश्च सर्वस्यकस्य
वच्छिन्न मितिप्रतिविम्बद्वयमाह सांख्यतत्त्वार्थं इतिध्येयम् १

योगमते तदेजतिवन्निसरूपत्वमेतिनसंप्रज्ञात समाध्यन्तम
विविनाशित्वात् नैजतितद्सं प्रज्ञातसमाधिस्थं निवातदीप तुल्य
मितियावत् तद्दूरेदूरंदर्शित्वादि सिद्धिसंपादकत्वा त्समाधिपरि
पाकस्य तद्वत् वृतिमत्सारूप्येन भासमानमन्तिके समीपेतत्रहेतु



वैसे समझते हैं कि कौन देखता है पंजाबी भाषा में कहा है
एजग मिठा अगलाजग किनडिठा यहीस्थान अच्छाव नाकरसुख
भोगो भाई बहिनके साथ किसीके भी नियोग नाम रखकरव्यभि-
चार करलो स्वामी दयानन्दके धर्म शास्त्रमें लोपापकही लिखा
नही जन्मान्तर में भोग का विपाक तो उसके यहां पोपों के
गपोड़े हैं चार्वक का प्रमाण भी उन्ही से मिलता है कि भस्मी
भूत देह फिर कहां आता जाता है स्वामी जी भी इसी वास्ते
परलोक कहीं नही यही लिखगये कोई इस लोक केफायदे के
बगैर परलोक के काम का पुण्य तो कहीं एक अक्षर मात्र भी
उनके धर्म शास्त्र सत्यार्थ प्रकाश में नही है ऐसीर उनकी मति
तो स्वामी उनके बावाजी पहले ही पुष्ट करगये हैं उनकी समझ
का मुखतसिर अनुवाद हुआ कि तद्दूरे वो परमात्मा दूर है
परन्तु वो तो मेरा राम घटर में घुसड़ा सभ जगह मौजूद है मा
बहिन सभ एक सी ही जिसमें समझे ऐसे नियोग नाम व्यभि-
चार का झंडा उठाने वाली सत्यार्थ प्रकाश का नियोग मरे
पिछे ही होता है वा जीते भी उत्तर जीते भी इस पंकित स्व
रूप बावा जी की पद्धुति को बोल बहिन से शादी के निषेध के
मते भ्राता सुभगेवच्छ्येतत् तेरा भाई ऐसा नही चाहता इस

नाहतदन्तर न्यन्तरस्यशरीर भोगमात्रत्वात्एकतानमपिविवेक ख्यात्यन्तमपि आन्तरपदाथ द्वयदद्दर्यैवतच्चा सङ्गंसर्वत इतिअ- भ्यान्यदेहि वृत्तिकाले तदीयसर्वं पश्यति इतिसर्वज्ञ इवजायते इति भावः न्यायमततुल्योप्यर्थः संभवति इतिध्येयम् ८

मीमांसकमते तदेजतिजीव तत्वंविधिविशेषधी भाव माभावयन्ततकर्तृ भवतितदेव चतत्वंनएजति निर्भयंभवति फल-

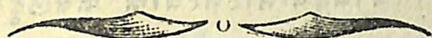
---

प्रकरण के साथ ही मन्त्रकातु और वर मांग इस टूकडे को अलाहदा पढ़कर शास्त्रार्थ का चैलिज देनेवाले धोखे से सधवा नियोग का व्यभिचार वेदों में लिखा बताने वाले के सामने मैं जपर भी मौजूद उसकी सारो अ—न्तरात्मा को कलई देखरहा हैं तद्वदन्ति के यह बेद भगवान् कहता है प्यारो वह तो पा सही मौजूद है वही ऐसे जन्मान्तर के बुराई के खयाल वालों के भी तरंवैठावुरे काम रवा तन्दय का खयाल दिलाकर अपने अधीन रखता हुआ भी कराता है अपने कर्ताभीकारयिताकी रीति से पद्म पत्रमि वाम्भसः भीगने वक्त वाहिरठा उन्हीको वैभुगाता है भोक्ता नही बनता अपने आप निर्लें पही रहता है ५

सांख्य मत में अर्थ यह है कि वहप्रकृति उसके कार्यअन्तः करण वगैरह सभ परिणाम को प्राप्त होते हैं नाना विकार को प्राप्त होते हैं तत्रा तत्संयुक्त (उसके संबन्ध से)पुरुष भी छाया रूप परिणाम को प्राप्त होने की तरह होता है जिससे वह सांसारिक वृत्ति में प्रति विम्बित हुआ बद्ध कहाता है और विवेक ख्याति वृत्ति में परिणत हुआ मुक्त गौणी लक्षणा से कहाता है मुख्य आत्म तत्व वस्तु तो निर्विकार ही है वृत्ति ही प्रति बिम्ब कारा सान्निध्य से चेतना वाली होती है तो पुरुषका

कौशेठिगत स्वर्गादिस्थमधिकारि शरीमुपभोग शरीरंवास्वस्वकर्म णासाद्यसुखोपभोगमात्रपरायणं कर्मायोग्यंचभवति तद्विदूरे वस्य कोटिस्थं भवतितद्वत् अन्तिकेभवति क्रियावत् लोकान्तरेतदिहतु क्रियावदिति युक्तोविशेषएतेन क्षीणत्वाद्विना फलस्वभाविपात दुःखंस्वर्गेऽपि इति परास्ताशङ्का ।

तदन्तरस्य भूलोकस्य त्युक्तसन्तिकेइतिसर्वस्यास्य तद्वाह्यत



उस में व्यापार कोई है ही नही और श्रुति में भी लिखा है कि असङ्गोयं पुरुष यह पुरुष असङ्ग है वही कहा तद्दूरे वह आत्मा उस परिणाम की अपेक्षा दूर समझो याने लाल फूल के सामने रक्खा श्वेत बिलौर वगैरही फूलके व्यापार लालीपन स प्रति बिम्बित जैसे होता है वैसे आत्माके समीप वृत्तिप्रादुर्भूत हुईचेतनासे प्रतिबिम्बतहो उसमें पुरुषका कुछव्यपारनही सान्नि- ध्यभी प्रकृति कृतहै वहभी संयोग नही जिससे गुणा धान हेतु व्यापार माना जाय किन्तु अव्यवधान मात्रहै वहभी प्रकृति कृत ही कहा तद्वदान्ति के उसी तरह पुरुष व्यापार अनित्य धर्म सबन्ध को छोड़कर समीप भी प्रकृत्यादिके वह आत्मतत्व है क्योंकि प्रकृति आत्मा दोनों विभुहैं इसलिये उन का सामीप्य भी प्राकृत जगह हीहै उसी व्यापकत्वको अन्तरादिसे दिखाया तदन्तः याने वह आत्मतत्व और अप्रकृति तत्व षाट्कौशिक (रस रक्त मज्जा अस्थि मांस शुक्र छैकाबना देह) स्थावर (जो मूर्ख लोगों को जड प्रतीत होते हैं वृक्षादि) जंगम (जोमूर्खलोगों को चेतन प्रतीत होते हैं मनुष्यादि) सब के भीतर बाहर सूक्ष्मा न्तः करण में प्रतिबिम्बत और उपादन रीती से घुसड़ा हैं ६

सांख्य विज्ञान भिक्षु के मत में धर्म धर्मि दोनों का ही

अन्तरिक्षा दिङ्गाराःस्वल्पं स्वदेशेषुवृस्ते रितिभावः १ ।

शानमन्त्राणांजामिता ऽर्तिपूर्वमन्त्रोक्तमप्यर्थं पुनराहतदे जतीति तदात्मतत्वं स्वप्रकृतंतदेजति चलतितद्वेव नैजतिस्व तोनैवचलति स्वतोऽचलमेव सच्चलतीवेत्यर्थः। किंचतद्दूरे वर्ष कोटिशतैरप्य विदुषामप्राप्य त्वाद्दूरइवतत् उअन्तिके इतिछेदः तद्वन्तिके समीपेऽत्यन्तमेव विदुषामात्मत्वान्न केवलंदूरऽन्तिकेच

पूति बिम्ब मान अन्तःकरणसमष्टि पूति बिम्बित ब्रह्मा विष्णु शिव संज्ञकमान हैं उस क मत से अर्थ होगा कि पूति बिम्बरूप चित् और प्रकृति दोनो परिणामी हैं जिन में प्रकृति दूरैया ने व्यापक है इस से असमर्थ पूतिबिम्ब उसे नही सर्व रूपसे देख सकते पूति बिम्ब अन्तःकरण की वृत्ति आधार वाला हो वही उतने ही देशमें व्याप्य है यही स्फुट किया कि वहपूतिम्ब तो केवल शरीर के भीतर ही हैं प्रकृति तो भीतर भी और वाह्य भी है।

अथवा समष्ट्यन्तःकरणावछिन्न जो ब्रह्मादि संज्ञक है वह ईश्वर होने से नही डरते और व्यष्ट्यवछिन्न डरते हैं उच्च कोटिमें समष्टिहै नीचकोटि व्याष्टिमें और मनुष्यादिहैं(समष्टि समुदायकानामहै जैसेवनऔर व्यष्टि इलोहदार एकर का नाम है जैसेवृक्ष)और वह समष्टि में पूति बिम्बत इस चार प्रकार के (जरायुज जेर से पैदा होने वाले पशुमनुष्य स्वेदज पसीनेसे पैदा होने वाले मच्छर जूं वगैरह अण्डज पक्षीवगैरह उद्भिज्ज वृक्ष वगैरह) शरीरों क भीतर बाहिर सभ जगह है और व्यष्टि पूतिबिम्बत उसी के भीतर है इस व्मत में तीसरा अर्थ सांख्य की तरह भी होसकता है ७

तदन्तरभ्यन्तरे ऽस्यसर्वस्य आत्मासर्वान्तर इतिश्रुतेः अस्यसर्वस्य जगतोनामरूप क्रियात्मकस्य बाह्यतोऽव्यापक त्वादाकाशवन्निर तिशयसूक्ष्मत्वादन्तः प्रज्ञानघनएवेतिच शासनान्निरन्तरंच ५। १०

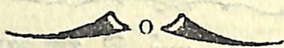
टी॰आमिता दारिद्र्यं पुनरुक्तिभयादिदोषोवा दार्ढ्यार्थ मतिगहनस्यै कस्यतत्वस्यपुनःपुनःस्तूयमानत्वात् चलतीवेतिओ पाधिकंक्रियाकर्तृ त्वादीत्युपाधि विशिष्टेस्तीत्यर्थः श्रामिनो

योग मत से इसका अर्थ है कि आत्मा वृत्ति सारूप्य को (जैसी आकार की वृत्ति हो उसी आकार में प्रकाश रूप आत्मा का होना सारूप्य है) प्राप्त होता भी रहता है होय हटता भी है क्यों कि संप्रज्ञात समाधि तक भी यही हाल है (कुछ विषय स्वरूप जिस में आलम्बन स्थूल सूक्ष्म किया जाय वह संप्रज्ञात समाधि है) और असंप्रज्ञात (जिस में प्रकृति पुरुष भिन्न हैं ऐसी संप्रज्ञात के बाद फिर कुछ भी विषय नहो ऐसी वृत्ति स्थिर होना उसे असप्रज्ञात कहते है।

समाधि में स्थित नही चलता याने वायुरहितदेशमें जैसे दीप की शिखा (ज्वाला) स्थिर हो उसी तरह विषयाकार के बिना की वृत्ति में आकरभी नही चलती किन्तुस्व (अपने)स्वरूप में जैसे का वैसा ही रहता है वह ऐसी धारण ध्यान समाधियों से वशी कृत चित्त योगि सिद्धि वगैरह विभूतीसे दूर दर्शि आदि भाव को भी पालता है और वृति सारूप्यसे पास बैठेकी तरह भी मालूम होता है विवेक ख्याति की एक तान वृति से कभी अन्तर पदार्थ दर्शि होनेसे आभ्यन्तर शरीरके भोग्या कार भोक्ता होता है और वही जन्म जन्मान्तर के भोग कोभी करता है वा शरीर के भीतर भोक्ता और बाहिर अनेक देह में वैसा

ऽपिहिपूतियोगितयाभातिचेभाव: विदुषामाहम त्वादितितेनरूपे णबकल बाधाधिकरण सयाज्ञासत्वादित्यर्थः आम्नातुसएवसर्वं बाम् तदाहतदन्तरेति श्रुतिंपूमाणयति संवादोयमआत्मेति ११

वेदान्ति विज्ञानभिक्षुमते तज्जीवतत्वमल्पज्ञत्वादि धर्म त्वादेवतिविशेतितत्परमात्मनैव तिमिच्छियत्वंतूभयस्यलदूरेव पकोटौसर्वज्ञत्वो पास्यत्वादियोगात्तद्वत्तुजीवतत्वमृक्तौअन्तिके



द्रष्टा हो सर्वज्ञ की तरह होजाता है एक इस मत का न्यायमत के तुल्य भी अर्थ हो जाता है ८

मीमांसक मत में अर्थ है कि वह जो जीव कर्म काण्ड विधि वाक्यार्थ में विशेषण आर्थी भावनाको करता हुआ कर्ता होता है विधि के संपादित स्वर्गादि फल की प्राप्त होय सुखोप भोग मात्र में लगा हुआ देवादि शरीर में कर्म को योग्य और निर्भय होताहै वह उसवक्त उच्च कोटि देवादि अधिकार पदवी में होता है और अन्तिक याने इस लोक में तो तद्वत् क्रिया वाला होता है इस से क्षयी होने से स्वर्गादिमें फिर गिर जायेंगे ऐसा दुख होता है यह शङ्का हटादी क्यों कि यह देशांतर अरुपान्तःर सभ लोक में ही है वह तो स्थान याचत्स्वर्गं अठ्यात माना है और यहां कामतौ भूलोक में ही रहता है वह तो स्वछन्द पृथिवी अन्तरिक्ष सभ जगह जाय आय अपरिमित सुखो पभोग करता है ९

शङ्कराचार्य का हमारी टीकानुसार यह भावार्थ है कि पहले मन्त्र में यद्यपि यह अर्थ कहा है तथापि मनन रूप आवृति वा दृढता यथार्थ निश्चय आदि के लिये दुबारा कहने में मन्त्रों केपास दरिद्रता नही कोई पुनरुक्त्यादि का भी भय नही प्रयोजन

मनएवतत्सोऽणूमकोटितत्रापिकिं संसारदशायांतद्धिअन्तरस्यसंसार स्यसंसारि धर्मत्वात तत्त्वबाध्यतोऽतीतक्रियत्वात्स्वेच्छारत्वात इतिभावः १२

तदुच्छिष्टतया दुयानन्दमतेऽयाप्यस्वव्याघकत्वेऽन्तरस्यपा स्यानुपत्यस्याथों भवितुंशक्नोति इतरत्तद्वत इतिध्येयम् १३

समीक्ष्याचास्य पूर्वनेवव्दाद्य त्वयत्तन कृतानहिजीवस्य

होने से इस से दुबारा वही अर्थ करते हैं।

तद्देजतिइससे यहकहा किवो प्रात्यु जीवतत्त्व प्रकृतिके परिणाम अन्तः करणादि उपाधि के जन्मान्तर लोकान्तर गमनसे आता आता की तरह मालूम पड़ता हैं ज्ञानी लोग निषेध करता हुआ उपाधि विशिष्ट मिथ्या का मिथ्या रूप से गमना गमन दृष्टि को मिथ्या कहतेहुए उसका भाव मानते हैं वस्तुतःपरमार्थ भूत उपाधि भिन्न स्वरूप कूटस्थ नित्य कभी अनित्य धर्म वाला नही इस से निधर्म कहाता है परमात्मा तक ही सगुणता कार अनित्य धर्म से बन्ध है वह सभ सोपाधिक अनित्य मिथ्या कोटि के व्यवहार मात्र हैं और उस उपाध्यतीत रूप को सकल बाध के अधिकरण रूप से विद्वान् ही जानते हैं अविद्वानों को तो सैकड़ों वर्षो से भी उसका पता नही लगता इससे वह दूर के तुल्य है आत्मा तोवस्तु तो वही सभ का है विशेषरूप से तो उपाधि विशिष्ट कैसे हो इस से वही सभ के समय में है इसी से वह सभ का अन्त रात्मा कहाता है और श्रुति में भी कहाहै यही जो आत्मा है सभ के भीतर है व्यापक होने से सभ के बाह्य भी है नाम रूप सब प्रपञ्च के आकाश की तरह निरन्तर सूक्ष्म होने से भीतर भी है और व्यवधान रहित है और श्रुति

व्याप्यत्वं श्रुतितर्कसिद्धं विरोधानित्यत्वादिदोष ग्रासंश्चएकोदेवः सर्वभूतेषुगूढ इति श्रुतौसर्वव्यापिटजीव इत्युक्तेश्चेत्यादिध्येयम् माध्वमते तदेजसिजीवतत्वम भक्तिसंसारदुःखान्मरणादेः तत्पररमात्मतत्वं तत्परायणलोकश्चनैजति परमात्मनोभगवतो भक्तं दृष्टाचमो ऽपिबिभेतिदृष्टंहि अन्यस्वातिकवस्तुमोहि तत्स्वामि नियोग नन्तरातस्यान्यत्रगरतुमशक्यत्वाज्ञयमोपि हरिभक्तंकिंचि

में भी लिखा है विज्ञानघन याने व्यवधान रहित अज्ञानरूप(वृत्ति ज्ञानचे भीन्न उस में प्रतिविम्बित प्रकाश का विम्ब रूप) है ११

वेदान्ति विज्ञान भिक्षु के मत में अर्थ है कि वह जीव तत्व अल्पज्ञत्व आदि धर्म वाला होने से डरता है परमात्मा निर्भय है वह सर्वज्ञत्वादि गुण वाला है और क्रिया तो दोनों में से किसी में भी नही परमात्मा उपास्य होने से और बडा होने से उच्च कोटिका है मुक्ति कालमें उसके तुल्य भी जीव व्यापक स्वरूप होताहै क्योंकिसंसारदशाका शरीरसंयोगसेत्त्मसेपरच्छिन्न त्वभ्रान्ति होतीहै वह मुक्ति दशामें हट जाती है तोभी संसार दशा के देखने से वह उस से नीच कोटि में ही माना जाता है क्यों उसी कालमें वह संसारके अन्तर्गत परिच्छिन्न आदिभ्रान्ति से होता है और परमात्मा तो स्वच्छन्द होने से बाहिर भीहै और नित्यमुक्त है १२

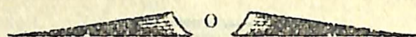
दयानन्द भी जीव परमात्मा भेदादि इसी तरह इसे मानताहै परन्तु जीव परमात्मा का व्याप्य व्यापक भाव मानता है तो इस मत में भी यह अर्थ होगा कि जीव डरता है न्यून दर्जे का है परमात्मा निर्भयहै उच्च दर्जेका है मुक्तिकी अवस्था में जीवभी तद्वत्परमात्माके तुल्य होताहै वहजीव इसपरमात्म

दृक्तुमीष्टेनवासद्भत्यास्तद्भक्ताक्षे क्षितुमीशतेऽप्येदेवाइतिनिर्भ योभवतिहरिभक्ताऽजामिलकप्येतेनानूचितहदूरेहरिपदस्योहरि ज्ञोव्यकोटीयमोनीच कोटिस्थः साधारणजन प्रारब्धविपाकस याद्वायमोवक्तुमीष्टेतदाहत द्विसाधारणजीवोत्तिकेवमीयत्वान् योह्यन्यत्र साधारणानांये वैकेचेहमालोकात्प्रयन्तिचन्द्रमसेह्यवते गच्छन्ति इति श्रूयतेएवंयम वचनरूपाकाठिकीश्रुतिः ननांपराय:

की व्याप्य कोटि में है और परमात्मा व्यापक कोटि में है ११

इस की समीक्षा तो पीछे व्याप्य व्यापक भाव खण्ड कर चुके हैं इस से हो ही चुकीहै कि जीव की व्याप्यता किसी श्रुति और तर्क से सिद्ध नही हो सकती नित्य और सावयवरूप परिच्छेद दोनों अंश परस्पर विरुद्ध भी है और एको देवः सर्व भूतेषु गूढ सर्वव्यापि सर्व भूतान्तरात्मा एक जीव सभ मनुष्यादि शरीरों में गुप्त होकर सर्व व्यापक है वही सभ भूत मनुष्यादि का अन्तरात्मा एक जीव कहाता है इस श्रुति में जीव को प्रत्यक्ष सर्व व्यापक भी लिखा है इत्यादि स्वयं विचार सकते हैं उसने परमाणु एक जगह यद्यपि नित्य लिखा है तथापि उसी के विरुद्ध अपनेही दर्शन में प्रकृति महतत्वाहंकार पञ्चतन्मात्रासूक्ष्म पैदा भी लिखे हैं उस के मत में अणु कोई नित्य है ही नही फिर जीव व्याप्य होकर नित्य उसके मत में भी सिद्ध नही हो ता क्यों कि अनित्यत्व नित्यत्वदोका समा वेश तो जैन मत की तरहविरोधसे असङ्गत बनाने वाले बावाजीके दिमाकमें आई नही सकता और केवल नित्य परमाणु माना अपने ही सिद्धान्त के विरुद्ध हुआ केवल अनित्यत्व पक्ष में व्याप्यत्व अनित्यत्वकी व्याप्ति होगई तो अब जीवोऽनित्यो व्याप्यत्वात्परिच्छिन्नत्वात

प्रतिभातिबालं प्रमाद्मत्तं वित्तमोहेनमूढम् अयंलोकोनास्तिपर इतिमानीपुनः पुनर्वशमापद्यतेमे इतिअशरणाभक्तासच्छास्त्र यो धारानुशास्त्रनिन्दित शारीरव्यापारे मिरयास्मनुमानूपराहभीवत्- मीतदर्थ बाहकूणसदन्तरस्य सर्वस्यजीवतत्वं परमात्मनस्तु तुत्रि वाहस्यान्तं द्वितीयादाद्भयं भवति उचतदीयाश्चात एवनयमाधा न्तःपातिन इतिभावः १४



सावयत्वाद्वा घटादिवत् अनुमानका अवसर आगया कियहजीव अव्यपरिच्छिन्न सावयव होने से अनित्य होगा नित्यत्व और व्या प्यत्व परस्पर विरुद्ध धर्मका समा वेश होगा नही यहीबाबाजी के दर्शन का तत्व पहले भी दिखा चुके हैं इस दिमाक को खुद ही सोचिये शरीर परिच्छिन्न देख कर हम ने कभी मरना नही ऋणंकृत्वा घृतं पिबेत् ऋण उठाओमौज उडाओ यही चार्वाक की दृष्टि हुई या कुछ और भी माधव के मत से अर्थ ऐसा होगा कि वह जीव तत्व भक्ति रहित संसार दुःख मरणादि से डरता उस की प्राप्ति से कांपता है

वह परमात्मा हरि और उसके शरणदी क्षित भक्त परम भागवत तो कभी डरते नहीयम भी उनसे डरता है नारायण नाम लेनेसे अजामिल को लेने को आये यमदुत बिष्णु दूतों ने मार२ कर भगा दिये यह भागवत गाथा अति शयोक्ति का भी वेद मूलहै यथार्थही है कि दूसरे के दास को दूसरा बगैर हुकम मालिक के कभी नही पकड सकता उपर उसका स्वत्व नही बगैर मालिक साक्षी के किसी कानून में भी उस को पकडना जाइ जन ही इसी से हरिभक्ति बिलकुल निर्भय है और छोटे दर्जे का नौकर राजा महाराजा के बडे दर्जे के दास मन्त्री आदि को

भट्टभास्करमतेतदेवजतिमैनतिचजीवद्वैताद्वै तमुपरमात्म हरिमत्वम् एवनंभीतिरपि जन्ममरणादि क्रियाअपि परमार्थतः जीवस्यद्वैतस्ये साद्वैतस्यच परमार्थं । एवनभयादिनापि अमनादि सत्संसारातीतंचसंसारिचेति तदेवद्वैताद्वैतत्वम् अतएवदद्दूरेअ न्तिकेच वृक्षस्येदमूलत शिखरपर्यन्ता कारस्यशिखराव्च्छेदेन पर स्यंदूरत्वं मूलावच्छेदेनचान्तिकत्वं परस्परंशाखासुतदवच्छिन्नस्य

कभी नही अपने अधिकार पर होते पकड सकता वह हरि और उस के नौकरबहुल उच्च श्रेणी के हैं यम भी उन की अपेक्षा नीच कोटि काहै वह साधारण जीवों की प्रारब्ध देखकर उन्ही को (दयानन्दी आदि को) बुलाय सकता है हरि भक्त तो उसके लिये हरिवत ही है और जीव उसके समीप जाते हैं औरश्रुति में भी लिखाहै साधारण जीव मरकर चन्द्रादि लोकों में वैस्वत के पास जातेहैं धन मद से मत चार्वाक कल्प लोगों को परलोक कुछ नही प्रतीत होता वह मूर्ख लोक यही लोक है परलोक कोई नही ऐसा समझते पुनः पुन मेरे वश में आते हैं ऐसी उन नास्तिकों के डराने वाली श्रुति भी है और वह जीव तत्व सबके भीतर है परमात्मा तो एक अंश इसमें तीन अंश बाहिरहै वही और श्रुतिमें भीकहाहै कियतीनपादमुक्तरूप संसार से बाहिर इस का अपने स्वर्ग गो लोक में है इसी से वे यमोन्तः पालि नही यह यहां भी श्रुति कहता है १४

भट्ट भास्कर मत में भाव अर्थ इस का यह है कि जीव द्वैता द्वैत यह हरि परमातम ज व रूप से डरता और अपने रूप से निर्भय जीव रूप से जन्म जन्मान्तर वाला परमात्म रूप से मुक्त संसार धर्म रहित इस तरह यह द्वैता द्वैत एवमनएजन

घातद्वच्छिन्नत्वाभावात्तद्वद्भेयोरैक्येनभेदश्चपरमार्थतोऽभेदश्चा वच्छेदकमन्त रानचैवंमूला वच्छिन्नोनवृक्ष इतिप्रतीत्यापत्ति रिति बाध्यम् ॥

सावच्छिन्नान वच्छिन्नयोर्भेदस्य केनाप्यस्वीकारात् मूलावच्छि न्नोत्रकपिसंयोगीतिक पिसंयोगिशाखावच्छिन्न भेदस्यतुआपामा रसाधारणीप्रतीतिर पिच्चसंयोगाभावावगाहित्वंतस्याःकथमन्यथा

:o:

भाव दोनो वाला सक्रिय निष्क्रियवद्व मुक्तसभीहैं एकद्वै तद्वैता है जैसे वृक्षशाखा उच्च नीच भावसे दूर समीपहो और वृक्ष सारा एक ही उन से भिन्ना भिन्न हो परन्तु अपने किसी अवयव में उस का भेदानुभवनही इसी तरह परस्पर उपाध्यवच्छिन्न जुदा२ अनुभव हों इसी तरह विराट दूर में भी समीप में भी समग्ररूप से अभिन्न भी सभ के भीतर भी बाहिर भी समीप भी वही भिन्ना भिन्न है १५

निम्बार्क मत में इस का अर्थ यहहै कि वह विद्वत्तंद्वैत परमार्थतः व्यवहार काल में भी मुक्ति काल में बिनाशि है अद्वैतही उसदशा में कहा जायगा जैसेरज्जु ज्ञान से सर्प नष्टहो जाता है परन्तु विवर्त्त द्वैता द्वैत रूप परमततवम संसारि मुक्त साधारण रूप से जीवन्मुक्त हरि दीक्षित को अद्वैत रूप से एक रूप से) मान होरहा परमार्थ सत् होने से अविनाशि है वह विराट रूप अद्वैत तत्व दूर है भगवच्चरण मात्र से ही प्राप्त होताहै और वही विवत रूप द्वैत तो सभ संसारी के समीप हो रहा है।

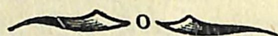
इस तरह विवर्त्त भेदा भेद रूप से परमात्मा हरि हीसभ के भीतर बाहिर जान कर उपास्य मित्र पुत्रादि भावना लायक

कथनन्यथा शाखावच्छिन्नोनमूलावच्छिन्नः द्वौचेमौवृक्षौमूलावच्छिन्न शाखावच्छिन्नौइति प्रतीत्यापत्तिरितिवाच्यम् तार्किकानामेवव्य तिरिक्तत्वेनानिष्टत्वेऽपिसद्न्येषामिष्टापत्ते नंहिहस्तपादयोरिव त वच्छिन्नबाहुजङ्घयो र्भेदोनानुभवसिद्धः संयोगाभाव तद्भेद योस्तार्किकैरप्ये कत्वस्वीकाराश्च तदेवविशिष्टवृक्षस्यैवव्यापकत्वं विराजःस्फुटयति तद्भिन्नाभिन्न मन्तरस्यसर्वस्य हस्तपादयोस्तद वच्छिन्नयोश्च शरीरान्तर्भेदवद् भेदवच्चशरीरस्य समुदायिनश्चिज्ज डायवभिन्नाभिन्नस्य बाह्यन्तश्चसर्वस्येति भावः—१५

है जैसे और श्रुतियोंमें भी कहा है कि एकांशसे जगत्का व्याप्त कर त्रिपात् अपने मुक्त स्वरूप से विद्यमान है उसी मित्र की चक्षु से हम संसार को अपने से विवर्त भिन्ना भिन्न समक्ष कर रहे हैं १६

रामानुज मत में इस का अर्थ है कि उस विराट् विशिष्टा द्वैत हरि के एक स्थूल सूक्ष्म जड भाग में ही परिणामहै चिदंश में बिलकुल नहीं जीवांश में भय है भगवद् अंश में नहीं इससे विशिष्टा द्वैत वह तत्व एजन करभी रहा है नहीं भी सक्रिय भी अक्रिय भी अंश भेदसे होता है भगवत् समाश्रयके बिना अलभ्य है इस से दूर है कार्य मात्र स्थूल चिज्जड प्रपञ्च के कारण रूप सूक्ष्म चिद् चित् रूप से स्थिर है इस से समीप भी वही तद्वत् याने विशिष्ट एक रूप ही है जैसे रजतमात्र में रजतावयव होते हैं और क्या भ्रमस्थलमें भी कुछ सूक्ष्मसत्यरज तो त्पादक शक्ति रहित अशसीप में भी है जिन से रजत भ्रम होता है इसी तरह वह विशिष्टाद्वैत सभ के भीतर है और स्थूल चिज्जड रूप से भिन्न रूप औरबाह्यभीवहीचतुर्व्यूह नारायण वासुदेव परमतत्व

निम्बादित्यमते तद्विवर्त्तद्वैतरूपं परमार्थव्यवहारकालयत एजति विनाशिमुक्तिकाले ऽद्वैतभावात् रज्जुज्ञानेभुजङ्ग नाशव त्तत्त्वनैजति विवर्त्तद्वैताद्वैत रूपंपरमार्थतत्वमृसावादिकपरमार्थ सत्वात् तद्दूरेऽद्वैतं तत्वंविराडात्मकत्वात् प्राप्यत्वादन्तिके तुविवर्त्तरूपद्वैतं जड जीवादिआपात मात्रपूतितानादि परमार्थ सिद्द्वैत भेदात्मकत्वात इतिद्वैताद्वैतमेव परमार्थ जीवन्मुक्त हरि दीक्षितोपास्यं तदेवचोपासा भिदांसूचयितुं स्फुटयतितदन्तर स्यसर्वस्यतद्बाह्यतश्च इतिमित्रपुत्रादौ सर्वत्रासौद्वैता द्वैतोपास्यो



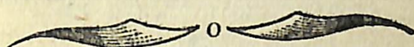
वशिष्ट द्वैत विराट् रूप पुत्रमित्रादि भाव से समाश्रय द्वारा उपास्य है १७

वल्लभ मत में इस का अर्थ है किलीला से वह एक ही सक्रिय भी कहाताहै और निष्कृया भी प्रलयादि में उसलीला को छोडता हुआ शुद्धचिद्रू रूप शक्ति शक्तिमान् का अभेद होने से एक ही है वही शरण मन्त्र ब्रह्म संबन्ध हीन को गोपति दूर है वही अनन्य भक्ति से धन देह द्वारा पुत्रादि आत्म समर्पण गोपी की तरह करने वालों के समीप राधा वल्लभ को प्राप्त होने से क्यों कि वह उसी सृष्टि के भीतर तन्मयहै इसी से उन को गोस्वामी अपने मत के दीक्षितों से वगैर जल पान कभी अच्छा नही मानते और वह इस संसार भय से बाह्य नित्य मुक्त राधोपासित फल रूप भक्ति में उपास्य है १८

नकुलीश पाशुपत और शैव के दोनो मत में ऐसा अर्थ होगा वो जो कि पशु (जीव) स्वामी पशुपति का आश्रयण दीक्षादि से नही किया वह पशुपति विमुख मालिक के विपरीत चल रहे कुक्कुरादि की तरह कांपता है वगैर मालिक के या उस

मित्रादि भावनया विवर्त्त द्वैताद्वैतरूपो हरिरिति संवदतैं चात्र श्रुतिः पादोऽस्य विश्वाभूतानित्रि पादस्यामृतं दिवि, मित्रस्यचक्षुषा समीक्षामहे इतिचेति भावः १६

रामानुजमते तदेजतितन्नेजतिविशिष्टाद्वैतम् द्वैतकल्पे सूक्ष्म स्थूलजडकल्पेच संसारपरिणामादिन सूक्ष्मचिद्विशिष्टमायावच्छिन्न विशेष्यांशचित्कल्पे इति जीवांशेभयंनह्यंशेभवतिविशिष्टा द्वैतमेजतेच नैजतेचेति तद्दूरेऽलभ्यत्वाद्भागवमनाश्रांश्रित मात्रलभ्यत्वादन्तिके चकायेतद्वत् विशिष्टं स्थूलचि



से विपरीत होने में संसार दुःखसे कहां बच सकताहै प्रत्युत वगैर गलमे मालिक के नाम का पटा वान्धे कुत्ता पकडा जाता है राज कीय पुरुष उसे ग्राम से वाहिर कर देते हैं और पशुपति शरण्य स्वामी से रक्षित नौकर की तरह मालिक के मेहरबान होने से कभी नही डरते कांपते और स्वामी हीन पकडा जाता है इस से दूर होजाता है पशुपति भक्त भक्ति के प्रभाव से मरने के बाद सामीप्य मुक्ति को प्राप्त होता है

यहां भी उसीके समीप पार्षद तुल्य स्वीकार कियाजाता है वही पशुपति गूढ लिङ्ग याने स्त्री लोगों के अन्तर्गुप्तरूप से स्थित है वाह्य तो प्रत्यक्षरूप से भी अगूढ लिङ्ग (पुरुष) के मालूम पड रहा है महाभारत में भी इसी श्रुति का व्याख्यान किया है कि लिङ्गाकार और भगाकर ही देवी और शिव माने जाते हैं वही सभ पूजा का स्व रूप है इस से सभ यह पूजा महेश्वर की ही समझनी चाहिये इस से इस श्रुति का यह अभिप्राय है कि सभ के भीतर वाहिर मौजूद पशुपतिजी काही लिङ्ग मुर्त्तआदिमें पूजाकरनी पशुपति शरण होना यही पशुयाने जीव

दचित्कारण सूक्ष्मचिदचिन्मात्रविशिष्टाद्वैतरूपत्वात् भगवदेकत्वम् तदन्तरस्य सर्वस्यकारणात्मना स्वमस्थलेरजतावयवा शुक्तीनत्येवापितु अनभिव्यक्ता इति व्यक्तरज तोतपादनेऽसमार्था दोषाभिव्यक्त रूपास्तुभ्रमजन यन्तीतिकिमुसत्य स्थलेवांश्यम्स्फुटंचैतत्पृथम सूत्रावतरणपि श्रीभाष्येध्यानखण्डे सत्ख्यातिरेवतदभ्युपगमात् बाह्यतश्चसर्वस्यकार्य त्वात्मकत्वाभिव्यक्त त्वात्मनाप्रतिव्यक्ति भिन्नात्मनाचविराट् पुरुषईश्वरोहरिः रामाद्यनेकावतारश्चतुर्व्यूह नारायणोऽनन्य लभ्यस्सएवमेोपाध्योहि पुत्र

मात्र का बचने और परमातमा के प्राप्त होने का उपाय है १९

और माहेश्वरोके फिर्केभिन्नभी मालूम हो रहा वह स्वामी जीव से अभिन्न ही है वह अपने अदृष्टके मुताबिक ही फल देता है वगैर अदृष्ट के स्वतन्त्र हुआ भी फल नही देता यह मानतेहैं उन के मज़हब के मुताबिक ऐसा अर्थ होगा कि जीव अपने अदृष्ट से पूर्व जन्म किये का क्या फल होगा यह सोचता हुआ कांपता है वह परमात्मा न्याय कारी है भक्ति आदि सुकृत और नियोग नामक व्यभिचार मूर्ति निन्दा आदि वेद विरुद्ध घोरर पापों के यथार्थ दण्ड देने में वैषम्य (न्यूनाधिकताव सृष्टि का नैर्घृण्य पाप दुःख देने से दया रहम न करना आदि दोषों से नही कांपता क्यों कि पीछे मत वालों को दोष है जो वगैर अदृष्ट जैसा चाहता है वैसा फल दे देता है ऐसा मानतेहैं यह तो अपने पुण्य पूजादि औरनियोग नामका व्यभिचारादि घोरर पापों के मुताबिक दण्ड देने वाला न्यायकारी मानते हैं उन के परमात्मा को किसी दोष की शङ्का नही इसी से किसीप्रकार का भय नही इसी से वह न्याय धीश परमात्मा सभी से दूर

मित्रादि सर्वात्मनात दुर्लंभगवता श्री पुराण पुरुषेणवासुदेवः सर्वमिति समहात्मा सुदुर्लभ इति भावः १७

बल्लभमतेतद्देजलिनै ज्ञतिचसक्रियंचललीयां एकाकेनरमते एकोहंबहुस्यामितिसंवादात् क्रीडार्थंजगदात्मनापरिणाममानएक एवचिद्रूपःप्राकृताप्राकृतोभयमायालीलाख्यशक्त्यभिन्नःनिष्क्रियश्चनिर्गुणं क्रियावान् निरवद्यनिरञ्जन मितिश्रुत्या परिणामानों ऽपिदध्यापन्न दुग्धादिवत्स्वरूपान्छौकल्यादिवत्प्रत्युतइतिनएव दूरमशरणानां पुष्टिरशुद्धाद्वितीय भक्तिरहितानामन्तिकेचगोप

उच्च कोटि का है वह गुणानुसार और भक्ति के अनुमार फलको देता है आज कल के प्रायेणभूमिपतयाःप्रमदालताश्चयत्पार्श्वतो भवति तत्परिवेष्टयन्ति पायः करके राजास्त्री लोग औरलता जो पास में हो उसी को आलिङ्गन लिपटना उसी पर मस्त होना उसी का कहना मानना आदि करते हैं ऐसा नीति वालों के कथन के अनुसार बैठक बाजी के मुश्तैद लोगों के तुल्य नहीं वैसा होने में अन्याय कारीपन हो जाता है और जीव नीच कोटि का वह उस का असामी है शरण्य है अथवा यहजीव जो उस की पूजा आदि शास्त्रोक्त पुण्य कर्म करता है वही न्याय के मुताबिक दीक्षा भकित पूजाके फल समीप्य मुक्तिके आनन्द का अनुभव करता है क्योंकि आनन्दके लियेही बनायेस्वरूप दो ही तरह के हैं लिङ्ग या भगदो ही तरह के परमात्मा शिव के वह गूढ अगूढ लिङ्गरूप महाभारत में भी लिखा है वही अगूढ लिङ्ग के भीतर और गूढ लिङ्ग के बाह्य भी स्वरूपहै इससे सच्चिदानन्द माया विशिष्ट शिव परमात्मा उन्ही लिङ्ग मूर्त्यादि रूप से जरूर ही उपास्य है २०

तिः ताद्रूशानन्य भावेनसदारसुनबान्ध बाधवल्लभात्मनांपुष्टि पुष्टानां तदाहतव्यन्तरस्य सर्वस्यसंसृते र्बोल्हातश्चे ति तदात्मनैव सर्वरूपोपि तदन्यशरणै स्तथैवराधा बल्लभोहरि रूपास्योऽप्युपा सितोराधया १८

नकुलीश पाशुपतानां शैवानांचमते तद्वनिःस्वामिकंजीव तत्वंपशु त्वात्पशुपति विमुखंभेजति कथ्यतेसंसारदुःखादि न्य नाश्रितपाला सभवादन्यै बलद्‌ग्राह्यत्वाद्राजकीयैश्च पुरुषैकुक्कुरा दिवत्‌निस्सार्यत्वात् पशुपतिस्वामि करतुनैर्जतिकम्यतपलतिनस्व

शिव शक्तयात्मा एक ही अद्वितीय सोह ऐसा प्रत्यक्षरूप से पाद करने लायक नित्य सवितपरमात्मा तत्व है इस प्रत्यभिज्ञा वादि शाम्भव के मजहब में प्रत्यभिज्ञा रहित आणव पाशव शक्ति शाम्भवादि उपाय शिव सूत्रानुसार नजानने वाले दीक्षाहीन जीव बकरों में पडे सिंह के बच्चे की तरह अपने सिंह रूप को न जानते हुए सिंह से डरने वाले की तरह कांपते हैं और जो सोहं प्रत्यभिज्ञा को गुरूपदेशादि शास्त्रीयोपाय से कर चुके हैं उन्हे परमात्मा शिव के स्वरूप भैरव तुल्यों को सिद्ध स्पन्द से तिर स्कृत भयस्पन्द कभी नही होता गूढ लिङ्ग शिव शक्ति स्त्री और गूढ़ा गूढ शिव शक्ति पुरुष में है यही दूर और अन्तिक में है अथवा अन्ति के जो छोटि नजदीक की चीज ही वही डरती है जो दूर उच्च कोटि की चीज सिद्धतत्व है उसे किसी का भी डर नही।

उसी की प्रत्यभिज्ञा का हेतु सका सभ जगह मौजूद होना है वही कहा तदन्तः याने गूढो गूढ शिव और गूढा गूढ शक्ति याने गूढ शक्ति अगूढ शिव पुमान् अगूढ शक्ति गूढ शिव स्त्री

मार्गतः स्वामिरक्षितत्वात् तद्दूरे हि भवतिनिः स्वामिकमग्राह्य
त्वात् दूरनिस्सार्यत्वा दन्यग्रहयत्वाच्चान्तिकेपिभवति सर्वसमीपे
विशेषतः स्वामिसमीप्यमुक्ति योग्योहिभवतिपशुपतिभक्तोयत
स्तदन्तरस्य स्वामि तत्वमगूढलिङ्गस्य स्त्रीजनस्यबाह्यतश्चागूढलि
ङ्गाकाराभगा काराःस्तस्मान्माहेश्वरी पूजाइतिमहाभारतोक्तेः
तस्मात् सर्वान्तरबाह्य रूपेणस्थित: पशुपतिरेवलिङ्ग सूत्त्यादि
भिरुपास्यः पशुपतिमात्र शरणतैवपशुपालिकेति भावः १९

माहेश्वराणांमते भिन्नोऽपिभासमान स्ततोऽभिन्नएवजीवः

———:o:———

सभ के अन्तर्बहिः याने पूर्वोक्त गूढा गूढ रूप से विद्यमान ही
रहता है २१

साहित्य वालों के मत में वह चल चित हो जाताहैं और
वह नही याने रस स्वाद के मौके जो साहित्य शास्त्र वित्रसा
स्वाद का तरीका गायन वगैरह और अभिनय (बताबा) वगैरह
की पहचान रखने वाला है वही रस स्वाद में दृढ चित हो हरि
भजनादि का व्यनाटकोंमें तत्पर हुआ उसी आनन्दका अनुभव
करने में स्थिर रहता है साहित्यनास गीति शास्त्र का अभिज्ञ
नही वह हरि भकित हीन हरिभजनादि काव्य नाटकादि में
चल चित होजोता हे इसी सेप्राकतन पुण्यपाप का भी अनुमान
और जगह आचुका है प्राकतन पुण्य रहित जरठ मीमांसक का
ब्रह्मचर्यादि वा नास्तिक रस से हरि भजनादि का व्यनाटक
नापसन्द करते हैं कि वह साहित्य गीतिनास्य शास्त्र के अनभिज्ञ
और पूर्व जन्म जन्मान्तर के पापोंके भोग चक्रमें आये हुए हैं यह
सहृदयों को प्रत्यक्ष सिद्ध है वही लोग इस में तत्पर होते हैं
उन के लिये उन वस्तुओं का स्वभाव ही आकर्षण शकित का

स्वादृष्टभयादेजलिपूर्वजन्मा दुष्टपाकेकिंकिं भवेदितिकथ्यते नैजति तरपरमात्मशिव तत्त्ववैषम्यनैर्घृण्यतः पूर्वकृददृष्टानुसारेण न्यायकारित्वात् तद्दूरेपितस्य कोटिस्थशिवतत्त्वं न्यायाधीशस्वामित्वान्नाधुना नस्वामिवदुति निकटागुणस्यापिसद्धानुमतिं प्रार्थनयाददातिथअपितुरक्षतिददाति यस्वंभावमात्मानमेवपरंस्वीयपूर्वादृष्टभाक्तेतारतम्येनतमभक्तोऽस्तिनिकटइतिकृत्वातत्प्रार्थनांस्वीकरोतिनापिदूरस्थितिअतिभक्ततमस्वकार्यनिष्ठं पृच्छतिअसतिदथार्थफलाप्रदत्वेनान्यायकारित्वापतेःअन्तिकेहिसभवतिनीच

मालूम पड़ता है।

कि एक दफा हरिकीर्त्तन का श्लोक पढ़ा जाय की घण्टों तक उसका असर उनके दिल से नही जाता क्यों कि वह रति के समय में है इसके जो सहृदय रसभावादिसे जल सेचितस रसमधुर रस वृक्षलता गुल्मादि की तरह आई कोमल हृदय है वह दूर है जो इस भाव आदि के अनभिज्ञ है वे जन्मनी मांसक जिन्हें इस जन्म में रस संस्कार नही पड़े वैसे ब्रह्मचारि नास्तिक वगैरह जन्म जन्मान्तरके पाप चक्रसे उस रसके आनन्द योग्य भावना से रहित होते हैं वह उस मौके जबकि रसा स्वाद हो भी तरह और बाहिर उस के अभाव के समय प्रत्यक्ष सिद्ध है इसी से यत्किंचित तारतम्यता का अनुभव हो रहा है इस का यह आशय सूक्ष्म है कि रस नाटक करन वाल याक बिके उस अनुकरण का नाम नही और नरामादि व्यापारही का किन्तु राम सीतादि शृङ्गारादि बाहिररति आदि शब्दों से कहे और नाटक के पात्रके व्यापारकरने से अनुकरण कहेंवही काव्यनाट्यदेखनेवाले सहृदयों के अपने कान्तादि शृङ्गारादि सामग्रीके साथही दृष्ट

कीटोजीवः स्वादृष्टेनस्वशास्य एवभवतिअन्तिकेच भवतितद्भक्ति निष्ठःस एवसभवतिन्याय प्राप्तलब्धभक्ति दीक्षामहिमकः तदा हान्तरस्यसर्वस्यतदुसर्वस्यबाह्यत इति पूर्वोक्तयुक्तेस्तथैवच सर्वात्म नातन्निष्ठतया सावुपास्य इतिभावः २०

शिवशक्त्यात्म कमेकमद्वितीयं तदेवप्रत्यभिज्ञेयंसोहमितित स्वनित्य संविन्मयमिति प्रत्यभिज्ञावादिनां मतेतदेजति प्रत्यभि ज्ञारहितं जीवतत्वम् छागमध्यस्थइवसिंहशावकःनैजतिनबिभेति सोहंमितितत्प्रत्यभिज्ञेयं परमात्मशिव भूतंस्पन्दोहिएजनपदार्थः नास्यसिद्धि स्पन्दपराभूतत्वात् तद्दूरेतद्वदन्तिकेहि गूढलिङ्गा गूढलिङ्ग भेदेनाल्पतरंवा भीतिमत्अन्तिकेऽतोदूरेहिततिसद्धतत्वं भीत्यादेरनवकाशात् स्फुटमेवप्रत्यभिज्ञाचिन्हंप्रत्यभिज्ञाहेतु परि मृशन्सकलस्यनड़ाधारतया व्यापकत्वना हनित्यसंविदः तदन्तरि लिइतिभावः २१

श्रुत बिभावादि की साधारण भावना रूप व्यापार से साधारण शृङ्गारादि रूप से भास मान अपनी रति बिशिष्ट आदि चिद्रूप परमात्मा वृति की प्रादु र्भावदशा का नाम ही रस स्वाद है वह बाहिर जो अनुकरणादि है वह आस्वाद नही २२ इस में यहसमीक्षक का बिचारहै कि एक वस्तु दो तरह की नही होती भेद अगर होगा तो दो चीज होजायेंगे एक परमात्मा में मत भेद होने से एकत्व उडजायगा भेदा भेदा भेद के विरुद्ध होने से सभी मत अप्रमाण भी होजायेंगे इससे सभी एक परमात्मा बताने के तात्पर्य से एक अर्थ के ही बताने के लिये सभी मत आचार्य मुनि महऋषी स्मृति गण के प्रवृत्त है यही मानना चाहिये विकल्प मानने में भी संशय पडते से सभ झूटे होंगे

साहित्यमते तदेजतिचलति रसास्वादतोऽनिपुणत्वाऽन भिज्ञोभावानां हरिकीर्त्तन गानादिरहितः तद्गीतभावा स्वादन कुशलस्तु रसिकस्तन्मय एवभवन्नत्रा लयितुंशक्यते गीतंहिस्वा भावतएव सर्वं चालयन् स्वस्वकार्यंतःस्वसमाधिनिष्ठं जनयतीतिवा लानामप्यनुभवसिद्धं किंपुनर्हरिगुणगानवह्वविधगोपीशृङ्गारादि रसास्वादमधुविक्त दूरेहिरसमार्गस्यतद्भावरहिता अपुण्यशालिन ऐहिक प्राक्तनवासनारहिता यतिजरन्तो मांसकादयोवाह्य भूमि काष्ठ कुड्य सन्निभाः अन्तिकेरसरयते निरन्तभावाभिज्ञानोहन कुशला मधुरशाशयस्यसान्द्राद्री इवतस्थःसंसारसिकाःतदन्तरस्या स्वादनसमये बाह्यतोऽपिसर्वस्य एतदुक्तंभवतिन बाह्याङ्गभूमि ष्यसीतारामादि भेदेनतत्रस्थोतदनुकर्तृस्थोवानुभूयमानरसोऽपि तुभेदापोहेन स्वात्मान्येवनायकाद्यालम्बनभावेनतन्मयतयायमा

अधिकारि व्यवस्था मानने में पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष क्रममें पूर्ववादि सभी अप्रमाण अशास्त्रीय रास्ते के होने से अधार्मिक गणना में आपड़ेंगे इससे सब शास्त्र उन के बताने वाले वेद सहित अप्रमाण होजायेंगे इस से जैसे अछे बुरे सब प्रकार के पुष्पों से भ्रमर मधुरस खेंचले इसी तरह यथार्थ तत्व बात निष्पक्ष हो पूर्वोत्तर पक्ष विचार शास्त्र प्रमाण सभी जिस में बन जायें और युक्ति वाद में जिन की प्रबल हों वही सिद्धान्त ठहराया जाय तो इस में सब का एक वाक्य हो प्रमाणता होजाती है उस रीति से एक तत्व निर्विशेष पर्यवसायि शुद्धाद्वैत मानने में सब उपनिषदादि और भक्ति शास्त्रों की एक वाक्यता होकर ज्ञान कर्म काण्ड संपूर्ण वेदतदनुकूल होने से सभी तन्त्रादि स्मृति का एकय होताहै और भेदादि प्रदर्शक दर्शन शास्त्रका भीआचार्य

स्वाद्य तेरसः कैश्चिद्देवजनैः प्राक्तन पुण्यशालिभिः तद्भावशील नशालिकैः सहृदयतमैः सुहृदयैरिति २२

अत्रेदं समीक्ष्यं नवस्तुनि विपर्ययो हीश्वरतत्वे नवा भेदाभेदादि सकल विरोधे कस्या पियुक्तो मार्ग इत्युचित वक्तुं कस्मात्पूर्वाचार्या सर्वे एकतात्पर्येणा विविरुद्ध नयाभिदध्युः सर्वं शास्त्रसारमेव संगृह्य तं तनम धुकर न्यायेन मकरन्दमेकीकृत्य इदं विभाया मोपदेकमेव तत्त्वम विशेष निधर्म पर्यवसायि शुद्धाद्वितीयं प्रतियोगितया निर्विशेष एव बाधसा मानाधिकरण्येन नानाविध नामरूपैः शिवहरिभैरव शक्ति गणपसू-र्यात्मना ध्यायते विशेषण वसयाद्वितीयमेव स्वस्मिन्निद्धु यादिमन्नि त्य संविन्तरवं सोऽहं हरिभैरव इति प्रत्यभिज्ञावतः॥

मत सहित युक्ति प्राबल्य रीतिसे इसीमें ही पर्यवसान होता है

इन मतके मुताबिक यही अर्थ सिद्धान्त समीक्ष्य करके अपने विचार में आता है कि बाध सामानाधि करण्य होते विशिष्ट परमात्माकी शक्ति शक्तिमान्के अभेदसे शुद्ध अद्वितीय होकर नहोना (मिथ्या) और निर्विशेष रूपके यथार्थ होनेसे विशेष्यरूप तथा विशिष्ट निरूपण कालमें औरमाया बाध कालमेंभी त्रिकाल स्थित होने से मान कर व्यावहारिक प्रमारूप से शिव हरी भैरव शक्ति गणपति सूर्यादिना वा ध्यान धर्म ज्ञान वैराग्य सुख शुद्धाद्वितीय निर्विशेष पर्यवसायिही सिद्धादि ऐश्वर्यविशिष्ट आत्मा के साथ गूढा गूढ लिङ्ग में सोह हरि भैरव इत्यादि साक्षात्रूप से याद किया नैजात नहीं डरता नहीं उन के रस स्वाद से यही डरता और चलता है जो कीर्तनादि अपने मार्गके भ्रष्ट हो ऐसी भक्ति शास्त्र से हीन होता है जैसे सिंह यूथसे निकल बकरों में मिलगया सिंहका बच्चा सिंह उनकी तरह डरजाता है औरवह

आत्मभूतंनैजतिभीषका भावादेजति विभेति चलति सवमार्गं तःसिंहयूथवंष्टइवहरिश्चि शुद्धागेषुमध्यगतः तद्दूरेहिवहिष्का र्यमेतत्सभु विधभावरहितं नास्तिकतत्वं मन्तिकेतुस्वात्मतयातदु पासकानां तद्भक्तिरसिकानांतदाहस्पन्द्रे विग्रहं मानेऽपिबाह्यत स्तदेवस्पन्दे परमात्मविशेषण शुद्धाद्वितीये संविदि—आन्तरबाह्य सर्वव्यापकैक विशेष्यतत्व रूपत्वात इतिभावः २३

तो दूर ही है बाहिर ही निकला है जो नास्तिक जीव तत्व है वही समीप है जो स्वात्म रूप से देवतोपासना करने वाला है भक्ति रसरसिक जीव तत्व क्यों कि केवल स्पन्द में जाना हुआ वह बाहिर ही है और निर्वशेष पर्यवसायि शुद्धाद्वितीय रूप से वही संवित्तत्वपूत्य भिज्ञात हुआ सब के अन्तर बाहिर सर्वव्यापक होजाने से उपास्य होंजासकता है २३



यस्तुसर्वाणिभूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषुचात्मानं ततोनविजुगुप्सते ॥

यस्त्विति विशेषिकमते वैराग्यदार्ढ्यायेदं भावनाविशिष्ट तत्वज्ञानोपयोगिनं प्राहयस्तुजीव। तुशब्देनसाधारण जीववैलक्षण्येनास्य विशेषमाह यस्तुसर्वाणि भूतानिआत्मनि एवइवपश्यति संपूचेतसि जानीयादित्यर्थ चतदव्ययं ववायथातथैवमितिकोशात्मयानिशर्थवाशब्दार्थेएवशब्दप्रयोगात्आत्मवन्निसमानुसुखदुःखहेतुनिपातेसुखिनोदुःखिनश्च दुःखमुखानुपश्यतीतिभावःतत्रहेतुभूत भावमाह सर्वभूतेषुआत्मानं पश्यतिअहमपि सर्वत्रमंस्थितइति

वैशेषिक मत में आत्मा परमात्मा का भेद है इस से इस का अर्थहोगा कि जोजीव कोई असाधारण(यहजुदा अर्थहै)याने वैराग्य विशेष के लिये भावना को दृढ करने वाला (क्यों कि अपने पास समझने से प्राप्ति की इच्छा कम हो जाती है) संपूर्ण सृष्टि को अपने पास की तरह (एव का इव अर्थ भ कोश में लिखा है) देखता है याने कि अपने दुःख समय सुखि मनुष्यों को अपने भीतर के तुल्य जानने से अपने को सुखी मानता और सुख समय दुःख देखकर अभिमान और कृतकृत्यताव्या मोह को छोडता है क्यों कि वह आत्मा को सर्वव्यापक जाननेसे अपने को भी औरों में कैसे देखताहै इस से वह निन्दादि से दूसरे के साथ द्वेषादि और परनिन्दा हेतु अपन उत्कर्ष के साधन सामग्रीके रागादिसे आत्मा को दुःखित नही करता क्यों कि विजातीयात्म मन संयोग ज्ञान हेतु पीछे भी बतायाहै तोदूसरे के सुखादि सुखयविभअनुभव सकत साधारण

तत्तोनजुगुप्सतेन निन्दाद्याचरणादिभिः परद्वेषदुःखादिहेतुर्भिदुःखाकरोतीत्यर्थः परात्मव्यापकत्वविजातीयात्ममनःसंयोगस्याज्ञानहेतुत्वेनपरकीयशरीरावच्छेदेनतच्छरीरस्थात्मदुःखादेरननुभवेऽपिस्वशरीरावच्छेदेन स्वस्यदुःखमिवपरस्यापितद्धेतुनिपातेदुःखंभावीति चिन्तयन्नसव्यापकत्वात्तपरदुःखपरस्यममैवेतिमममैवतदितिअभेदभावनांवाकुरुतेसस्वयंमपरकीयदुःखहेतुं संपादयतीतिभावः एतदर्थंवविद्या विनयसंपन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि शुनिचैवश्वपा

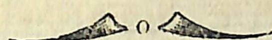
—— :o: ——

नही हो सकता तथापि अपने शरीर में अपने को जैसे हो वैसे दूसरे का भी मानता आत्मा को उस के तुल्य जानताहै अथवा अभेद भावना करलेता है इसी बात को गीता में भी लिखा है पण्डित ब्राह्मणगौकुत्ताहस्ति आदिमें सुखादि अनुभव करने वाले आत्मा सभी बराबर हैं कुत्ते का आत्मा अपना यह अर्थ समदृष्ट के विरुद्ध विषम दृष्टि ज्ञानरूप होने से इन के मत में तापसन्द है १

गौतम मत में जीव तो परमात्मा भी है परन्तु उत्कर्ष भेद है और व्यक्ति भेद भी है इससे उन के मतमें भी वैराग्य के उपयोगि दुःख भावना बताने को इस मन्त्रका अर्थ होगा कि जो जीव संपूर्ण भूतोंको अपनेमें दुःख करनेवाले रागादिसे धर्मादिद्वारा दुःख रूप जन्मान्तर हेतु समझता है इसी तरह अपने जन्मान्तर और इससेभी दूसरोंके वैसे जन्मरूप दुःखहेतु मानता है वह सभ में दुःख दृष्टि के दृढ होने से जीवातिरिक्त संसार मात्र को दुःख समझता हुआ उस का हेतु निन्दादि साधन द्वेषादि और परनिन्दा हेतु अपने उत्कर्षके साधनमें रागादिको नही करता और उस के हेतु सुख भावनादि नही करता ।

केचपण्डिताः समदर्शिन इतिगीतार्थसंगृहीतःसन्त्रयद्यमविदुपस्तः स्वादिदर्शनं तुसमदृष्टिरूपंन वैषम्यरूपत्वाद्भ्रान्तित्वात इतिध्ये यम् १

गौतममते यस्तुजीवस्सर्वाणि भूतानिआत्मनि एवानुलक्ष्य पश्यतिदुःखकरत्व दिना दुःखमयानि स्वस्यैतवापश्यति तथातश्च सर्वभूतेषुजन्तुषुतद्भावना परिपाकेनतत्सदृशस्वीयजन्मान्तरेषुता दृशसर्वभूतेषुचात्मानंसंभावयति मनापिभूतभावि जन्मसुममेस्वा



अथवा जो पुरुष योगी विशेष परमात्मा के आधीन सब सृष्टि को देखता हुआ अपनेको और भूतोंमें फलप्रदानमें साक्षि रूप से भी उस को देखता है वह उस परमात्मा साक्षि के भय से निन्दादि से दूसरे को कलश नही देता २

दोनों की एक वाक्यता मान कर चलने वाले नूतन तार्किकमत में ऐसा अर्थ होगा कि जो जीव परमात्माके अनुकूल सब भूतों को देखता है यानि जीव के अदृष्ट भोग के लिये पृथिवी जल तेज वायु प्रकाश पांच भूत उतपन्न परमात्मा ने किये जोमानता है और सब भूतों में भी आत्मा को (अदृष्ट वाले आत्मा के साथ संयोगको क्रिया हेतु होनेसे व्याप० यानि सर्वसंयोगी देखता है याने सभी अपने अदृष्टानुकूल की परमात्मा ने पैदा की हुई अपने अदृष्ट के अनुकूल भोगता है वो दूसरे को उसकी प्राप्ति के आग्रह से दुःख नही देता इसी से निन्दा द्वेषादि और उसके साधन उसके रोकन वालतक अपनी अदृष्ट विरुद्ध इच्छासे नही करता ३

दयानन्द मत में ऐसा अर्थ होगा कि संपूर्ण भूत जीवों को व्याप्य होने से व्यापक परमात्मा विराट्स्वरूप से देखता है

दुःखिनांएतेषामिव नरादिजन्मान्तर सत्वेदुःखनिया तस्यादिंति अतनदुःखनिति भावयतिततस्तद्दुःखाद्भ्यात्विजुगुप्सतांनिन्दाद्वेषादि दुःखहेतुभूतां नकरोतिसर्वभूतदया लुभंवतिइत्यत्मवद्धा परमेश्वर पप्रवेपि जीवेएवतदधीनानि सर्वाणिभूतानि पश्यति सर्वभूतपुवादृष्ट परापादिनकलग्रदानं साक्षितयापश्यति परमात्मान तमबंपश्यततस्तद्भयान्न बिजुगुप्सतनिन्दाद्युपलक्षित परकीयदुःखदान नशास्त्रीयत्वेन पापसाधनंतदुपायादि बनक

और उस को साक्षी देखता है वह उस से डरा हुआ जैसे राजा से डरकर साहस वगैरह न्याय विरुद्ध काम नही करते वैसेपरद्वेष निन्दादि दूसरे के दुःख हेतु काम नही करते ४

इस की समीक्षा व्याप्य व्यापक भाव जीव परमात्मा का युक्ति श्रुति और अपने मत के विरुद्ध है यह दिखा चुके हैं और मूर्ति देवपितर निन्दादि सकल शास्त्र दूषकरनेसेऔरसभमजहब काद्वेष करने से उनका मत वेद विरुद्ध खुदही बिचार होसकता है जिस भैरव की पूजा पद्धति को सुनकर भैरव राधा बल्लभआदि मत की व्यभिचार से निन्दा विख्यात करते हैं उन की तरह से शास्त्र पद्धति भी न मान कर उस विभिचार का नाम नियोग रख कर वेदों का नाम झूट और धोखे से लेकर अर्थ का अनर्थ बता कर शास्त्रार्थ करने तक उद्यम कर बेफायदा अपने को दुनिया में मूर्खता अपनी प्रसिद्ध करने को दयानन्द केवल लकीर के फकीर बनते हैं।

सांख्य मत में ऐसा अर्थ होगा कि जो सभ प्रकृतिसे पैदा हुए भूतों को उस के कारण रूप से आत्मा प्रकृति में देखता है और सभ भूतों में कारण सूक्ष्म रूप से प्रकृति को देखताहै और

करोतितद्वेषहेतु नितिमित्रवद्भेद भावनायतननेवाह सर्वत्रेतिश्लो यं सुधीभिः २

उभयो च्छिष्टताकिंकमतेयः सर्वाणिभूतानि आत्मनिजीवे परमात्मनिच अनुरो। धीनिपरमात्मात्मना विक्षृतोऽत्वादि तत्वा दितथाज्जीवस्या दृष्टभोगार्थानिचतथा सर्वभूतेषुचात्मानं व्यापक मुभयविधमेवत दुत्पादादिप्रयोजकक्रियाविशेषहेतुसंयोगवन्तंपश्य तिससर्वः स्वादृष्टंभुङ्क्ते इतिपश्यन्नदुः खाकरोति परंतद्वे तुद्वेष तत्साधना नियनाचरति इतिभावः ३

आपूरक (पैदा करने में शकल बदलनी पड़तीहै तोभसमें कमती अपने स्वरूप की न हो इस लिये उस पहले स्वरूप के भरने वाली मददगार) देखते हैं वह रजोगुण प्रकृति का स्वभाव ही दुःख है ऐसा अपने तुल्य दूसरों में जानते हुए दुःखी दूसरे को देख जैसे लंगडे वगैरह दूसरे को देख घृणा निन्दा द्वेष उपहासा दि दुःखद मूर्ख लोग काम करें वैसे दुःखद काम नहीं करते।

अथवा सभी भूत जब अन्तःकरण की वृत्तिसे विषय गृहीत हो चाने उन के आकार की वृति हो तब आत्मा का ज्ञान रूप का प्रति बिम्ब ही प्रकाशक होता है ऐसा समझते हैं औरउस प्रति बिम्बित आत्मा में आकार वाले अन्तःकरण के धर्म कर्तृत्वादि मानते हैं वह प्रकृति प्राकृत ही कर्ता है आत्मा बिम्ब रूप तो निर्लेप ही है ऐसा मुख्य आत्मा को देखते हैं वह बद्धादि भाव आत्मा के देखने वाले की तरह राग द्वेषादि उस प्रति बिम्बके भोग लोभ से नहीं करते।

सांख्य मत के कुछ अनुकूलता रखकरभी दयानन्दके मत से अर्थ होगा क्यों कि वह प्रकृति आदि सांख्य के पदार्थ भी

दयानन्द मते सर्वाणि आत्मन्येव परमात्म निष्ठा पके विराट्पुरुषं पश्यति तं चतत्रन्यायकारिणं साक्षिणंव्यापकं पश्यतिव्याप्योजीवः सततोभीतो दण्डादितः साहसादिभ्या यांपतकारो—नविजुगुप्सते परनिन्दावञ्चनादिद्रेषदुःखोपायंनक रोतीत्यर्थः संपादयितुंशक्यते ४

व्याप्यव्यापकभावानुपपत्तेःप्राणुपपादितत्वात्स्वमतविरो धस्य प्रदर्शितत्वादस्यायुक्तत्वमितिमूर्त्तिखण्डनभैरवादिनिन्दाचेतद् संमतार्थविरोधिनी त्यपि ध्येयम् तात्पर्यातथैव सांप्रमते यस्तु

मानता है वह यह है कि राजसादि प्रकृति के दुःख बहुल भूतों में सब जगह तुल्य आत्मा को देखता हुआ और आत्मामें उनके तुल्य समझता हुआ दूसरे को दुःख देनेवाले आचरण नहीकरता अथवा साक्षिरूप से सब जगह मौजूद न्यायकारी व्यापक ईश्वर को व्याप्य जीवों के देह में और सब भूतों को उस में देखता है उस व्याप्य जीवान्तर के रजोगुण परिणाम क्लेशके पैदा करने वाले काम उस साक्षी से डर कर नही करते १

व्याप्यत्व खण्डन बहुत दफा करचुके हैं इस से उस की समीक्षा हो ही चुकी और उस को प्रकृति मानना अपने मत के विरुद्ध अपसिद्धान्त दूषण का भी हेतु है क्योंकि परमाणु नित्य जब वह मानताहै तोफिर प्रकृति महतत्व अहंकार पञ्चतन्मात्रा की वृष्टि से परमात्माणु रूप भूत सूक्ष्म पैदा कैसे माना जासकेंगे उसे माने तो प्रकृति आदि से पैदा हुए परमाणुआदि नित्य कैसे सिद्ध होंगे इत्यादि पहले की तरह समझना और उस के मत में तो मुक्ति तक राग द्वेष भरा हुआ है अपने पुस्तक में किसी शास्त्र किसी मत के साथ भी मेत्र्य नही दीखता अगर कुछ है

सर्वाणिभूतानि प्राकृतानि आत्मन्येव प्रकृतावात्म स्वेनाधिगता यां पश्यति तथा सर्वभूतेषु तत्प्रकृतिमात्मानं कारणतदां ऽऽपूरकतयाच पश्यति ससर्वस्य तुल्यं रजआदिपरिणामो दुःखमितिमत्वात्म विजुगुप्सतेस्वस्येवपरस्यदु खदर्शीतिभावयद्वासर्वभूतानिप्रत्यागृहि ताका । राणिआत्मनिअन्तः करणेपश्यति तत्रचप्रतिबिम्बितयाआत्मधर्मचैतन्य पुरुषोपरागं सर्वभूतेषु आत्मानंनित्यं पश्यतिसगुण कर्तृतादूष्टयानकंचिदात्मानंपरंजुगुप्सतेस्वकर्तृत्वादिदर्शिनोहि रागद्वेषादि लक्षणदुःखतत्साधनोपायास्तदुक्तं गीतायांप्रकृतेःक्रि

तो चार्वाक के ही साथ है ।

योग मत में इस का अर्थ यह होगा कि जो समाधि स्थित सभ भूतों में सर्ववेत्ता आत्मा देखता है सभ भूतों को प्रतिबिम्बरूपके बस्त आत्मामें देखता वहयोगी जिस विषयका चिन्तन करता है इसी का सुखास्वाद गन्धरस प्रत्यक्षादि से कर लेता है इस से बेचाहा हुआ वैराग्य प्राप्त कर परनिन्दा से किसी के साथ राग द्वेष नही पैदा करता अथवा अणिमादि सिद्धि वाला सभ जगह खुद जासकताहै और अपने पास सभ वस्तु लासकता है तब से सभ अपने में आप सभ के पास यह देखता है इस से समाधि फल में अभाव की शङ्का योग की निन्दा आदि नही कर सकता ९

मीमांसक मत में इस का अर्थ यह होगा कि जो सभ भूतों को विधि विशेषण रूप से जानता हुआ उस वाक्य के अनुसार स्वर्गादि कामना योग करके उन के फल पर लोक सुख स्वर्गराज्य को राजास्वा राज्य को प्राप्त कर स्वाधीन अदृष्टाधार समझता है और आत्मा को सभ भूतों में नित्य जैसा सर्व

यथापाणिनुवैः कर्मोविसर्वेष: महंकारविमूढात्मा कर्ताहमितिमन्यते इतिभावोध्याय:५

विद्वांनभिनुमते यस्तुसर्वाणि प्राकृतानि प्रतिबिम्बैर्दुःखजातानि पश्यति सर्वभूतेषुच तमात्मानंतुल्यं पश्यति प्रतिबिम्बान्तःकरणे वचनविलुप्तात्म दृष्टिविलक्षण स्ततस्सध्यं रागद्वेषादि कंनाचरति नजुगुप्सते इतिभावः ६

एतदानुकूल्येन दयानन्दस्यमतेराजसादिदुः खबहुलभूतेषुसर्वत्र वर्त आत्मानम् आत्मनिवातेषां तुल्यंसक्नरीहितत्वं मत्वातदीयरा

का स्वरूप वे मानते हैं वैसा देखताहै उस से जन्मान्तर लोकान्तर भोग को देखता है चार्वाकादि की तरह वेदों को निष्फल और वेदों के कहे का न होसकना आदि दोष दुष्ट झूठ परस्पर विरोधादि से भरा बताते हुए निन्दा नही करते ।

शङ्कराचार्य का हमारी टीका के अनुसार इस अभिप्राय से वेद का अर्थ होगा कि जो परिब्राट् याने जो युगान्तर में विविदिषा (मोक्ष के कारण ज्ञान की इच्छा से) संन्यासी हुआ कलियुग में और युग में भी जो सभ पदार्थों में आसक्ति आत्मा कीनही यानेमिथ्या पदार्थ का परमार्थ सत्यके साथकुछभी संबन्ध नही यह जानने वाला वैराग्य ज्ञान युक्त मोक्ष की इच्छा वाला यथापि भी भूत पूर्व मुमुक्षु ज्ञानी भी व्यक्त अर्थात हिरण्यगर्भ से लेकर सभ भूत स्थावर वृक्षादि पर्यन्त आत्मा की मिथ्या उपाधि है ऐसा देखता हुआ अपने आत्मासे अतिरिक्त देखता हुआ उन्ही सभभूतों में आत्मा को देखताहै याने जैसेअपनेदेहके कार्यकारण संघातका साक्षी जाननेवाला वस्तुतःकेवल प्राकृतगुण रहित स्वरूप से विषय है इसी तरह और सभ व्यक्त से लेकर

व्रतादि दुःखबहुलाचरणं परक्लेशावहं नाचरति न विजुगुप्सते पञ्चा

वाक्षितयाऽवस्थि तंप्रकारिण मीश्वरंव्यापकं व्याप्य

जीवंवंवेषुसन्तं तथाऽव्यात्मानि सर्वभूतानितत्रस्थापश्यतिसराजसा

दिपरिणामदुःखादि बहुलव्याप्य तत्साक्षि दर्शिसाक्षिभीतः स्व

रिमन्निवराजस रागद्वेषादिजं दुःखतत्साधनोपायं नाचरतिन विजु

गुप्सते इति भावः अत्र समीक्षा व्याप्य जीवानुपपत्त्या नित्य

परमाणु वादिनाते मप्रकृतेः स्वीकारस्या युक्तात्वाच्चवेदान्ति

वत्परिच्छिन्न पाधिकस्य प्रतिबिम्बतया परिच्छिन्नस्य जीवपदवा

——— :o: ———

स्थावर पर्यन्त का भी वैसा ही आत्मा हूं यो मनुष्य इसी ज्ञान

से घृणा रहित होते हैं यह बात प्रत्यक्ष है कि अपने स्वरूप से

भिन्न देखने वालें को ही घृणा होती है जो आत्म स्वरूप ही

समझे जानें तो दुःखी मलीन आदि देख उसकी घृणा से निन्दा

आदि क्यों करे जो उस में भी निर्विशेष ही आत्मा देखेगा

तो धर्म दोष से आत्माका दोष मानता हुआ धर्म स्वभाव अपने

तुल्य देखकर घृणा निन्दा कैसे करेगा इस में आत्मा निर्लेप है

शारीरक होते हुए भी मिथ्या हैं यही बतानेमें तात्पर्य है यथेष्ट

बुरा आचरणमें दोष नही ऐसा नही बताते क्योंकि प्रारब्ध वश

में पड़े हुए कितना भी वेदान्ति हो उसे शरीरक व्यापार का

तो मिथ्या रूप से होते हुए का देखना होता ही है नही तो

कुत्ते के बरोबर क्यों नही उसे समझा जाय यदि केवल वेदान्त

का फल विष्टा को हाथ लगा कर नघोना ही हो तो वो तो

कुत्ता भी करलेताहै इसी से ऐतरेय आरण्य कादि पढनेसे ब्रह्म-

चर्य में भी वेदान्तोपदेश प्राप्त हुआ तो गृहस्थादि व्यवस्था

कैसे होगी इस से ब्युत्थान समय के किये हुए पुण्य पाप शास्त्र

च्यस्याज्ञानि माह्यस्यस्वीकारे तन्नित्यत्वस्वीकार विरोधात् भक्त: करणभेदेन तस्य समस्त्वा संभवाच्च व्यापकस्यतन्मते ऽकर्तृत्वेन न्यायकारित्वा संभवाच्च सृष्टिक्रमपन्तरा तत्साध्यभोजकत्वा संभवात् कर्तृत्वेजीव स्कतन्त्र्याद्युपगम विरोधाऽदि दोषाच्च स्वयंविभाव्या पूर्ववत्समीक्षकयं तोनात्स्यमुक्त्यन्त मपिरागद्वेषत्या ग: सम्मतस्तत्रापि तथालेखात्स्वयं यथार्थाकातिमा प्रदर्शनाच्च निन्दाविरोधि वेदमतनकदापि पूर्वेशमतान्तरणरिक्ते नकेनापिप्रा स्वीयेनवाप्रे इति भाव ६

रीति से शरीर से किये शरीर स ही जरूर भोगने पड़ते हैं इससे शास्त्री या चरण पद्धति पर ही चलना वाजिब है १२

माध्व मत में इस का अर्थ ऐसा होगा जो जीव राजा केशिपाही वगैरह की तरह अंश भी उस के उससेसे भिन्न उभी भगवान् कृष्ण हार के अधीन ही सभ को देखता है और सभ में उसको देखता है और सभ में उसको स्थित ही समझता है वह उस से डरा हुआ उस की भक्ति कीही अभिलाषा करता है उसक क्रोध से डरा हुआ (यान कोप नहो इसवास्ते) कहीभी निन्दितकर्म हिंसादि और द्वेषादि निन्दा नही करता १३

भट्ट भास्कर मत में ऐसा अर्थ होगा कि जोव आत्म स्वरूप से नाना सभ हरि के अधीन और उससे साकल्य रूपसे अभिन्न ही समझता है और सभ भूतों में तीनों कालों में अभेद रूप मुक्ति देखने से पहले परमार्थ सत् भेद को देखने वाला है वह अभेद ज्ञान से अपने तुल्य सभ के दुःख देखने वाला सभ का दुःख अपना ही मानता हुआ परमात्मा का दोष समझ कर भेद से दुःख के हेतुओं को हटाने के ही आचरण करता है उस के

योगमतेयत्तु समाधिस्थ सर्वं भूतेषु आत्मानं सर्वविदं पश्यति सर्वभूता निचआत्म निवृत्ति सारूप्य काले पश्यति विषयनिवर्त्तिनी चारित्यति रिति मूत्ररीत्या सप्राप्त पुण्यत्वाद्वैराग्याभ्यासेन रागद्वेषादिलक्षणदुःखतत्साधनजुगुप्सांमाचरति न विजुगुप्सते यद्वाऽणिमादि सिद्धिः सर्वत्रत्वयं गन्तुमात्म निष्कामेतु ज्ञात्वोत्तिमतो विजुगुप्सां समाधिफलसिद्धिराहित्यादिक मित्यादिबुद्धिमाचरतीति संभवति भावः ६

बढाने के निन्दादि नही १४

निम्बादित्य के मत में ऐसा अर्थ होगा जो जीव व्यवहार काल में रज्जु में सर्प की तरह विवर्त्त (जो झूठ ही माया से एक वस्तु पर और वस्तु भ्रान्ति काल तक बन जायें) उस रूपसे भिन्न ही सभ भूतों को परमार्थ सत् अभिन्न आत्मा देखता है और जीव रूप से विवर्त्त माया और अभिन्न मुक्ति रूप भगवद् भक्ति दीक्षासे सभ भूतोंमें बद्धमुक्त जीवन्मुक्त साधारण विवर्त्त भिन्ना भिन्न दुर्वीदया के व्यादह होने से वैराग्यवान् किसी के निन्दित उद्देश करके द्वेष निन्दादि दुःख संपादक कामोको नही करता १५

रामानुज के मत में ऐसा अर्थ होगा कि जो स्थूल चिद् रूप आत्मा विशिष्ट सभ भूत सूक्ष्म चिद् जड विशिष्टा द्वैतरूप अनुगत कारण रूप आत्मा में देखते हैं सभ भूतोंमें कार्य रूपोंमें चतुर्व्यूह नारायण विशिष्टा द्वितीय अपने स्वरूप को देखते हैं सभाश्रय पूर्व निरन्तर भगवद्भजन रस संसिक्त हृदय बडे कोमल दया मय हृदय वाले वीतराग किसी के दुख देने के काम नही करते १६

मीमांसक मते यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन विधिविषये पश्यति तदधीनानि तथाहि विधिविशेषात्मन विधानेनानुष्ठितस्वर्ग पश्वाराज्यादि कामयागादेः सकल स्वाधीनताहि वैधफलं श्रूयते तथात्मानं सर्वभूतेषु नित्यं पश्यति तेनयं जन्मान्तर लोकान्तरादौ विहृयथा भोग संभवं पश्यति स न चार्वाक नास्तिकवद् दानांकला यंभवादि दोषैरनृतवादा दिभिर्विजुगुप्सते इतिभावः १०

यां यस्तु परिव्राड् मुमुक्षुः सर्वाणि भूतानि अव्यक्तादीनि स्थावरान्तानि आत्मन्येवानु पश्यत्यात्म व्यतिरिक्तानि न पश्यति इत्यर्थः सर्वभूतेषु च तेष्वेव तथात्मानं तेषामपि भूतानां स्वात्मानमात्मा

वल्लभ मत में इस का अर्थ यह होगा जो सब जड़ चेतन भूतोंका परिणामि उपादान कारण चिद्रूप नित्य शुद्धाद्वितीय लीला विलास के लिये अनेक विग्रह प्राप्त हुआ आत्मा कृष्ण देखते हैं और उस कारण में कार्यरूप से अभिन्न ही रूप से उस कृष्ण आत्मा शुद्धाद्वितीय को सब में जानते हैं वे दूसरे का दुख भी अपना उस भगवान् की अप्रसन्नता करने वाला निन्दा द्वेषादि कुत्सित आचरण नही करता क्योंकि शृङ्गार प्रेमरस से भरी पुष्टि पुष्टि भक्ति में समाश्रित को जरा सा भी दुख देना स्वीकार नही करता।

नकुलीश पाशुपत और शैव मत में ऐसा अर्थ होगा कि जो सब भूतों को आत्मा पशुपति के अधीन समझता है और सब भूतों में यद्यपि पशु बहुत से होते हैं तथापि लाठी से एक ही मनुष्य पशुपति उन को सीधे कर लेता है इसी तरह रहस्य दण्ड देने जानने वाला साक्षी रूप शास्ता परमात्मा को स्थित समझते हैं वह सब एक स्वामी के समाश्रित पाशुपत सबके स्वाम

त्मत्वेन यथास्य देहस्यकार्यं कारण संघातस्या ऽऽत्माहं सर्वप्रत्यय साक्षि भूतश्चेतयिता केवलो निर्गुणा ऽनेनैवस्वरूपेणाव्यक्तादीनां स्थावरान्तानामह मेवात्मेति सर्वभूतेषु चात्मानं निर्विशेषं यस्त पश्यति सततस्तस्मादेव दर्शनान्नविजुगुप्सांते विजुगुप्सांघृणांन करोति प्राप्तस्यैवानुवादोयम् सर्वाहिघृणा ऽऽतोन्या दृष्टंपश्यतो भवत्यात्मान मेवात्यन्त विशुद्धं निरन्तरं पश्यतोनघृणा निमि मर्थान्तर मस्तीति प्राप्तमेवत तोनविजुगुप्सत इति । ६ । ११

टी॰परिव्राड् युगान्तरे विविदिषा संन्यासी कलौचगृहेएव परित्यज्यासक्तिं वावृत्ति बाधसमानाधिकरणैतद् दर्शीविरक्तोवा मुमुक्षुः मोक्षेच्छावान् अज्ञानी ज्ञानीच भूतपूर्वमुमुक्षुरिह परमनि र्विशेषे मिथ्या त्वस्योपाधावव लोकनेनसकल धर्मबाधरूपाश्रयं सर्वत्रपश्यति इत्यर्थः घृणामिति दुष्टतादि भावमुपाधि वृत्तिप्रति योगि तयावर्तमान मात्मनितद्बाध दर्शनेन पश्यतीत्यर्थः ब्रह्म- चर्यैएवऐतरे यारण्यके तत्पाठसमये वेदान्त ज्ञानेन वेदान्तिमः प्रारब्ध चक्रानुसारिणभाग्या धीननिवृत्त्य भावेगृहस्थादिकाश्रमे षु धर्माचरणादेः शास्त्रविहितस्य व्यवस्थाकारार्थं मुपाधि विशि- ष्ट यथावद्व्या वहारिक धर्मवत्वं प्रतियोगितया वश्यमेव स्वी कार्यं तत्रधर्मशास्त्र विरुद्धघृणा भावसंपादने तुनशास्त्रता त्पर्य मतएव विनिश्चीत स्वतत्वस्य यथेष्टाचरणं यदिशुनां तत्वदृशांचे वेत्यस्यापि एषएवार्थ उपाधौ घृणावा तत्रद्योग्ये चतद्भावबुद्धौतु भ्रान्तत्वापत्तिर्वैषम्यं चस्यान्तुसन्दृष्टि रितिप्तप्तम भूमिका यांस्त्रीयनिरोध दशायां चयथेष्टा चरणस्यै वकारिता शुचिभक्ष णादौनदोष संभवो वनप्रस्थादीना मितिस्त्वन्यत धर्मशास्त्रानुसा रित्वात् इति ध्येयम् १२

माध्वमते यस्तुसर्वाणि भूतानि आत्म निपरेहरौ अनुअनु गतानि तदधीनान्येव पश्यति सर्वभूतेषु चात्मात्मानं' द्वासुपर्णेति श्रुत्या संवादात्स्थितं पश्यति सततस्तद्भी तस्तद्भक्ति सेवाभि लष्यति नचतदीयको पमाशङ्कमानःकुहापिविजुगुप्सांनिन्दितं कर्महिं सादिलक्षणं तत्प्रयोजक द्वेषपीडा निन्दादि कान्नाचरति इति अनयापरो भगवद्भक्तस्य दयालक्षणो धर्मइतिअभेद भाव नावा बोध्यते इति ध्येयम् १३

भट्टभास्करमते यस्तुसर्वाणि भूतानि आत्मनि अनुएव पश्यति सप्तम्यऽभेदः प्रत्याय्यते एवशब्देनात्म सामाना धिकर-ण्यादभेद उच्यते तथाचात्म भिन्ना निङ्घर्या तत्नाधीनानि तदभि न्नान्येवच पश्यति तनत्रैकालिका भेदमुक्तिप्राक्कालिक परमार्थ सद्भेद दर्शिन मात्मानं भिन्ना भिन्नं सर्वभूतेषु पश्यति सोऽभेद ज्ञाना दिनास्वतुल्यदुःखदर्शितया स्वमेवदुखं मन्यमानःपरमात्म रोपंभेदेन दुःखहेतु भूतमपा कुर्वन्नेवनाचरतिन विजुगुप्सामा चरति निर्दयत्वादि रागद्वेषव्यापारं राजसंसात्विको भगवद्भक्त इति भावः १४

निम्बादित्यमते यस्तुभिन्ने विवर्त्तो रज्जुभुजङ्ग वद्व्य वहारकाले परमार्थ सत्येवाभिन्ने आत्मनित्रिकाले सर्वाणि भूता नि पश्यति जीवत्वेन विवर्त्त भिन्नत्वाच्च मुक्तस्वरूप भगवत्त्व ति भक्तिदीक्षया तथात्मानमेवं भिन्नाभिन्नं पश्यति सर्वभूतेष्व सौ दयाबाहुल्य वैराग्यादि भिर्नकमप्युद्विदश्य रागद्वेष भरसंपा दि तोनेतान्त दुःखावहं निन्दादि लक्षणाज्जुगुप्सितं कमाचरति इति भावः १५

रामानुजमते यस्तुसर्वाणि स्थूलचिद्रूपाणि विशिष्टानि

भूतानि सूक्ष्मचि द्विशिष्टाद्वैतरूप आत्मनि अनुपश्यति कारणा त्वेलदनुगत रूपकाणि पश्यति सर्वभूतेषुच स्वकार्येषु आत्मानं नारायणं विशिष्टाद्वितीयं स्वंपश्यतिसर्वाश्रितवरोनितान्तभक्ति रससमासिक्त स्वान्ततयाऽतितमार्द्र शिरीषमृदुलम हृदयोदयामा त्र परायणो बीतरागोन कस्यचिद्दुखा वहांनिन्दादि लक्षणांजुगु प्सामाचरति इति भावः १६

बल्लभमते यस्तुसर्वाणि जडचित जीवजातानि भूतानि आत्मनि स्वपरिणा म्युपादाने नित्यचिद्रूप शुद्धाद्वितीये हरिलीला बिलासार्थ धृतानेक विग्रहसंसारे सोरतमे पश्यति का र्यरूपेणा नुगतानि सर्वभूतेषुचा भिन्नमेवकार्यकारणा भेदात्मा नं हरिमेव शुद्धाद्वितीयं तेनपरदुःखंनिज मेवमन्यमानोन तस्मै धनरागद्वेषो पयिकनिन्दादि कुत्सिताचरणा निचाचरतिपुष्टि पुष्टिभक्त्या कृष्णमेव समाश्रितः शरणतयाप कत्रापिभक्ति रसो पकरणजातेषु साधारणजनवज्जा तुमनागपि विदधाति घृणामि तिहृदयम् १७

नकुलीशपा शुपतमते यस्तुसर्वाणि भूतानि आत्मनिस्वा मिनिनिजे ऽधीनत्वेना नुकूलानि पश्यति यद्यपिविमुखाबहवःपश वः कियन्मात्रास्तुते पतिरहिता एकेनखलुलगुडेन पृष्ठपातिना शक्यायये च्छमभिवर्तयितु मितिरहस्यदण्डि नमात्मानमेवपशु

से डरा पशुपति नाथ के भक्ति रस से सिञ्चित हृदय दया मूर्ति दूसरे केदुःखके उपाय निन्दा कुछनहीकरते और भक्तिकेउपायों में कुछ भी घृणा नही करते अगर शुरांमांस से ही मुक्ति मिल जाय तो उस से रहित भक्ति में क्यों जायें ऐसा माधव ने सर्व दर्शन में भगवान् के शिवगणके संवाद का भी उत्तर दिया है इस

वति सर्वभूतेषु साक्षित याशास्तारं स्थितं पश्यति ततस्तदेक स्वा मिकत्वान्नदी यन्यायभीतस्तमेवानु पालयपाशुपतः शैवश्चनविगुप्स तेनपरदुःखावहोपायं समाचरति नितान्त दयार्द्र स्वान्तोन्यायानुकू लवर्ती नवाचरति क्वा-पि भक्तिगम्योपायेषुर्दम्भमात्रमपि घृणा कदाचिन्न दुक्तमेतदर्थं संगृहीत्वा मुक्तिर्भवेतिपशितमांसनिषेवनेनं इति पञ्चभूतानि ।

तेषुचसंस्थित तत्वेनभगवतः पञ्चवक्त्रमूर्त्तिश्च जगदाकारा व्य ज्यते इति ध्येयम् १८

माहेश्वरमते यस्तुसर्वाणिभूतानि आत्मनिअनु तदधीनानि स्वादृष्टा नुसारेण तच्छास्यानि नतुपाशुपत वददृष्टमन्तरा तथा तमेव परमद्वितीय शिवतत्वमात्मानं सर्वभूतेषु साक्षितया शास्तु तयास्थितं पश्यति ततो नविजुगुप्सतेन घृणांनिन्दादिरागादि कदुःख तत्साधन भूतांना चरतीत्यर्थोऽन्यत्पूर्ववत् इति ध्येय म् १९

प्रत्यभिज्ञादर्शन शाम्भवमते यस्तुसर्वाणि भूतानिआत्म

मन्त्र में सर्व भूत स्थित कहने से भगवान् की पञ्चवक्त्रमूर्ति है यह भी प्रकट होता है क्यों कि तत्व पाञ्च हैं १८

माहेश्वर मतमें इस का अर्थ यह होगा किजो कुछजीव आत्मा महेश्वर के अधीन याने अपने अदृष्टानुसार ही उस के दिये फल भोगने वाला पाशुपतादि की तरह केवल उस की मरजी से नही और उसी अद्वितीय शीव तत्व को सभ भूतों में भिन्ना भिन्न साक्षी रूप से शास्य हो कें स्थित देखता है वह घृणा निन्दा से दूसरे के दुःख साधन आचरण नही करते १९

प्रत्यभिज्ञा दर्शन शाम्भव मत में इस का यहअर्थ होगा कि

संविद्रूपेस्पन्द रूपकार्यात्म कतयास्थितानि पश्यति सर्वेषु भूतेषु चात्मानं गूढागूढ चिरवयात्म्यात्म कसंविद्रूपेकारणतया संस्थित मध्पश्यति ततोनविजुगुप्सतेन घृणांकरोतिकामपि भक्तिसाधनो पयिकां यथानियोगं शास्त्रस्यनच विफलम शास्त्रीय परकीय राग द्वेषादि लक्षणां निन्दादिकांनुगुप्सां नाचरतीतिभावः २०

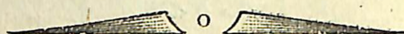
शाक्तमते यस्तुसर्वाणि भूतानि आत्मनि गूढलिङ्गा गूढ लिङ्ग रूपेसीपुगाये मायावच्छिन्न चिद्रूपेशक्ति तत्वेअनु पश्यति सर्वभूतेषुच तमात्मानं सखमात्रेणपालितो जगदम्बयानघृणांकचि द्विषयेकरोति जगदम्बाहि अस्यसकल साधयित्री अभीष्टफलदेह

जो जीव संपूर्ण भूतों को स्पन्द होने से कारणात्मा संविद्रूप में स्थित देखता है औ स्पन्दात्मक भूतरूप सभ कार्य आत्मा में कारण रूप से स्थित उसी गूढा गूढलिङ्ग शिव शक्त्यात्मा परमात्मा संवित्तत्व को देखताहै वह घृणा किसी भी शास्त्रीय काम में शास्त्रों के लेख के मुताबिक नही करता जो भी जैसा भी शास्त्रसे मिलताहै उसको छोडना कभी अच्छा नही समझता उस से राग द्वेष निन्दादि दूसरे के दुःख देने वाले काम कभी पसन्द नही करता २०

शाक्त मत में इस का अर्थ यह होगा जोसभ को गूढलिङ्ग पुमान् और अगूढलिङ्ग स्त्रीरूप आत्मा भूतों को मायावच्छिन्न चिद्रूपशक्ति तत्व में देखता है और सभ भूतों में उस आत्मा को देखताहै वह अपनी माईकी तरह जगदम्बासे पालित किसी विषय में घृणा नही करते जैसे माई को बेटे को विवाह स्त्री के साथ एक मकान में गृहस्थार्थ बन्द करा देना इत्यादि कार्योंसें लज्जा नही घृणानही करतीउसके सामने नग्नखेलता रहाहै इसी

परत्रत्यदि व्यान्भोगान्भक्ति फलभूतान्माहेवपुत्रस्य विवाहादि कार्यान्अकपटंसंपादयति इतिनमात्रग्रेयथा लज्जाघृणादिकवचि द्विधयेन तथाजगदम्बिकासमक्षे तद्भक्ति शीलस्येति भावः २१

साहित्य मतेयःखलु सर्वाणि विभावानु भाव संचारिभावा स्मकानिरसात गुणानि आतम निस्थायिरित्यादि भवावच्छिन्न चिदखण्ड रूपेपरमात्म तत्वे रसेऽनुगता निकारणकार्यात्म नास्वा भेदेन भेदापो हेमानुगतानि पश्यति सर्व भूतेषुअनु कर्त्राभि व्यक्ति मापादितेषु राम सीता दौस्वात्मलयाऽङ्गाङ्गि भाव ववतस्वस्वीया दिभावेन पश्यति रससयोऽसौहरि कीर्तनादि



तरह वह जगदम्बा भी उस में घृणा नही करती और भक्ति शील को भी उस के सामने किसी तरह की भी लज्जा नही २१

साहित्य मत में इस का अर्थ यह होगा जो प्राक्तन पुण्य शाली जीवविभाव अनुभाव संचारि भाव के अनुगत सभ भूतों को स्थायि रत्यादि भाव विशिष्ट अखण्ड चिद्रूप परमात्म तत्व रस में कारण कार्य रूप लौकिक आत्मीय रस उस के कारणादि विभावादि को अभेद से भेद को हटा कर समझताहै और प्रपानक रस न्याय से विभावादि की समुदायविशकलित मिश्रित प्रतीति को रस रूप से सभ भूतों में अनुगत देखता है वहहरि कीर्तन आदिमें गतीवाद्यध्यानादिमें आसक्त कृष्णनेंजैसे गोपी रही उसीतरह तत्परहोच्युत होना और परद्रोहादिसे वृथा कालयापन निन्दादिसे दूसरेको दुःखदेना इत्यादि नहीकरते २२

अब यही समीक्षक विचार है कि जो आतमा एक वस्तु नाना विकल्प (ऐसा हो वाऐसा हो) नही बन सकते एक वस्तु माया से ध्यान से कई चाल भी कह सकते वास्तव से नही इस

नानकश्चिद्विरस भक्ति विशेषे परमात्म नाम गान ध्यान संव लिता गोप्य इव कृष्ण रूप भक्तौन विजुगुप्सामाचरन्तिनिन्दा घृणादि कर्मबिदधति इति भावः २२

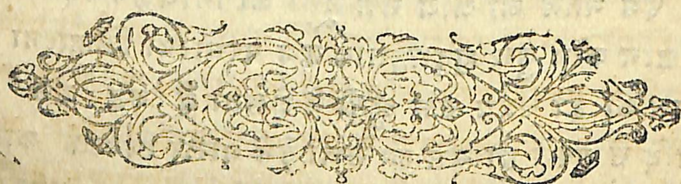
अत्रेदं समीक्ष्यं यदात्मनएकस्य वस्तुनोनाना विध विकल्प विषयतान युक्ति सहानादेक त्रैयस्थिरता युक्ति शास्त्रो भयवेद्य त्व तुल्यत्वात्किन्तु जगन्मातुः शिव विष्णु रूप ब्रह्म रुद्रादिक्रमे ण सृष्टि रिति सृष्टि क्रमे एकस्यपरमात्मन एक वाक्यतयाशास्त्रा णामुत्पादकत्वनदृष्टंतथापियस्तुसर्वाणिभूतानिनिर्विशेषात्मपर्यव सायि बाध प्रतियोगितयाभात्मनि जगत्स्वरूपावतारभेदेऽविशुद्धा

से जन्मान्तर से सभ प्रकार की सृष्टि शिव बिष्णु ब्रह्मा रुद्रादि क्रम से होसकती है इस के बिना और भेद बाद व्यवहार मात्र कई प्रकार से होता भी वासतव से नही विशेष्यांश में और विशेषणांशमें भी व्यावहारिक प्रत्यंशभेदसमुदयांश भेद प्रतीति सिद्ध है उस में भी समुदायाति रिक्त अवयव नही।

यही भाव सभ की एक वाक्यता के लिये उपासक काण्ड में मानना उचित यद्यपि अवयवातिरिक्त समुदाय नही इस अपेक्षा से भेद भी है परन्तु यह भेद सर्वशास्त्र सम्मत नही प्रथम दृष्टि पामर साधारण शास्त्राति रिक्त व्यवहार मात्रोप योगीहै इस मतमें जो जीव सभ भूतों को निर्विशेष पर्यवसायि धर्मैश्वर्यज्ञान काम सुख शुद्धाद्वितीय रूप परमात्मा भिन्नात्मा में और उस को ही सर्वत्र सभ भूतों में देखता है वह सभ की समर्थ्यादि से युक्त हो सभ का सत्ता देने वाला विवर्त्त कारण रूप आत्मा में सकल देव प्रत्यभिज्ञा से सर्वदेव समात्म दृष्टि पक्ष पात रहितघृणा किसी भी शास्त्रोपदेश में नही करता किस

द्वितीये विशेषणं संपद्रूप शिवशक्तिलक्षणपदार्थ भैरवस्वरूपात्मकत्वेन
तस्मानर्थं नियोज्यत्वादि रूपस्य सोऽह मिति भावयतः स्वात्मयथा
तांविशेषनन्तद् वृत्तिधर्माणामंशांशिभावेन—ज्ञातसामर्थ्यो विकया
सांचतद्विवतद्रूपतयाऽद्वितीयत्वेन चिन्मात्रस्य वस्तुतोऽद्वितीयत्वे
नविशेषण रहितशुद्धाद्वितीये पश्यति स्वात्मन्येव परमात्मनि तं च
तथाविधं कारणत्वेनाश्रयत्वेनसत्ताधायकत्वेनन्यूनाधिक विशेष
ण सामर्थ्या भेदेऽपिबाध प्रतियोगितयाभासमाने पश्यति तथास
वंभूतेषुनसतो विजुगुप्सते व्यायाभिक्त प्राड्विपाकादिरिव निष्प
क्षत्वान्नास्य निन्दातथापरात्म भक्तस्य क्वचि दपि देवे पक्षपातो
घृणानिन्दा रागादिवं वा जायते दुःखकरान लौकिके षु जनेष क्व
ापि हिंसा न्यायरूपशास्त्र विमुखा दयापरस्येति भावः २३

शास्त्रोक्त की निन्दा नही करता किसी के साथ राग द्वेष नही
करता सब देवोपासकों में सहानु भूतिसे प्रतीत होता है ऐसा
ही आत्मीय पदयामय उपदेशो से उन के भी पक्षपात हटाने से
नास्तिकों से बचाने का उद्यम करता है २३



यस्मिन्सर्वाणिभूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः
तत्रकः शोकः कोमोह एकत्वमनुपश्यतः ७

यस्मिन्निति काणादमते यस्मिन्काले सर्वाणि भूतानि आ
त्मैव समदृष्टि तयास्वस्येव दुःखसाधनो यनिपाते परदुःखदर्शितया
यदृशानि भूतानिइतिअभूत्तथाविजानतः यद्वापरमात्मा साक्षि
तया ऽदृष्टस्य नियामकः सर्वत्रेति अधिष्टेयाविनाभूतत्वात्संसारे
देह आत्मेतिवत् सर्वभूतानि परमात्मैव विजानतो ऽभूतअभेद
भावनयावा दृश्यपर्यवसायिना सादयधिष्टान पर्यवसायि वात
यदृशायांस्वादृष्टवशेन नियन्त्रधीनत्वात्स्वेतरदुःखादिप्रदाभावा
त्तत्रकःशोकमोहादिरीतिभावःएकत्वंपरमात्मतअभेदादि भावहेतु
भाव भावनया सूत्रंतचैनिश्शोक एवेतिवाएकत्वम यद्वाऽनुपश्यत

कणाद मत में इस का यह अर्थ होगा कि जिस काल में
सब भूत समदृष्टि होने से अपने तुल्य होगये याने दुःख सामग्री
दूसरे की होने से अपने को जैसे दुःख हो वैसे दूसरे को भी समझ
गये अथवा परमात्मा साक्षी होकर सब जगह मौजूद समझ कर
दूसरे को दुःख देनेसे हटगये अथवा अभेद भावनासे देहआत्माह
स्थूलः मेरा देह मोटा है वही आत्मा है ऐसा लोक प्रतीति की
तरह आत्मा ही सब में भावना पक्की तो दुःख देने वाला
नहोने से शोक मोह दूसरे को नहोंगे उसी से अपनेको पापादि
शङ्का से वे नहोंगे इसी तरह बुरी दृष्टि इस की नही अपने
तुल्य ही यह हमको समझता है इस के साथ द्वेष नही करना
ऐसी बुद्धि होने से कोई दुःख उसे भी नदेगा तोशोक मोह अपने
को भी नहोगा और परमात्मा को साक्षी होने से अदृष्टानुसार

शोश्चशोकतद्धे तु रनित्यभाव्य मात्रदृष्टे स्वरवदृष्टे रागद्वेषाद्य भावाश्चेति भावः १

गौतममते यस्मिन्नुत्कृष्टजीव रूपयोग समाधि जैश्वर्यंव शीश्वरे अनुअधीनस्तस्यं सतिअधिष्ठातरि शासकत्वा दात्मैवा मूत्केवलात्मा विजानतइतरर्भिन्नत्वेन विजानतःएकविंशति संसार दुःख विमुक्तः यथाशास्त्र माचरतश्चारम विज्ञानान् मुक्तोएक त्वएकविंशति दुःखरहि तत्वेन केवल मात्मान (मनुपश्यतः) कः शोकःदुःखमेकविं शतिधा जन्मरूपं कोमोहस्तद्धे तु भूतश्च प्रवर्त्त ना लक्षणा दोषास्तेषांमोहः पापीयानामूढ स्येतरोत्पत्ते रिति

फल दाता होने से नही घबराता यथार्थ प्रारब्धानुसारि यथा प्राप्त परसंतुष्ट होता है उसे शोक मोह नही होता १

गौतम मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस उत्कृष्ट जीव रूप योग समाधि के ऐश्वर्य वाले अधिष्ठाता शासक होते केवल आत्मा इतर देहादि से भिन्न होगया याने भिन्न रूप से जान कर एकविंशति दुःखनिर्मुक्त दूसराशास्त्र ज्ञानशास्त्रानुसारी आचरण करते हुए जीवन्मुक्ति क्रम से मुक्त होगया उस दशा में केवल आत्म रूप होगयातब फिर रागादि अभावसे पुनर्जन्म और कार्य शरीरादि रूप दुःख का कभी संभव नही तो उन से पैदा होने वाले शोकादि दुःख कहां से होसकते हैं यही बात न्याय सूत्रों में प्रकट की है उन्ही दोषों को रागद्वेष मोह रूपों को ही प्रवर्त्तक कह कर सभ से मोह को ही बडा भारी पाप कहा क्योंकि मोह के बगैर रागद्वेष भी नहीहोते फिर रागहेतु कई जन्म पर्यन्त सिद्ध हुआ और पीडा रूप दुःख भी जन्म होते ही होता है इस से उस के अनुकूल प्रतिकूल में होते हैं उन से

सूत्राभ्यां मोहहेतुक प्रवृत्त्यादिना दुःखं जन्मबाधन लक्षणामिति तदुक्त सूत्रभाष्य लक्षितंगौणत्वे कथिंचलिघा भवति तत्वविदो मुक्तत्यव स्थायां मोहा भावस्तद्धेतुकः शोकोजन्म नभवति तद्-त्यन्त विनोक्षो पवर्ग इतिसूत्रेण छिन्नपुनरावर्त्तते इति श्रुतिसं वादा दपुनरा वृत्तिर्बोध्यते इति ध्येयम्—२

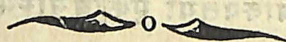
उभयोच्छिष्ट तार्किकमते यस्मिन्सर्वाणि भूतानि जीवात्मानि आत्मैव ममात्मा देवमित्र इतिवदात्मैवा भूत्परमात्मा कृष्णचन्द्रादिः तत्रतद्व स्थायाम भेदभावनया निरञ्जनः परमंसा म्य मुपैतीति श्रुत्येक वाक्यतया एकत्वंसाम्यं भाविमुक्त्यव स्था

ही सृष्टि होती है जब तक वह नही हटते तब तक रागद्वेषादि चौबीस प्रकार की प्रकृति होते दयानन्द की नवमुल्लास की मुक्तपदवी के धोखे में वेदों में से नियोग मात्र गन्दे काम का ही निकालना तो मुक्त पदवी समझना किसी दार्शनिक की अकल के भीतर नही समाता वही राग द्वेष नष्ट हो जायें तो ही मुक्ति शब्द का प्रयोग हो सकता है इसी से इस प्रकार से ही मुक्ति शब्द का प्रयोग हो सकता है इसी से इस प्रकार से दुःख रूप जन्म से अत्यन्त जिस का नाश नहो (अन्तनाश अति नहो) वही मोक्ष है यही मोक्ष का लक्षणहै उसमें पुनर्जन्मनही होसकता युक्ति लक्षण शास्त्रों से विरुद्ध कभी संगति में नही आये गायही यहां वेदार्थ है मुच् धातु (छूटना) का भी यही अर्थ है दयानन्द भी इस सूत्र को मानता है इस को नवीन प्रक्षिप्त कहना नही ठीक है २

दोनों को मिलाकर न्याय सिद्धान्त करने वाले नूतनगङ्गे शादि तार्किक मत में ऐसा अर्थ होगा कि जिस अवस्था में पुरो-हितोयं राजा पुरोहित ही ये राजा है मेरा ही आत्मा देव मित्र

र्थादुःखाभावेन सादृश्यं नव्यमतेप्राचीनमते सुखाभावदुःखाभावो भयेन सादृश्यं पश्यतो नविदेहाव स्थाया नपिवीतरा गत्वेन तत्व वित्वाच्च मोहोनापि तदधीन एकविंशति दुःखात्मक संसारस्थवः शोक इति भावः ३-४

दयानन्दमते यस्मिन् दयार्द्र भावेन न्यायमनु वर्त तत्परमात्मनि भीत्या पूर्वमन्त्रा नुकूलं सर्वाणि भूतानि रागद्वेष राहित्येनात्मैव एवशब्दवा शब्दयोः समानार्थं कत्वेनकणादवत्तस्यैवाथ कत्वेन वेवपश्यति समदुःखसुखः संसार इतरजीवैर्यदा समदुःखसुखोधीरः सोमृतत्वाय कल्पते इत्युक्त्या एकत्वंसाम्यं पश्यतोनशोक मोहा



है ऐसा सादृश्य से अभेद लाक्षणिक परमात्मा कृष्ण ऐसा शब्द प्रयोग सभभूतों का होना लगगया उस अवस्थामें अभेद भावना के बल से एक तत्व साम्य रूप होगया इसी से निरञ्जनःसाम्यमु पैति दुःखरूप अञ्जन मल रहित जीव भी समहीईश्वर के होता है इस श्रुति में साम्य ही मुक्ति में कहा है वहां सादृश्य नवीन मत में दुःखा भाव रूप से होगा प्राचीन मत में सुख दुःख दोनों के अभाव से होगा नूतन ईश्वर का नित्य सुख मानतें हैं प्राचीन सुखदुःख दोनो नही इस सादृश्य को विदेह मुक्तिमें देखते सदेह मुक्त तत्ववित को मोह एक विंशति दुःख रूप संसार शोक भी नहीं होता ३.४

दयानन्द के मत में इस मन्त्र का ऐसा अर्थ होगा कि जिस परमात्मा में न्यायकारी होने से डर कर पहले मन्त्र की रीति से राग द्वेष रहित होने से आत्मा की तरह होगया (एव एवका अर्थ कणाद की तरह बरोबर समझा जाता है) अथवा सुख दुःखबरोबर माना जाने वाला संसारमें दूसरे जीवोंके साथभी

दि स्वादृष्टप्राप्त परमात्मा धीनभोगस्य विशामतः कर्त्तव्यमात्रे स्वातन्त्र्यं भोगेऽस्वातन्त्र्यं चेति भावः ५

अत्रसमीक्षा कर्मान पेक्षत्वे वैषम्य नैघृण्यदोष ईश्वरस्य कर्मापेक्षा भोजकत्वेस्वातन्त्र्य हानिरिति रापेक्षत्वात भोजयितृत्व वत् कारयि तृत्वस्यापि जीवद्वारैव स्वीकारस्य सर्वकर्तृत्वंनो चि स्यात कर्त्तव्ये ऽपिनजीव स्वतन्त्रतं तद्वै देवजीव क्रियाद्वारोप भो गे राजाचौरदण्डने तत्करतु भोक्तु जीवैस्स्यैव भोजयितुश्च स्वात त्र्ये स्वातन्त्र्यमेवहीयेतेश्वर जीवव्यक्तिद्वित्ववत्एकमेवाद्वितीयं अस्मे ति श्रुतियुक्ति बाधित मित्यादिपूर्वक्तरीत्या बोध्येति दिक् कर्तृ भोक्तेकत्वदर्शिन परमात्मा धीनत्व चाना दृधानन्दत्वेस्य कृतहानि शोकोनेति मन्त्रा इति

—— :o: ——

साम्य समझ चुका केवल अदृष्ट के अनुसार भोग में परमात्मा के परतन्त्र जीव हैं और करने में स्वतन्त्र है यह ज्ञान यथा प्राप्त को भोगने में प्रवृत रहा उसे क्या शोक क्या मोह होगा ५

इस जगह समीक्षा यह है कि अगर परमात्मा स्वतन्त्र भो गदेता है जीव उसके परतन्त्र है तो वैषम्य नैर्घृण्य दोष होगा यदि अदृष्ट की अपेक्षा फल देता है न्याय कारी है तो स्वतन्त्र नही क्यों कि अदृष्टकी अपेक्षा से जीव को भी अपेक्षा रखता है इस से करने भागने में जीवको भी स्वातन्त्र्य आजायगा और भोजयिता भी कारयिता स्वीकार होगा तो करने में स्वक्रिया पेक्ष स्वातन्त्र्य और भोग में भी होगा जैसे राजा को दण्ड देता है तो चोर क्रिया द्वारा भोग कराता है क्रिया करता और दण्ड प्रदर्शित क्रिया कर्तारूप भोक्ता एकही होगा तो परमात्मा का किसी में भी स्वातन्त्र्य नही प्रेरणा मानने तो दोनोंमें हीहोगा

सांख्यमते यस्मिन् कालेपूर्वोक्त मन्त्रेण समदृष्टि कालेसर्वाणि भूतानि असङ्गात्म तुल्यानि दुःखादि प्राकृतधर्मोपभोगेच सर्वा न्यात्मैव तदिवाभूत् तत्रएकत्वं प्रकृतेर्विवेकमजानतः प्रकृति पुरुषभेदख्यातिमत:कोमोहोरागाद्य भावेन अष्टविधोमोह महा मोहइत्यादि बहुविधोनरकः कथंचतदधीनः शोकःदुःखत्रय माध्या त्मिकाधिदैवि काधिभौतिक मेविवेकाधीन रागाधीनत्वात्तद्दुःख त्रयस्यति भावः ६

विज्ञान भिक्षुमते यस्मिंकाले सर्वाणि भूतानिजीवरूपणि विजानतो विवेकेन प्रतिबिम्ब दुःखादिकं बिमुच्यबिम्बात्जानतो

पीछेभी खुलासा करआया हूं और सारूप्यदोषव्यक्ति होनेसेहोता है सो श्रुति में विशेष्यांशमें मायावच्छिन्न चित के एक अद्वितीय एवइव तीन पद से ब्रह्म सजातीय और विजातीय और अपने अवयवावयवि आदि कृत भेद का निषेध करने से विरुद्धहै जीव अगर दूसरे विशेष्यांश में माना जायगा तो परमात्मा विशेष्य का सजातीय हो या अवयव हो किसी तरह भी नहीं माना जासकता कर्ता भोक्ता एक परमात्मा मानने वालेको परमात्मा धीन सब होने से सत्ताधायक के बिना स्वातन्त्र किसी को नहीं उसी में कर्तृत्वकल्पित है ऐसा मानने से दयानन्द की तरह करने भोगने की प्रेरणा वैधर्म्य संस्कृत हानि दोष का शोक यह समीक्षार्थ भी मन्त्र का है ६

सांख्य मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस काल में पूर्व मन्त्र में इस मत के अनुकूल कही रीति से सम दृष्टि होगई सभी जीव असङ्ग तुल्य आत्माके स्वरूपसे और दुःखादिप्राकृत धर्म भोक्तापन से तुल्य आत्मा की तरह होगये तो प्रकृति के

ऽसङ्गात्म साक्षद्दृष्टिहत्पत्ता ततोनदुःख रूपः शोकः धर्मं धर्मिप्रतिबिम्ब रूपजीव वृत्तिर्नबिम्बे तत्कारण मिथ्याज्ञान रूप मोहस्याविवेक स्याभावादिति बीतरागताजायते दग्धबी जस्येव नकर्मणःफलोत्पाद कत्वमेकत्वंसाम्य मनुपश्यतो ऽसङ्गत्वादिति भाव: १

तदुच्छिष्टतया दयानन्दमते प्राकृत राजसदुःखा दिर्मोहस्तत्क थांच एकत्वंव्याप्य व्यापकयोर्गुणसाम्या पादनद्वाराऽनन्तकल्पा पा गुणनिर्दोष परमात्मना पश्यतो विजानतो यदाकाले सर्वाणि भूतानि आत्मैव साक्षितया परमात्म व्याप्यानिश्चतुल्यानि वात

एकत्व को विवेक रूप से याने प्रकृति पुरुष की विवेक ख्याति से जानते हैं तो मोह आठ प्रकार का मोह महा मोहादि नरक सांख्य कारिका में लिखा कैसे होसकता है और उस के अधीन आध्यात्मिक आधि दैविक आधिभौतिक तीन प्रकार के दुःख उनका शोक कैसे हो सकता है वहतो जब तक अविवेकसे प्रकृति दुःख को आत्म दुःख समझ कर रागादि हो रहे हैं तभी तकही है १

विज्ञान भिक्षु के मत में इसका अर्थ यह होगा कि जिस काल में सब जिवों की बिम्ब रूपसे समझ प्रतिबिम्ब दुःखसे असङ्ग मनदृष्टि पैदा हो जाती है तब धर्म धर्मि प्रति बिम्ब रूप जीव में दुःख रूप शोक बिम्ब का धर्म नहीं यह जानताहै उसका कारण मिथ्या ज्ञानरूप मोहरूप अविवेक तबनहीहै इस से राग भी नष्ट होजाता है राग के नहोने से बीजके दग्धहोने पर जैसे वृक्ष फल उत्पाद नहो ऐसे पुनर्जन्म नही होसकता और आत्मा तो असङ्ग ही है ।

द्दशनायते इति भावः ८

व्याप्य व्यापकत्व नित्यत्वादि जीवस्य पूर्वोक्तरीत्या निर स्तमनोक्षयोयं पन्थाः मुक्ति क्रीडयारागद्वेष प्रकृतिबद्धभिन्ना या मोहकारणि कायाः पुनर्जन्महेतोः सत्वेनतन्मतस्य पूर्वप्रदर्शित त्वेनपरमात्म साम्याभावात् इतिदिग्मते सर्वाणि भूतानि यस्मि न्कालआत्मैव समाहितात्म मात्राजितदायोगत्तर्थंजनद्पूनोत्यत्र धारणादि तरदृष्टि निराकरणेनतदादृष्टदुःखरूपऽवस्थानविलिसु श्राद्विजानतो भद्रूयाति वृत्ति समनन्तरं तत्रापि वैराग्य वशाद् भूतत्रेकत्व मात्मनःपश्यत स्तत्सरूप स्थितस्य साक्षिमात्रस्यका

———:०:———

इस का कुछ अवलम्ब साम्य मुक्ति में है और पहले जीव परिच्छिन्न प्रतीत होंभी पर मुक्ति काल में नही यह अंश कुछदयानन्द से मिलताहै क्योंकि वह परिच्छिन्न जीवहीमानता है मुक्ति में अपरिच्छिन्न यद्यपि नही कहता तथापि परमात्मा के तुल्य होना चाहिये ऐसा २ कुछ विरुद्ध सा अभिधान तोवद तो व्याघात की तरह करता हीहै विज्ञान भिक्षु मानता तोजीव यहां नही है परन्तु शरीर से महत्वेन प्रतीत होने सेशरीर होते आत्मा परिच्छिन्न सा प्रतीत होता है ऐसा तो मानता है इस से कुछ अशमें उसकाभी उच्छिष्ट दयानन्द मतमाना जासकता है उस मत से इस का अर्थ यह होगा जिस काल में व्याप्य जीव को गुण बढानेसे अनन्त उत्तम गुण वाले निर्दोष परमात्माके साथ तुल्यता संपादन करदी उसवक्त सभ भूत आत्मा याने सोक्षिसे मिल आत्मा अपने के भी व्याप्य से अथवा अपने तुल्य दृष्टि में आये सब प्राकृत रजोगुण के परिणाम दुःखादि और उन का कारण मोह नही होता ८

सांसारिक वृत्ति सारूप्य निबन्धन इति भावः ९

मीमांसकमते यस्मिन्काले विजानतो विधिशेषं नित्यमात्र एवं सर्वाणि भूतानि आत्मा तदर्थमेव यज्ञादिकाले यजमानो यज्ञ इतिवद्वा कर्मात्मावाप्तफलीय करणात्मा तस्मिन्विधिशेषे एक एवंविधिसंसर्गे कत्वंफलकोटौवा इतराधानेन तन्मात्रो पभोगप्रपु रुषेननवा केवलित्वं स्वर्गशक्रत्वादि लक्षणम भूत्तदाकः मोहो यद्दूषण्यां दिजनित दुःखाऽपुसंख्यानादिजःकश्शोको दुःखरूपः इति भावः १०

इस की समीक्षा व्याप्य व्यापक खण्डन से शुद्ध होजायगी व्याप्य को परमात्मा के साथ तुल्यता रागद्वेष को २४ प्रकार की नवमसमुल्लासकी मुक्ति की प्रकृतिके होते ब्रह्मा जन्मके आवे जब भी नही होसकती बाबाजी की मुक्ति के खेल का खुलासा पीछेआ भी चुकाहै उनमें शोक मोह हटाकर कैसे परमात्मा तुल्यताहो सकती है

योग मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस काल में सब भूत आत्म मात्र हुए यानि समाधि संप्रज्ञात तक तस्द्भूता कार वृति होने से नाना दृष्टि थी सब दृष्टि हटकर भेद ख्याति की विर्तिके बाद असंप्रज्ञात समाधि वृत्तिकालमें आत्मा ही केवल रह गया (यहां यद्यपि वेदान्ति की तरह बाधन नहीं तथापि आत्मा को वैसी केवलात्म प्रतीति होनेसे उनके प्रतीत नहोने से अभाव तुल्यता से तद्रूपारो पकया से ऐसा कहा) तब स्वरूप मात्र दर्शी वैराग्ययानेराग नाश से होगया उस तरह के केवल आत्मा देखने वाले को मुख्यात्मा में शोक मोह रूप सांसारिक वृत्ति सारूप्यतब कैसे होगा भी नही ९

शां० इममेवार्थं मन्त्रोऽपि मन्त्रआह यस्मिन्सर्वाणि भूतानि यस्मिन्काले यथोक्तात्मनिवातान्येव भूतानि सर्वाणि परमार्थात्म दर्शनादात्मैवा भूदात्मैव संवृत्तः परमार्थ वस्तुविज्ञानतस्तत्र तस्मिन्काले तत्रात्म नित्वाकोमोहःकःशोकः शोकश्चमोहश्च कामकर्मबीजम जानतो भवतिनत्वात्मैकत्वं विशुद्धं गगनोपमं पश्यतः कोमोहःकःशोक इति शोकमोह योरविद्या कार्य योराक्षेपेणासंभव प्रदर्शना त्सकारणस्य संसारस्यात्यन्त मेवोच्छेदः प्रदर्शितोभवति इति भावः ११

मीमांसक मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस कालमें विधि वाक्य विशेषण नित्यात्मतत्व ही वशभूत लक्षणासे बोले जाते हैं जैसे यजमानोयज्ञः यज्ञभी यजमान है यजमान प्रस्तर (कुशमुष्टि) यजमान है कर्म में लगे हुए उस व्यापार और उस कर्म के साथ तद्रूपारोप लक्षणा से वैसा प्रयोग करा जाताहै जैसा निरुक्त में लिखा है दैवत काण्ड में यज्ञो यजमानस्य यज्ञउस के उपकरण जैसें यजमान के आत्मा कहे जातेहैं उसी तरह एक हो गये उसविधि शेषमें एकत्व याने विधिशेष जो है वहीफल भोक्ता है ऐसे कर्त्ता भोक्ता का एकत्व जानने से स्वर्ग रूप मोक्षभागित्व समझ लिया तो फिर यज्ञादि से उस की प्राप्ति ही निश्चित है फिर यहां और परलोक में शोक मोहादि दुःख कहांसे होसकता है कभी नहीं १०

शङ्कराचार्य के मत मेंमेरी संस्कृत टीकाके अनुसार अर्थ करने से इस मन्त्रका तात्पर्य यहहोगा कि पूर्वोक्त मन्त्रार्थ को दृढ़ करने को कहते हैं कि जिस काल में पूर्वोक्त जिसआत्मा में परमात्मा सर्व व्यापक शुद्ध विशेष्यांश आकाश के तुल्य देखने

टीकप्रति योगितयात्म विज्ञान कालेषा आत्मनि मिथ्या भूतं भेदं पश्यतोन शोक मोहाद्यवकाशः शुद्धकारण कार्य भाव भेदरूपं पश्यतो हिम इतिशास्त्र विचार मार्गः प्रतियोगितया प्रति भा नमात्म निवाधसा मानाधिकरण्येनापि शुद्धचितो मात्रे कथमपि संबन्ध इति विभाव्यते ज्ञानस्य पश्चात् भावस्य पृथक् प्रतीति काले हिनाना भूतकारण कार्यभाव मूलको मोहशोकाद्यव काशः त्रिपुटील यात्मक समाधिकाले चिद्रति रिक्ताभ वाच संबन्ध स्समाधीतर व्युत्थित कालेंचलेशा विद्यया ज्ञानिनो वाध



सैं सब कुछ विशेष्यांश आत्मातिरिक्त मिथ्या मान कर आत्मा ही केवल होगया परमार्थ सत उसी आत्मा में फिर विशेषण विशिष्ट वा विशेषण मात्र अन्त करण में होने वाले मिथ्या पदार्थों के साथ उस का संग नही यह यथार्थ निश्चय है इस से शोक मोह का हटाना विद्यमान का नही ११

यह मिथ्या है ऐसा निश्चय कराने से संसार का अत्यन्त उच्छेद जीवन्मुक्ति कोटि बतादी इस की अविद्या निवृत्ति शोक न होना आदि व्याख्या कारण सामग्री होने परभेद को अप्रमाण कराने वाली है इस से लोक युक्ति शास्त्र विरुद्ध उस का स्वीकार अनुचित है।

यहां तो ज्ञानसे पश्चात् भाव होने से शोकादि उन के कारण अविद्यादि प्रतीत होते हैं यह सब ज्ञानादि त्रिपुटीलयमें नही इस से लक्ष्य आत्म मात्र में इनका बाधरूप मिथ्यात्व होते भी नहोना) बताना वेद तात्पर्य है जिस में कोई विरोध नही १२

विज्ञान भिक्षु के वेदान्त मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस काल में सब भूत आत्मा के तुल्य होगये यावे मुक्त

पृति योगितया संबन्धो वाच्य वृत्ति मंजहय वृत्ति स्वद्वाधा चि
करण त्वादिति विशदाकूलम् १२ ।

विज्ञान भिक्षुमते यस्मिन्काले सर्वाणि भूतानि आत्मा
एवश्वा भूद्धार्यद्वा मुक्तिस्तदा परमात्मना साम्यंजायते यथा
सौऽनन्त कल्याणगुणः सर्वव्यापकः समः सर्वभूतेषु तथासाव पि
जायत यदाएकत्वे साम्यं पश्यतो विजानतःकःशोकः कोमोहः
शोक मोहादिकः संसार धर्मस्तदान भवति इति भावः १३

माध्वमते एकत्वं पश्यतो भावयतो हरिरात्मा परेशस्सम
र्वाणि भूतानि विजानतो ऽभूतस्य तद्धीन चराचर विज्ञातु स्व

काल में अपरिच्छिन्नत्व शरीर नहोने से परिच्छिन्नता पृतीतिजीव
को हटकर परमात्मा के तुल्यमहत्त्व विभुत्व पृतीत हुआ तो
जैसे परमात्मा अनन्त कल्याण गुण समझने में तुल्य है ऐसा ही
यह हुआ इस तरह का साम्य जानते को शोक मोहादि
परमात्मा की तरहसे नहीं होते वेतो संसार धर्म यामेंपरिच्छिन्न
देह को हो अन्तःकरण पृतिबिम्बत के पृाकृत धर्म है १३

माध्व मत में इस का यह अर्थ होगा जिस को जिसवक्त
सभ भूत हरि के अधीन पृतीत होचुके उसे उसवक्त परमात्मा
के एकत्व देखने वाले को उस हरि परायण संसार धर्म समझने
वाले को शोक मोह नही होते याने सर्वज्ञ हमारा स्वामी है
सभ उस के अधीन है जो उस का वह सभ हमारीही है इस से
हमें यहां औरपरलोक में भीसुख ही है यहसमझ हरि की दीक्षा
शरणसे भक्ति फल भक्ति जनित पृारब्धानुसार सुख ही रहता
है उसे शोक मोह नही होते यही इस मन्त्र का भाव है १४

भट्ट भास्कर के मतमें इसका यह अर्थ होगा कि जिस

चरणस्य तदधीन संसार धर्मत्वात्कः शोको मोहोवा तदधीन सर्वसर्वशरण आस्माकीन मेवात्मन स्वाम्यधीन त्वात्सर्वं मिति सुखमेवेह परत्रचन इति अधिमन्यतो स्तिकश्चन शोकाद्यवकाश इति भावः १४

भट्टभास्करमते यस्मिन्काले सर्वाणि भूतानि आत्मैव भिन्ना भिन्नो ऽभूद्विजानतः परमात्म न्येवभिन्न रूपेण भिन्न रूपं वस्तवस्थितिं विजानत एकत्वमनुगतं द्भित्वा ऽभिन्नद्वावेकंच पश्य सो हरिभक्ति मतरतच्छरण तयास्वाम्यधीनं सर्वं जानतस्वस्वामि कत्वं ज्ञान निर्भयस्यनशोक मोहाद्य वकाश इति भावः १५

काल में सब अनेक भूत साकल्य रूप से अनेक वृक्ष वन रूप से जैसे प्रतीत हों वैसे एकत्व देखते हुएको हरिभिन्ना भिन्नएकात्म स्वरूप प्रतीत होगये उस को उस हरि की सब अपना और आप ही समझ कर भक्ति करते हुए उस के प्रतापसे शोकमोह के दुःख नही होसकते १५

निम्बादित्य के मत में इस का यह अर्थ होगा कि जिस काल में सब व्यवहार काल में परमार्थ सत् अनेक भूत रज्जु में की तरह विवर्त रूप प्रतीत हो आत्मा एक परमार्थ सत् विवर्त भिन्नाभिन्न प्रतीत होकर भगवान्की दीक्षा शरण मन्त्र ललिया तब जीवन्मुक्त दशा में शोक मोह का कोई अवकाश नहीं १६

रामानुजके मत में इस का यह अर्थ होगा कि जिसकाल में वृक्ष की शाखा की तरह अनेक भी सब भूत वृक्ष की तरह शाखा विशिष्ट एकभी प्रतीत होतेहै ऐसे परमात्मा सूक्ष्म मूर्ति से भिन्न भी विराट रूपसे अभिन्न भी सर्वं भिन्ना भिन्न भी सब तरह माया विशिष्ट एक आत्मा प्रतीत हो रहा स्थित होचुके

भिन्नाद्वित्यमते यस्मिन्काले हरिदीक्षित जीवन्मुक्तस्य सर्वाणि भूतानि व्यवहार काले परमार्थतो भिन्नान्यपि रज्जुरिव भुजङ्गो विवर्त्त मात्रत्वादभिन्नान्येवमात्मा हरिणाअलमेवा भूवद् भिन्ना भिन्नत्वात्तत्र यान्यभूवंस्त तदाएकत्वं मुक्त्यैकत्वंपश्यतो विजानतः कः शोक मोहाद्यव काशोहरिभक्त स्येति भावः १६

रामा नुजमते यस्मिन्काले सर्वाणि भूतानि शाखाइववृक्षस्य भिन्नान्यपि अभिन्नान्यपि स्थूलचिदचिद्रूपाणि विशिष्टान्येव सूक्ष्मचिदचिद्रूप विशिष्टचतुर्व्यूहात्मककारणाभिन्नतयामायाविशिष्ट चिदद्वितीयानि भगवत्मयान्य भूवन्तदा विशिष्टं जानतो

तब सर्व विशिष्टा द्वितीय को सब प्राप्त होचुका इस हेतु से शोक मोह किसी का अवकाश नही १७

बल्लभ मत में इस का अर्थ यह होगा कि जिस ब्रह्म संबन्ध दीक्षा के वक्त अथवा जिस दीक्षित आत्मा में सर्वरूपसे गोस्वामी कृष्णजीके कायवाङ् मनसे अर्थात् गोपीवत् होचुकेतब सब भूत हरि ने अपने रमण के लिये ही अपनी लीला शक्ति अभिन्न रूपसे सब होते हुए अपने से शुद्धा द्वितीय ही रचे हैं यह एक सदृष्टि हुई तब फिर शोक मोह का कोई अवकाश नही क्यो कि शोक मोहादि करुणा रस में है यह बलभ की संभोग शृङ्गार रस पुष्टि पुष्टि भक्ति (जिस के पहले मन्त्र में उनके मत के श्लोकादि प्रमाण लिख चुके हैं उसका विरोधि है १८

नकुलीश पाशुपत और शैव मतमें ऐसा अर्थ होगा कि जिस काल में सब भूत साक्षि रूप परमात्मा के सम स्वामि पशुपति नाथ के शरण होचुके तो मालिक के सिर पर हाथ धरने से नौकर के कितना भी अपराध हो बगैर हुकम दिखाये

विशिष्टा द्वितीयमेकं पश्यतः कः शोक मोहश्च कास इति भावः १७

वल्लभमते यस्मिन्नुकाले ब्रह्मसंबन्ध जीवन्मुक्त दीक्षाकाले यस्मिन्नात्म निवासवर्तिन कस्मान्निशरणे सर्वाणिभूतानि आत्मै वतन्मात्र परिणा मत्वाच्छुद्धा द्वितीय मेवाद्भूद्विजान तस्तथा विशेषण कृष्णा नन्यशरणतया एकत्वंपश्यतः शुद्धाद्वितीयंहरिवंकः शोको मोहोवा संसार दुःखानल संतापशान्तये परमानन्द स्वलीला विग्रहभंग वतोनन्त कल्याण गुणस्य पुष्टि २ भक्तेर्वा

मालिक के उसे बुलाने तक का किसी को हुकम नहीं कानून से साबित होता ऐसे पशुपति के शरीरणको दुःखद कोई पशुपाम सीव नही होसकता पशुपति के भय से तो शोक मोह का क्या अवकाश होता है किन्तु कभी नहीं १९

माहेश्वर मत में इस का यह अर्थ होगा कि जिस काल में सभ भूतों कों अदृष्ट फल दाता शिव कर्म साक्षिक सभ जगह मौजूद उस परमात्मा एक महेश्वर के शाम्य रूप जानते हुए का शरण वर्ती शिव परमात्मा दीक्षा से होगया तो वह खुद भी पाश रहित सदा शिव होगया तो पाशु युक्त संसार बन्धन भयादि से होने वाले शोक मोह कहां होसकते हैं २०

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक शाम्भव मत में इसका अर्थ यह होगा कि जिस काल या आत्मा में सभी भूत स्पन्द मय कार्य सवि-द्रूप आत्मतत्व कारणात्मा में अभेदसे सोहं ऐसी प्रत्यभिज्ञा हो गई तो वही आत्मा शिव शक्त्यात्मक भैरव मायावच्छिन्न चित् एक होगया वैसा देखने वाले को शोक मोह का फिर अवकाश नहीं होता २१

पीनामिन्नः श्रवणादिति भावः १८

नकुलीश पाशुपतमते यस्मिन्काले सर्वाणि भूतानि पर मात्मनः साक्षितया ऽवस्थितस्य पश्यतः जानतो विशेषेण ज्ञान् जानतः स्वतत्स्वामिकान् यदापशुपति शरणः संपन्नस्तदा स्वस्वा मिकपरिरक्षस्य राजाभृत्यस्येव राजाज्ञानन्ताकस्यापिवाह्वान मान्नाय सामर्थ्या च्छोकादिदातुः परस्यप्शोर भावात्पशुपति तत्वज्ञ त्रिगुणस्यादुःखड परोहतत्वात्कः शोक मोहाद्यवकाश इति भावः१९

शाक्त मतमें अभीभूत जीव जः का आत्मा वैपुत्र आत्मा ही पुत्र है इस श्रुति के साथ संवाद और षट् कौशिक देह की उत्पत्ति क्रम से एक शक्ति जगन्माता मायावच्छिन्न चित् के पुत्र होन से सभी उसी एक के ही नाम रूप हैं ऐसा जान लिया तो उन को जैसे माताके समीप बच्चेको किसी प्रकारसे तकलीफभय नहीऔर सभी प्रकार का आनन्द होजाता है इसी तरह फिर शोक मोह का शक्ति पुत्रको भी अवकाश नहीं २२

साहित्य मत में इस मन्त्र का यह अर्थ होगा किजिसकाल में अनुभावव्यभिचारि भाव के अनुकरण और श्रव्य काव्य के अर्थ रूपरस के विचार काल में सभी आलम्बनोद्दीपनादि भूतों को एकी करण से जानते हुए रसमय रूप से विचारते हुए का रामादि आत्माऽभिन्न रूप से देखते हुए का आत्मा रस(जो कि और श्रुतियों में रस वही परमात्माहै वह खुद आनन्द रूपहै और सब आनन्द उसी के अंश स्वरूप हैं इत्यादि लिखाहै होगयातब हरि कीर्तन श्रवणनाटक दर्शन आदि कालमें शोक मोह आदिका अवकाश कहां हो सकता है यद्यपि करुणा में लोक में दुःख

माहेश्वरमते यस्मिन्काले सर्वाणि अदृष्ट फलदानाय कर्मस्थ क्षितया पश्यतः भूतानि विशेषेण जानतः शास्यतया भूतराजस्य महेश्वरस्य आत्मा अभूत्स्मरण तयातन्मन्त्र दीक्षादि भक्त्या पशु पति रेवसंपन्नः कस्तदाशो कमोहादिः पाशबो धर्मो नकोपीति भावः २०

प्रत्यभिज्ञा दर्शन शांभवमते यस्मिन्काले आत्मनिबा सर्वाणि भूतानिस्पन्दरूपाणि संविन्मये कारणा त्मनिकार्याभ दे विशेषेण तादात्म्येनसोहमितिजानतः आत्मैवा भूतथापश्यतो भैरवस्य शिवशक्त्यात्मनो नाथा वच्छिन्न चिन्मात्रस्य कः शोको मोहो वास्पन्दात्मान कश्चिदविकारणात्मनास्पन्द स्याविभूतत्व स्याभावादिति भावः २१

होता है परन्तु वही नाटक काव्य में प्रतीत हुआ भक्ति आदि मिश्रण और चमत्कारि विशेष से आनन्द जनक होता है जिसमें राम के स्वर्गारोहण वक्त और दशरथ के मरण वक्त प्रेमसे आंसु गिर पड़ते हैं उस से शोक स्थायि भी अलौकिकचमत्कार शालि आनन्द का ही हेतु होने से शोक मोह लौकिक दुःख जनक का अवकाश कुछ भी नहीं २२

अब यहां समीक्षक का विचारहै कि एक वस्तुमें विकल्प समुच्चय परस्पर विरोध और एकहोनेसे नहीहोसकता औरनाना मानने में सबकों का परस्पर विरोध होगा और उस के अनुसार उन के देवताओं का भी विरोध आपड़ेगा इससे स्मृत्यन वकाश दोष (कि एक माननेमें उसीके बताने वाली स्मृति वा आचार्य स्मरण व्यर्थ होगा) इसके परिहार के लिये उनकी एक वाक्यता होकर ऐसी हो जिसमें सभी साधकहो परन्तु वह बिनापक्ष

शाक्तमते यस्मिन्काले भूतानि सर्वाणि जगत्कारण त्वेन सर्वस्य भूतस्यजीव जातस्य पुत्रस्य मातेव सर्पस्वरूपाया आत्मावि जायतेपुत्र इति संवादं विजानत शक्तिरात्माभूत् शक्ति पुत्रस्य पश्यत स्तत्रादृष्टे सर्वाविधानन्द साधक मातृसमीपे पुत्रस्येवक शोक मोहाद्य वकाश इति भावः २२

साहित्यमते यस्मिन्न नुभाव विभाव व्यभिचार भावस्था नुकूलि भव्यका व्याध रूपस्य परामर्शकाले सर्वाणि आलम्बनो द्दीपदि भूतानि विजानतो विशयकीकृत्य तन्मयतया परामृ शतः स्वात्मा भेदतया रामादिक पश्यतः आत्मा रसएव सम्भूतो रसावेशः एषएवा नन्दयाति इति श्रुति संवादा त्कस्तत्रा हरि कीर्तनादि श्रवणादि काले शोक मोहाद्य वकाशः करुणादावपि अलौकिक त्वात्काव्यनाटकादि समर्पित रामादि वनवास दुःख स्यानन्दजनकत्वा दतएवतच्छ्रृ शोत्पादालौकिक कारणस्येवतज्ज नकत्वा च्चनकथं चिदपिरसमयस्य शोक मोहाद्य काश इति सहृदयवेद्यो भावः २३ ॥

पाता शत्याग के नही होता इससे उतना भेदांश अभ्युपगमवाद केवल बाह्य वक्तृ पेक्ष मानकर उसे हेय कोटिमें देना चाहिये तो चिन्मात्र निर्विशेष, और अनन्य भक्ति परमात्मा की औरद्वैता स्वीकार और उन की नाना मूर्ति ध्यान इन अंशों में सभ से भ्रमर की तरह सारांश भीग्राह्य है इस तात्पर्य से निर्विशेष पर्यव सायि शुद्धा द्वितीय परमात्मा की नाना ध्यान प्रत्यभिज्ञा और विवर्त्त रूप की भक्ति का उपदेश सभ की एक वाक्यता से प्राप्त होता है इस में समीक्षक मत के अनुसार यह अर्थ होगा कि जिस दीक्षा काल में व जिस आत्मा में व जिस उपदेश में

अत्रेदं समीक्ष्यते वस्तुनिर्विकल्पा संभवात्परस्पर विरोधेन हैवकदेव विद्वेषापत्तेश्च मैत्र्यर्थाः पक्षपातश्च स्तो स्वस्वमतस्यक्लृप्त्य नवकाश प्रसङ्गेनविरोध कोऽप्यापा कद्वेषांशे अन्यपन नवाद्दत्वेन हेयाः चिन्मात्र निर्विशेषा नन्यभक्त्यंशेनापादेयाश्चेति तात्पर्येण निर्विशेषपर्यवसायि शुद्धाद्वितीयमात्मानं सर्वाणिभूतानि विजानतः सकल रूपेण शिवगणप कृष्णसूर्य देवी भैरवात्मना पश्यतः सोहमिति सर्वमेवजगत्प्रियत्वेन भावयतोनकश्चनद्वेष्य इतिशोक मोहाद्य वकाश इति भावः २३

:०:

संपूर्ण भूत निर्विशेष पर्यवसायि धर्म ज्ञान वैराग्यैश्वर्य विशेषण विशिष्ट शुद्धा द्वितीय जानते हुए सभी शिवगणपति कृष्ण सूर्य देवी भैरवात्मा रूप से जगत्प्रिय परम भागवत के सभी आत्मा होगये तब वैसे कृष्ण भैरवात्मा को एक देखते हुए का कोईभी द्वेष द्वेष्यनहीं न कोई द्वेषकर्ता होसकता उसको सभी के पहुं आनन्द ही है इस से उसे किसीकोकिया भी शोक व मोह नहीं प्राप्त होसकता यह वो स्वयंही इसतरह सोहं प्रत्यभिज्ञा कर चुका है २३



सपर्यगाच्छुक्रमकायम व्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम्
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समाभ्यः ८

सपर्यं गादिति वैशेषिकमते सपरमात्मा शुक्रंशुद्धं सुखादुःखा
द्यशोधक अन्यगुण रहित मकायंस्वादृष्ट प्रभोगा वच्छेदक काय
रहितं स्वादृष्टोप भोगावच्छेद ककायो यस्यावच्छिन्न भोगवत्व
संसर्गा वच्छिन्न प्रतियोगिता कावभाववद्धर्मत्वस्य सयोगस्या वर्ज
नीयत्वेन स्वीकार्यत्वात अव्रणमतएव व्रणजमिव तदवच्छिन्नदुःख
रहितं रामाद्यवतारकाले ऽपिजीवा हि स्वादृष्टवशतदुपभोगार्थोपदे

वैशेषिक मत में इस का यह अर्थ होगा किवह परमात्मा
शुक्र याने सुख दुःखादि रूप अशोधक अन्य गुण नही अगरहै तो
नु। उन्ही के तात्पर्य कारों की युक्ति से नित्य सुख नही तोनित्य
ज्ञानेच्छाकृति ही और नही अकाय याने अपने किये से पैदा हुए
धर्मा धर्म के उपभोग का साधन शरीर (जैसे जीव का है वैसा)
नही किन्तु यदि अवतार व सृष्ट्यादि में होता है तो जीवों के
अदृष्टों से मेघादि की तरह साधारण उन्ही के पाप पुण्य भुगाने
के लिये जैसे कंसादि के पाप व गोपी आदि के पुण्य से कृष्णा-
वतार हुए उस के सुख दुःखादि भी) दूसरे को हो हुए अपने को
नही रामादि का रोदन भी लोक दिखावा भक्ति रस से काव्य
में भरा है उस से वैसे वक्र वर्णन में काव्य की पुष्टि होतीहै नही
तो काव्य दोषगिना जाता है उस में उनका वह वास्तविक नही
कायसामान्या भाव अर्थ नही उस विभु का संयोग तो सभ के
साथ है ही किन्तु स्वादृष्टोप भोगावच्छेदक शरीर का ही अभाव

नक शरीर धारणे ऽपि कर्मोपभोगसंपादक रागादि मात्रादि विषयो पगजन्यसुखप्रतिरोधकस्वर्गतो हस्तादिच्छेद प्रपातादि सामयिकलोकदृष्ट दुःखकरनरकप्रतिष्ठदुःखादि रहित अस्नाविरमत एव क्लेशरहितं प्राणादिसंबन्धिनारहितं नरं बन्धिछन्नप्रारब्धोपभोगरूपायुर्भोग रहितं समस्त तारकाले ऽपि याव ज्जीवादृष्ट विपाकं देह संबंधेन नियत पुष्कं शुद्धं जीवजात रागद्वेष रहितं यथा भक्त्यादि साधु कर्मफल प्रदत्वेन पक्षपात रहितन्याय कारिणम् अत एव न्यायापेतकरणादि पापरहितम् पापविद्धस्वरूपं पर्यगाद्व तारकाले परिगतः परितः सर्वतश्चतदेव रूपं प्राप्त सर्वव्यापक नित्यं भूतमेवास्य रूपं कविर

o

च्छिन्न भोगरूप संबन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता का भाव पूर्वोक्त जानना चाहिये ।

इसी अस्नाविर यानि इसी अपने किये पुण्यके फल भोग लायक शरीरोपयोगी स्नाव (प्राणवाहिनी नाडी) के साधन से सुखोपभोग रूप सम्बन्धसे स्नाव वालाभी नहीं अवतार कालमेंभी जब तक जीवादृष्टों को भुगाना है तभी तक उस के हिस्से से बनेनाड्यादि संबन्ध है उनके भोग के समाप्त होनेमें नही शुद्ध याने राग द्वेष रहित हो कर भक्त्यादि सत्कर्म व नियोगआदि नरत्र रितिसिद्धि प्राणियों के कुकर्म आदि के फल देने में पक्षपात रहित होकर न्यायकारी इसी से अन्यायकारी को जो पाप हो वैसे पापों से भी रहित स्वरूप को प्राप्त हुआ अपने अदृष्ट के शरीरसे रहित अथवा अशरीरऔरअवतार दोहीस्वरूपोंकोप्राप्त किया इसमें अपने अदृष्टसे शरीरशून्य रूपही इसका सर्वव्यापक रूप है वही कवि सब जीवों का विद्या गुरुहै अगर शास्त्र पद्धति से मानें और युक्ति शास्त्रादि से सोचें तो वही है न मानने की बात तो और है योगसूत्र में भी इसकी संमति है वहां ऐसा सूत्रहै

णौ सकल विद्यागुरुः एव पूर्वेषमपि गुरुः कालेना नवच्छेदादिति योगसंमत्या वेदादि कर्मानलीषा सर्वस्य बुद्धिर्विचार रूपायास्य सकल विद्या योगकार्य कारित्वेना विदूषण कृतिमान् नित्ययोगेन वा नित्येच्छा ज्ञानादिमान् स्वयंभूर जोऽतएव परिभूः सर्वोत्कृष्टः सकलजेता सर्वेश्वरो ऽपराजितबुद्धिर्याथातथ्यं याथार्थ्यं सत्यं जीवा दृष्टफलदानन्याया नुगृहीतयथाभवेत्तथा शाश्वतीभ्यः समाज्यर्थि दं व्यदधात व्यवरदिति भावः १

गोत्तमनते संयोग समाधिजसार्वं भौमविभवौजः परमात्मा

सएवपूर्वेषामपि गुरुः वहपरमात्मा अनादिसृष्टिमें पहलेसेपहले का भी गुरु है क्यों कि सब जगह और सब काल में भी मौजूद है और उत्पादक स्थान व बुद्धिस्थान में भी संयुक्त है और वेदादि सब विद्याओं का कर्ता सृष्टि आदि शरीरों से होजाता है सब से उत्तम अविचार्यकारित्व साहसादि दूषण रहित कृति (प्रयत्न वा उत्साह) वाला है ।

अथवा नित्येच्छा ज्ञानादि गुणवान् है और आपभी नित्य है इसी से सब से बडा व सब का जीतने वाला सर्वेश्वर किसी से जिसकी बुद्धि कोन्यूनता नही सबफल देनेमें न्यायका अनुग्रह हो (कानून मुताबिक हो) वैसे चिर काल तक सृष्टिक्रमपाल नादि किया करता हुआ १

गौतम मत में इस का अर्थ यह होगा कि वह योग समाधि से सब से बडे ऐश्वर्य वाला सबका मालिक नित्य परमात्मा जीव विशेष शुक्रदोष रहित नित्य अकाय और जीवों की तरह समाधि रहितजैसे अल्पज्ञोंके देहसाधनसे सुखादिहो ऐसेदेवन्त से देह वाला नही किन्तु योग से पैदा हुए धर्म के प्रभाव से

शुक्लं तंशुद्ध दोष रहित मकायं जीवान्त राल्पव्रणवदसमाहित का यस्यस्वा वच्छिन्न भोगवत्त्व संसर्गेणा भावस्तदिति कायरहितंनतु कायसामान्या भावोविभु संयोगस्या वजर्यत्वात् यागज धर्मविशेष प्रभावेण सदासुख सवत्येतर कायसाक्षि तयास्थितः स्वादृष्टस्य योगसमाधि जन्यलोकोप काराय जीवेशोयं स्यादस्य वस्यरादि मान् नतु साधारण जीव वत्सकायः अत्र एवमत एवोत्कृष्ट योगपुण्य प्रभावव्रणपापविद्ध मितिफलेन व्रणतुल्येनदु खेनरहित मनाविरं योगशक्त्या ऽनियतदेह त्वान्नियतायु विंपाकस्वरूप प्राकसंसर्गिनां व्यादि रहितम् ।

———— :o: ————

सब को साक्षि रूप से स्थित होकर कभीर अपने अदृष्टसे भी अवतार धारण कर दूसरों के अदृष्ट का विचार पूर्वक भक्ति नियम व्यवस्थाको करताहै साधारण मनुष्यके तुल्य उनका देह नहीं समझा जाता यह अवश्य पूज्य और मान्य कोटि का है इस में काय सामान्या भाव नही संयोग तो सभी काय का उस के साथ है किन्तु उसी अल्पज्ञ काय का स्वावच्छिन्न प्रति योगिता का भाव ही अभि प्रेत है •

इसी से अव्रण याने दुख रहित योगि शरीर पुण्य विशेष से होता है इसी से अधर्म के फल व्रणादि के दुःख नही उन्हे होते रामादि रोदन काव्यके प्रसङ्गानुसाररस पोषणार्थ लिखा गया यहपीछे भी प्रकट होचुकाहै इसीसे कहा किपाप विद्ध पाप युक्त भी नही और योग शक्ति धृत देह अवतार रूप केवल कार्यार्थ ही है इस से उन का कार्य समाप्ति नियम न होने से काल नियम नही इसी से शतायुर्वै पुरुषःशतवर्ष (ज्यादह से ज्यादह के लियेहैं कम से कम अन्य याग में जो दुःख है) नियत

शुद्धमित्येतं रागद्वेषप क्षपातराहित्येन यथावत्क्रिय माणभक्त्यादि फलदातृत्वेऽन्याय मात्रशरणं स्वरूपंपरं गाढ़योगेश्वरः परमात्मा जीव विशेषः प्राप्त कृष्णादि बहुविधावतारं सर्व संयोगिसिद्धि प्रतिगं सकलवेदादि कर्त्तोपदेष्टा वासस्मनी । धी विदार्थकारोऽस्वय भूप्यापकः सिद्धिप्रभावेण सकलदृक्तया ज्ञाना धिकरण मात्ररूपणम स्वयंभूरजन्मा नित्यत्वा तद्रूपेणा नुत्पाद्य त्वाद्याथा तथ्यतः पूर्वं पूर्वं परमात्म योगेश्वर जीवानां निय मानुसारेण यथा शाश्वतीं शाश्वतीभ्यः समाभ्योऽर्था न्व्यदधाद्व्यवस्थ दिति भावः २

पन है वैसे नियमादि के) अनुकूल प्राण वाहिनीनाड़ीका संसर्ग हुवे नहीं अपने२ भक्त्यादि सत्कर्म और नियोग नामकव्यभिचारादि असतकर्म के फल देने में राग द्वेषनहोने से पक्षपात रूप अन्याय रहित है भक्ति आदि का यथोचित पुण्य फल स्व र्देवलोक सुखादि और नियोग नामक व्यभिचारादि का जैसे ही असह्य व्यभिचार दण्डादि फल यथोचित देने वाला शुद्ध याने पक्षपात रहित ऐसे साक्षि योगीश्वर स्वरूप को राम कृष्णादि अवतार को प्राप्त हुआ इस में उस के दोनों बात कुब्जा में दण्ड रूप ताहस प्रवृत्ति की तरह प्रतीयमान हो रही जो और कंस के लिये साहस के होने से दुःखदत्व हेतु प्रतीत हो रहा है उस न्याय कारि का उनमें दण्ड देकर अपनी भक्तियोग बताने के तात्पर्य से लिखा गया है और गोपी आदि के भक्ति फलस्वलोक प्राप्ति दिखाने लिये लिखा गया है ।

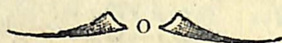
यह तो वैरागिओं के गपोड़े कृष्णको व्यभिचारि कहाने

उभयोर्व्विशिष्टमते नपरमात्मा परितः सर्वतोगात् शुक्रंशुद्धं स्वरूपं शुद्धिश्चजन्य विभुविशेषगुणै रूपादि भिन्ना संक्रान्त ताअकार्यं स्वादृष्टो प्रभोगाश्रयशरीरस्य स्वावच्छेद्यभोगवत्वे नानाश्रयंनिकारो ऽपिजीवस्तेन संसर्गेण तथाविध शरीरा प्रयोजनत्व सौलोका दृष्ट मात्रभोगाय शरीर धारित्वे ऽपिकदाचित वस्तुतोनिः शरीरत्वात् अतएवा दृष्टस्य नैवस्या भावेन तद्विपा कायुर्भोग रूपजीवनयोनि प्रयत्न तदधीन प्राणव्यापारा वच्छेदक नाड्यादिरहित

वालोंकी व्यवस्था है मेरी रायमें तोशक्ति पूजा भैरवी चकार्चन रूप शास्त्रीयाग प्रक्रिया से मर्यादा पुरुषोत्तम कृष्ण रामादि का बिगड़ना कभीनही होसकताकिन्तुअपनी तान्त्रिकहोपूजा अपन से कर भक्त्युपदेश में उनका तात्पर्य था यह पीछे भी सूचन किया है (योगितत्तत्सृष्टि के आदि मे सभ वेदों का कर्ता वा उपदेष्टा हुआ विचार कर ही सभ काम करने वाला व्यापक याने सर्व मूर्त द्रव्य सं ोग अथवा सिद्धि के प्रभाव से सभ के देखने वाला और प्राणी के आश्रय मात्र अपने स्वरूपसे अजन्मा नित्य पूर्व पूर्व परमात्मा योगिराज जीवों के नियमानुसार ही शास्त्र वेद में जैसे एतेअसृग्रमिन्दवः तिर पवित्रमाशुवः एतेइति देवानसृजत् असृग्रमिति मनु ष्यान् इत्यादि श्रुतिमें बताये क्रमादि से चातुर्वर्ण्य के यथावत् नियम है उनके मुताबिक चिरकाल तक पैदा करता इत्यादि सृष्टि पालन संहार उत्पत्ति विधि को चलाता हुआ २

दोनों न्याय मतकी एक वाक्यता करनेवाले नूतन तार्किक मत में ऐसा अर्थ होगा कि वह परमात्मा जैसे कणाद के मत से कहचुके सर्वमूर्त संयोगि रूप से जैसे है और होगा वैसे था प

मतएवतच्छ रीराधीन दुःख रहित मव्यमते सुखस्यापि विनसंपृ
क्तान्नस्येव दुःख संपृक्ततया सुख दुःख रूपव्रणतुल्य दुःख रहितम
व्रणं प्राचीनमते तथाऽपा पविद्धं पापेन कर्मणा तज्जनितेन वा
धर्मेण रहितम् अतएव शुद्धं रागद्वेषादि मोहहेतु स्नेहाधीन व्या
पार रहित पक्षपात रहित शास्त्रोक्त भक्त्यादि फलदातारं कार
यितारं व साधारण कारणत्वात् कविरसौयः सर्वज्ञः ससर्वविदिति
संवादात् मनीषा सकल बुद्धिरेय दोषरहित कार्यकारी नित्येच्छा



याने तीन कालमें वैसा ही नित्य और विभु है नित्य स्वरूप भी
वह उसका स्फुट करता है कि शुक्र शुद्ध याने जन्य विभु विशेष
गुण और घटादिवद् विभुगुण रूपादि से आक्रान्त नही अपने
पुण्यादि रहित होने से अपने पुण्यादि के भोग के लिये इस का
देह नही याने अपने दृष्ट के उपभोग के लिये उस का शरीर
जीव तुल्य नही किन्तु जीवादृष्ट से उन्ही को उसके फल भुगाने
के लिये कृष्णादि मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार धारण करता व
प्रयोजक सृष्ट्यादि कालिकदेह धारण करता याने उस द्वारा उन
को उपदेश कराता वा भूतावेश की तरह न्याय से ब्रह्म लोकादि
गतव अवतारि तीन देहों से उपदेश देता है इसी से अपने को
पुण्य पाप रहित होनेसे अपने आयु विपाक के मुताबिक (जीवन
पुनि) प्रयत्न के अधीन जैसे प्राण का व्यापार होता है व उस
का द्वार स्राव वगैरह होती हैं वैसे नही इसी से अव्रण याने वैसे
शरीरद्वारा भी दुखोपभोग उसे नही नूतन में भी कई नूतनतर
इसी से उसका दुःखासंपृक्त नित्य सुख मानते हैं उन से प्राचीन
के मत में व्रपद से दुःखोप लक्षण है क्योंकि ना घना मात्र सें
लाक्षणिक प्रयोग व्यवहार सिद्ध है जैसे देवदत्त को पुत्र वधका

हिमान् बापरि मूठर्धपकः स्वयंभूरजो यथातथ्यतः सत्यरूपेण शाश्वतीभ्यः समाभ्यश्चिर स्थापि जगद्मद्धाद् चितवान् इति भाव: ३–४

दयानन्दमते सपर्यगा द्रव्याप्तवान् शक्रवीर्यं बलंस्वाभाविकी ज्ञानबल क्रियाचेति संवादात अकायं निराकार शरीर संसर्ग सामान्या भाववान् अव्रणम् अतएव व्रणादि कायिकक्लेश ततसमदुःख सामान्याचावचत अस्नाविर स्नायुभोगाभावातप्राणादि बाहिनीनाड्यादि सामान्या भाववान् स्नायुधयेमनदिसंयोग

व्रण वैसे दुःख सहचरित सुख का भी विवसंपृकतान्न को विषजैसे कहें वैसे दुःख सुख दोनों में लाक्षणिक मानकर वे दोनो उसके नहीमानेजाते इसीसे उनकेहेतु पुण्यापुण्यभी नहीं जीवादि तुल्य स्वादृष्ट भोगावच्छेदक शरीर होतेहैं इसीसे वहरागद्वेष मोहादि हेतु स्नेहाधीन कृतिमान् नहीं किन्तु पक्षपात रहित सदसत्कर्म का फल दाता यथोचित शास्त्रानुसारी है ही और कराने द्वारा कर्त्ता भी है क्योंकि साधारण कारण वही कार्य मात्र का है वही सर्वज्ञ है श्रुत्यन्तर में भी ऐसा ही कहा है मनीषीया ने और विशेषज्ञानतत्वत् प्रातिस्विक व्यक्तिओंका भी उसीकाहै अथवा हेय दूषण रहित (गलती वगैरह) को करने वाली नित्य ज्ञाने च्छाकृति वाला नहीं है सर्वमूर्त द्रव्य संयोगी है उतवचिर हित है अथवा स्वयं प्रादुर्भूत है यथार्थ रूप से त्रिकाल रहने वाला जगत् (क्षणिकवादियो प्रक्रियान्तर) को रचता हुआ ३–४

दयानन्द के मत से इस का ऐसा अर्थ होगा कि वह परमात्मा जगत् व्याप्य जीवों की अपेक्षा व्यापक है और वह खुद ही शुक्र है दूसरे से उसे बल नहीं किन्तु स्वाभाविक ज्ञान

मान्यत्वेन अस्तुतस्तद वच्छिन्नो पभोग रहितम् शुद्धं भक्ता भक्तादि पक्षपात राहित्येन चौर्यादि शारीरक व्यापार दण्डने न्याय कारित्वम् अतएव पापरहितम दण्डयान्दण्डयन् राजा दण्डयांश्चै वाप्य दण्डयन् अकीर्तिम हटा प्नोति अधर्म चैवाधिगच्छती तिह्यिपायं न्याया पेतकरणे स्मृतिरे तन्मन्त्रार्थ मनुवदति कविस्सोक्रान्त दर्शनः सर्वदर्शी सर्वज्ञ त्वा-तत्सर्वमवेक्ष्य तथाभूतवेदादिकं रचितवान्मनीषीसर्वाधिक विचा रोन तस्याष्टि क्रम पुराण गप्पवादैः संमर्थयि तुं शयितुं वेष्टे बुध्यतीत ग्रीवापती तवीर्येन सुग्रीवादि अन्यवादस्येव मवेदे

और बल और उतपादकत्व न्याय कारित्व आदि गुणवान् है अकायं निराकारहै क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्ट इस योगसूत्र में बताए (पीछे लिखे) काय क्लेशादि से रहित है इसीसे आयु वगैरह कर्म फल नहीं इसी से उस के साधन प्राणवाहिनी आदि नाडी नही अथवा गुदा के ऊपर हड्डी में संध्या बनदनादि में उस का निराकार ध्यान होता है उसे भक्ति वन भक्ति का पक्ष पात नही वह जैसे चोरी(अन्यमिच्छ स्वसुभगे पतिमत् इत्यादि की तरह) आदि करने में यथोचित (महा घोर नरक पात रूप उसी हड्डी के साथ बिष्टा लिपटे ध्यान में आनादि) दण्ड देने में पक्षपात रहित है याने जैसे अदण्ड दण्डन में और उसके नदेनेमें राजा नरक पहुंचता है जीतामरा अकीर्ति का भी लाभ करता है ऐसे वो न्याय विरुद्ध करने वाला नहीं इसी मन्त्रार्थ को विपर्यय रीत्या स्मृति कह रही है ।

नोट—समीक्षा के तत्व को आगे स्फुट करने के लिये कुछ प्रबन्ध देकर लिखा जाता है

नश्चेदृशं कर्मकुर्वती स्मालो यथामः परिभूः सर्वव्यापकः स्वयं भूरजो यथातथ्यतः सत्यरूपेण नाधुनिक वेदान्ति वन्मिथ्यायथा पूर्व वा ऽनादि प्रवाह रूपेणस्वीय सृष्टिक्रमः तयःशाश्वतीभ्यः समाभ्य ईश्वरं व्यदरचत् अर्थात् जगद्रूपान् पदार्थान् जन्यान् प्रकृति जीव परमाणिवतर रूपान् इति भावः संवादयितुं शक्यते ५

अत्रा समीक्षा जीवेश्वर प्रकृति नित्यवाद परमाणु नित्य वाद स्वस्वोक्ति विरुद्ध स्वीकार इति तूक्तं भक्त्यादि फलस्याथंत प्रार्थतेति श्रुत्याविहिस्यतस्यफलदानेनान्यायकारित्वंनहितस्यस्वा

यहां वेदके न्यायकारित्वं यत्र पद्य भावस्तत्र ऐसी ईश्वरमें व्याप्ति अन्वय मुखेन हैं अन्याय कारित्ववति पापवत्व सेसोव्य तिरेक व्याप्ति तुल्य विधिविद्यतया स्मृति में है अन्याय पापकी व्याप्ति का दोनो में तुल्य अनुवाद है वह सर्वज्ञ होने से सभ से बड़े ज्ञान वाला इसी से सभ कुछ देख कर उसी तरह के वेद को रचता हुआ सभ से अधिक विचार वाला है उस क सृष्टि क्रमको पुराण के गप्पों से (अति शयोक्ति आदि एक वाक्यता की रीति मीमांसादि की समक्ष यहां देख इस मत की अलङ्कार विज्ञाता और महर्ष्यनुमत विचार शक्ति करते जाना) समर्थन बदशनही देसकते वहां तो बिलकुल सृष्टि क्रम से विपरीत (ऊर्ध्वरेतः के वीर्य शक्ति की अतिश योक्ति) ग्रीवा से सुग्रीव आदि की उत्पत्ति वर्णन है इस की तरह वेद में अकल से बाहर बातनही वह सर्व व्यापकहै और नित्य अजन्माहै वह सत्यरूपसे शाङ्कर कीतरह जो मिथ्या नही अथवा सृष्टि प्रवाह अनादि होने से जैसे पहले सृष्टि क्रम होते थे उसी तरह जगद्रूप जन्य पदार्थों को प्रकृति जीव परमात्मा से भिन्न इतर को पैदा करता हुआ ५

र्वीकरण प्रमुक्तपक्षः सेवकसेवा फलादानस्याप्य न्यायत्वात् मापि शरीर सामान्या भावः संयोगे नाहमदादि शरीरना दाय बधात् स्वादृष्ट भोगावच्छेद शरीरा भावार्थं कत्वेऽवतारा निषेधः सुग्रीव कथादि वदङ्गिरादि कोत्पत्ति निरुक्त समस्तासद्रादि रोदन अरजतो रपत्तिरुषसःसूर्यजनक त्वादिकमिगण्यवादोवेदेऽपि तुल्यः लाक्षणि कत्वमप्यु भयोः समम् ग्रीवासदृशि ग्रीवानामन्यां वाकस्यांचित्त दुत्पत्त्या ऽपिसृष्टि क्रमाविपरित्यं वस्तुतोर्थं वादा नामति श्रयोक्ति प्रस्ताव रूपत्वेन स्वार्थे ऽप्रामाण्यात् तात्प-

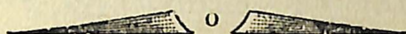
---

यहां समीक्षा कुछ ब्रैकट्स से दिया ही दी और भी करते हैं कि प्रकृति नित्य वाद् और उन से पैदा फिर परमाणु नित्य वाद यह तो दर्शन का परस्पर विरुद्ध वादि दीमाग तो देखने में आई रहा है और भक्ति के फल देन वाला परमात्मा को न्याय कारि मानना तो दलील में हो नही आता सेवक की सेवा के फल नदेने से गवर्नमेण्ट आज कल की भी अन्याय ही मानती है

धर्म शास्त्र का भी विवाद यह है इस से उसे कोई अपनी नौकरी की तरह भक्ति करने वाले को फल देने से पक्षपाती नही कह सकते और सर्वव्यापक मान कर उसका कायसामान्या भावरूप निराकार मानना तो बिलकुल मेरे मुंह में जिह्वा नही के बोलने वाले की तरह समझने से कायसामान्या भाव कभी हो ही नही सकता अपने अदृष्टके भोगने के लिये उसका शरीर नहीं ऐसा कहने में तो दूसरे के अदृष्टों से उन के अदृष्ट भुगाने के लिये मत्स्यादि की तरह अवतार कृष्णादि अपने मतके विरुद्ध भी उस के सिद्ध हो जायेंगे सुग्रीवकी कथा की तरह कोयला पर वीर्य गिरने से अङ्गिरा आदि व्याकरण निरुक्त आदि

थोर्यै ऽमोघवीर्या व नवतर बीजत्वात्पुरातना अतिनरसामर्थ्यावा प्राकतन विकृत गर्भाग्रीवायोनि सेवाकश्चि त्पुरासुतः समजनि चरकादि लिखितरीतो भक्षणवलवत्ता संपादनेन वाकस्यांचित्पु- त्रो जनीत्यादि बहुसरतात्पर्य कत्वेन पुराण वादस्या गप्पपदार्थ त्वाचनायसर्थो ऽतिवयुक्ततम इतिविभाव्यं बहुदर्शि भिरितिदिक्

साख्यमते सजीवः प्रत्यक व्यक्त्पेक्ष में कवचनं शुक्रमङ्ग त्वाच्छ्द्धन कायमतएवकायादृष्टजन्म बन्धेन कर्तृत्वादिवाप्राकृते नरहितमव्रणमतएवतदधीनव्रणकल्पस्याजस्य दुःखवरिखानस्य



में भी वेदके ऋषिओं को उत्पत्ति बताई है गप्प वाद मगरअर्थ वाद को कह कर पुराणों से भागों तो मीमांसा वेद से भी बाहिर होंगे वहां भी रुद्रके रोने से चान्दीउषा का सूर्य बच्चा सो रोदीत् तस्ययद श्रुअपतत तद्रजतमभवतक रुशत् वत्सानन्त्र सूर्यं मस्या वत्समाह निरु-में लिखा है वहां लक्षणा करने लगें तो पुराणो से भी नही भाग सकते ग्रीवासो पतली वसुन्दरी ग्रीवावालीवग्रीवा नामवाली कीसी स्त्रीसेपैदा शमाननमेंग्रीवा तक पहुंचानें याने चिकित्सा की रीति से वीर्य भक्षणकर व पारा भक्षण कर बलवान् हो नीरोग हो किसी ने पुत्र पैदा किया व पुरानेलोंग ऊर्ध्वरेता अमोघवीर्यथे इसीतात्पर्य मात्रार्थसे पुरातन ऊर्ध्वरेता को प्रशंसा मात्र नाटक की तौर पर दिखाने आदि सभी तरह समर्थ न होने पर भी पुराणोंको गप्प कहना कितनी अकलमन्दी है इसे मन्द भी जान लेंगे ६

सांख्य मतमें इस का ऐसा अर्थ होगा कि वो जीव (यहां एकर व्यक्ति की तरफ खयाल से एक वचन है) शुक्र अमङ्ग होने से शुद्ध है इसी से रूपादि नाम जन्म रूप प्राकृत शरीरसे

संबन्धाद्रहितं स्नावभिनैं मित्तकशरीरायुर्भोगार्थप्राण वाहिन्या दनाड्यादि परिणामरूपाशुद्धि रहितम तएवापाप विद्धं पापेनानि पिरसेन पुण्य पाप रूपा दृष्टेन प्रकृतेर्कमसङ्गरहित स्वरूपंपर्य गात व्याप्तम् भेदख्यात्या ऽप्रगतासङ्ग रूपः प्राकृतनिमित्त नैमित्तक बन्धरहितो वस्तुगत्यावा वगतः कविः सदृक्मात्रस्वरूपः स्वच्छायथया क्रान्तदृक्म नीषीमतो वृत्त्यैव गौणछाया निष्ठवृत्ति कार्यं कारी स्वयंभूरणः परिभूः सर्वव्यापकः अर्थात्सर्वसंयोगी शाश्वती भ्यसमाभ्यर्थास्मिरं याथातथ्यतः स्वरूपसन् पृथमाव्यर्थतांस:

साथउसका संसर्गनहीं उसद्वारा व्रणके तुल्य रजोगुणके परिणाम दुखअन्तः करण धर्म के (धर्मा धर्म फलं)शरीरा युर्भोग के लिये बनी प्राण वाहिनी नाडी से भी उस असङ्ग विरुद्ध रूप जीव का संसर्ग नहीं

चलन परिणाम आदि प्राकृत धर्म का भी उस में नहीं इसीसे प्राकृत प्रतिबिम्ब विशिष्टान्तः करणके किये पुण्य पापसे भी सबन्ध रहित है क्यों कि अदृष्ट कर्त्ता को धर्म होने से अन्त करण में ही रहेंगे वा जीव इस तरह के असङ्ग रूप से व्याप्त है और भेदख्याति से (प्रकृति और उस के विकार और उन में प्रतिबिम्ब इन से जीव भिन्न हैं ऐसे) जीव असङ्ग समझ कर प्राकृत निमित्तने मित्ति बन्ध रहित वास्तवरूप से जान लिया गया कवि याने दृक् शक्ति मात्र स्वरूप (प्रकाश करने की शक्ति देने वाला माना हुआ) मन की वृत्ति द्वारा छाया रूप गौण आत्मा क काम को कर्त्ता लोक में माना हुआ अजसर्व व्यापक चिरकाल यथार्थ संसार के व्यवहारों का गौण रूप से कर्त्ता हुआ है ७

व्यद्धात् गौणवृत्याक रोतियद्वा प्रकृति रूपः सपरनात्मा पर्व गात् व्याप्तवान् आपूरक स्वरूपेणतद्धितत्वं शुक्रं बलवत्तरमकाव नखलु कस्येदं कार्यंब्रह्मणो ऽविरजसम्बल नामस कस्य संसर्गेण कार्य कारि त्वेपिन तन्मात्रमन्तः करण कारवं बानकेन निराकार रूप कारण रूपेण व्यापूरकं अव्रण माच्छिन्नं निरन्तरंनतस्यापूर कान्तरापेक्षा छिद्रस्य हितुटिमतः साअस्नाविरसापूरक रूप स्पस्नावादि मत्वंनसद्भूपतत्वेना युर्भोगा भावात शुद्धं परार्थत्वेन स्वार्थ रहितम् पापेना तएवन विद्धं वैषम्य--नैर्घृण्या दिनाक

———:o:———

अथवा प्रकृति रूप ब्रह्म तत्व आपूरक (भरती करता) रूप से अपने बनाए सभ को व्याप्त करता हुआ है बलवत् स्वभाविक ही कर्तृत्वआपूरकत्व उस में बल है ब्रह्मा उसी का हीनामनही याने सृष्टिकर्ता ब्रह्माहै तोउसीका नाम प्रकृति नही वह तो रजोगुण मात्र का ही काम है प्रकृति तो सत्वरजस्तमः तीनों स्वरूप को कहते हैं अन्तःकरण रूप ब्रह्मा महत्तत्व है उस की कार्य कोटि का वह नही किन्तु उन का भी कारण है अथवा शरीर भिन्नरूप से ही सभ का आपूरकहै उस में छिद्र नही है इस से उस का आपूरक और कहीं नही छिद्र में भरती होती है निरन्तर सर्वव्यापक को उसकी क्या आवश्यकता इसीसे आयु भोग के हेतु स्नावादि उस के विकार हैं उस के भोग्य कोटि के नही वह तोस्वार्थ से शुद्ध है परार्थही केवल उस नटीकी प्रवृत्ति है इसी से उस के सृष्टि कर्तृत्व में वैषम्य नैर्घृण्य दोषादि पाप नही अन्तःकरण द्वारा विचार कर ही कार्यों को संपादन करती है जन्म जन्मान्तर में भी व्यापक होने से मिलती है छायासे सर्व मातृतत्व की शक्ति रूप सत्वगुण उसी स्वरूप है और नित्य है

विरक्ताय यासवंश मनीषीअन्तः करणजनन द्वारा कार्यं विचारादि कमिच्छति परिभूत्वा पकोजन्म जन्मान्तरे स्वयंभूरजःयाथातथ्यत स्वरूपेण सतोर्थान् परिणामान्सृष्टिरूपा व्यदधाद्रचितवान् चिरम्

अथवा भोगा (पवर्गद्वयं कार्यं) पृथगाह यदाशुद्धं सत्व प्रधान मकायन पगतं कस्येदं रजोऽथ यावेन तदात्म सान्नालिध्येना त्यन्तरहितं शुक्रं बीज रूपंभेदरूया त्याकारण प्रकृति रूपात्म रूपंपरितो विविरयागात तदाअरना विरमा युर्भोगरहित

0

चिरकाल सत्य स्वरूप से यथावत सृष्टि को करती है ८

अथवा भोग और अपवर्ग दोनो कार्य सृष्टि के प्रयोजनहै उन की उत्पत्ति कहते हैं कि सत्व प्रधानक रजो गुण और वैसा मलिन तमोगुण उन से रहित अर्थात् उन की अत्यन्त न्यूनता होने पर बीज रूप प्रकृति भेद ख्याति से जानी गई तब व्रण के तुल्य आध्यात्मिक आधि दैविक आधि भौतिक तीनों प्रकार के दुःख से रहित रूप कैवल्य को जीव प्राप्त होता है जब स्वयं भूपाने रजोगुण प्रधान ब्रह्मा रूप सर्वव्यापक प्रकृति शुक्रादि विशेषण असङ्ग जीव के सामीप्य से अन्तःकरण छाया द्वारा परस्पर धर्म मात्रा ध्यास होने से अविवेक में है तब कर्तृत्वा भिमान जीव को ज्ञातृत्वा भिमान प्रकृति को होने से गौणात्म प्रतिबिम्बसे कर्तृत्वज्ञातृत्व धर्ममान कर सत्वगुणसे सर्वज्ञ शक्तिमान् निमित्त धर्माधर्मको विचारता हुआ अन्तःकरण द्वाराप्रकृतिततवही मुख्य कोभूलना ही चिर काल संसार भोग रूप यथा यही सृष्टि को रचता हुआ ३-६

विज्ञान भिक्षु के सांख्य मत में ब्रह्मादि समष्ट्यन्तःकरणाव

मप्रपंचेन कल्पा ध्यात्मिकादि विविधदुःख रहित रूपमगात् कैवल्यं यदातु स्वयंभूरजः प्रधानंब्रह्मात्मानं परिभूःसर्वव्यापकं शुक्रादि विशेषण विशिष्ट जीवमगात् तत्संनिधिव शाहच्छाया पुत्या कर्तृत्वा भिमानवान्व्यद् धद्रुचितत्वां स्तदापिरं यथार्थ मर्थान् सांख्यलक्षणानकविःममाक्रान्त दर्शनइच्छायामनसास्वस्व स्वस्वष्टिकालिकान्तः करणजननद्वारा तन्निर्द्दिष्टनिमित्त रूपभावैर्वा तद्विरचितवानदृष्टा धीनान् नैमिकानिति भाव इति दिक् ३-६ विज्ञानभिक्षुमते सांख्य मती यत्तृतीयोर्थंश्चितिछायास्थाने

च्छिन्न जीव विशेष कों कहते हैं तो उस के मतमें तीसरा सांख्य वाला अर्थ है परन्तु धर्म प्रतिबिम्ब की जगह धर्म धर्मि दोनोंका प्रतिबिम्ब उसे मन्तव्य है इससे प्रकृति कर्तृ हुई की जगह ब्रह्मा कर्ता हुआ ऐसा ही अर्थ वह करेगा स्वय प्रतिबिम्बत अकाय विष्णु शरीरभोग से अपवर्ग करता कराता है यह पूर्वार्धक अर्थहैं योग मत में इस का ऐसा अर्थ होगा किवह योगी आत्मा संपूर्ण विश्व में व्याप्त होय स्थिर है योग के प्रभाव से सत्वगुण प्रधान अन्तःकरण वाला है काय मात्र व्याप्य नही याने और जीवों की तरह केवल अपने देह का देखने वाला नही अथवा परिच्छिन्नात्म दर्शी नही और निरन्तर स्नाव मात्र बद्ध नही याने और जीवों की तरह शरीर के भीतर नाडी में ही प्राण संचार वाला नही किन्तु प्राण को अपने वश होने से परकाय प्रवेशादि तक कर सकता है अथवा देहा भिमान बद्ध नही इसी से देह में संयुक्त या उसी वृति स्वरूप ही नही याने भेदख्याति असंप्रज्ञात समाधि से आत्म स्वरूपावस्थिति तक पहुंच चुका है इसी से और जीवों के भोग्य यात्रादि से विरुद्ध नही उनजगह

धर्मधर्म्यु भयवृत्ति पृति विम्बा पत्तिर्वा श्येति ब्रह्मः शिष्टयोः कर्तृत्वा पवर्गदात्तृत्वमर्थ इति दिक् ७

योगमते सपर्ष गद्दात्माव्यापत्वान् श्रिमतः शुक्लशुद्धसत्व प्रधानमकार्यकाया व्यादयम ब्रह्मच्छिद्रं निरन्तर मनसाबिरंमाव माग्रावहुमतीताभिमानं जितप्राणत्वा त्परकायावेशक्षमंवा शुद्धम संपृक्तमेक मात्रेण देहेनतदीय भोगोपरक्त वृत्यावा भेदख्याति मन्तम तएवा पापविद्धं तत्तज्जीवदे होपभोग्य पापादि रहित स्वरूपम् कविक्रान्त दर्शनः सकल व्यवहित सूक्ष्मवि प्रकृष्ट द्रुक्प

सूक्ष्म स्थूल दूर से भी देख सकता और सर्वव्यापक सब प्रकार का होसकने वाला का यव्यूहवेना और अपनी ही शक्ति योग सामर्थ्यमें होसकने वाला अपने संकल्पित पदार्थ को यथार्थ बनाने वाली प्राकाम्य सिद्धि से वह सत्य संकल्प अभिलषित पदार्थों को चिरकाल रचता हुआ ईश्वर पक्ष में भी इस का दूसरा अर्थ वैशेषिक रीती से हो सकता है ८

मीमांसक के मत में इसका अर्थ होगा कि वह जीव विधि वाक्य शेष आत्मा को समक्ष कर्म करने से ऊपरके स्वर्गलोकादि में प्राप्त होता है और पहले भी हुआ अकाय याने इस देह को छोड़कर योगसे पुण्य को इकठाहोकर निरन्तर ह इस का स्वर्ग है अनेक देह सामर्थ्य होने से नित्य आयु के देह का नियमवत में नही है और स्नावादि नारक दुःख नही(स्नाव से रक्तवगैरह स्रवनिध दुःख यहां कहगये हैं) इसी से दुःख से ग्रस्तन ही यही स्वर्ग का लक्षण है कि दुःख नही और दुःख ज्यादह भी नही सुख होने में व्यवधान भी नही सुख ही सुख जिस लोक में हो वही स्वर्ग है यन्न दुःखेन से भिन्नन्नच ग्रस्त मनन्तरम् अभिलाषो

रिभूः सर्वे व्यापकः सर्वं विधभवनादि सामर्थ्यं वोन्त्रा स्वभूः स्वशक्त्या भवन सामर्थ्यवान् याथातथ्यतोर्थान् संकल्पितम् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यश्चिरम् मनीषी सत्यसंकल्पः ईश्वरपक्षे व्यस्यार्थो वैशेषिक वदेतन्मते कार्यं बतिदिक्

मीमांसकमते सजीवः पर्यगादुपरि स्वर्गादौविधिविशेष शुक्रं शुकलशुप चितयाग पुण्यपुञ्ज कायं त्यक्तदेहम् अव्रण व्रणे मच्छिद्रेण रहितम् निरन्तम् अस्नाविरं स्नावादि नारक दुःख रहितम् कर्दिहानिय तत्वेन स्नावादि नियतदु विपाक रहितं शुद्धमग्रस्तं दुःखेन पापेन—

पनीलज्ञुतत्खुसंस्वः पदास्पदम्) इसी से पाप और उस के फल दुःख का अनुभव नही कर्ता और विद्वान् ही होता है कर्मफल को जानने वाला होताहै अभिलषित सुखोंपभोग उसकी सामग्री का जानने वाला सभ जगह पहुंचने वाला स्वयं सभ कुछ बन जाने की शक्ति रखने वाला सत्य संकल्प चिरकाल अपने उप- भोग्य अर्थों को रचता हुआ।

शङ्कराचार्य की व्याख्या से हमारी संस्कृत टीकानुसार यह अर्थ होगा कि जो पीछे के मन्त्रों से आत्मा साधारण रूप मायिक के निषेध का अधिष्ठान आत्म तत्व है सच्चिदानन्दरूप कहा जाता है वह शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप है कि वह आकाश की तरह सर्वव्यापक है और स्वयं प्रकाश है और बाध्य बाध सभ के देखने वाले का बिम्ब प्रकाश शक्ति मात्र है वह स्थूल सूक्ष्म शरीर रहित है उस से भिन्न विविक्त रूप ब्रह्म को स्थूल सूक्ष्म शरीर बाधाधिकरणता ही है और अविद्यामल रहित है याने कारण शरीर भी नही उस के भी निषध का अधिष्ठान है और धर्माधर्म अन्तःकरण के धर्म भी इसे नही (शुक इत्यादि शुक्र

तत्फलेन यद्दुःखेनाभिद्रुतं भिन्नं यन्न दुःखेन सम्भिन्नमग्रस्तमनन्तर मित्यादि लक्षितं स्वर्गं याति कविर्विद्वान् कर्मफलादीनामनी षीअभिलषित सुखोपभोगतत् साधनसम्पन्नः विभ्वः परिभूः सर्वगतिः स्वयंभू स्स्वयं भवनशीलः शाश्वतीभ्यः समाभ्यो ऽर्थान्स्वोप भोग्वान् इति भावः ९

भा० भाषोयमती समंस्तैस्कत आत्मा स्वेन रूपेणाकिं लक्षण इत्याह। यंमन्त्रः सपर्यगात्स यथोक्त आत्मा परिसमन्ता दगाद्गतवान् आकाश वद्व्यापीत्यर्थः शुक्रं शुद्धं ज्योतिष्मद्दीप्तिमा

इस अर्थ से कविः इत्यादि निर्देश से पुलिङ्ग में व्यत्यय किये गये हैं) वह सर्व साक्षितासे उपलक्षित है उस से अन्य कोई द्रष्टा देखने वाला और चेतन नहीं ऐसा और श्रुतिओं में भी लिखाहै वही सर्व सत्वादि गुण विशिष्ट ईश्वर हुआ माया प्रधान विक्षेप शक्ति विशिष्ट मायावच्छिन्न चिद्रूप सर्वेश्वर स्वस्वामि सर्वरूप हो नित्य मुक्त भी माया परिणाम द्वारा अपने२ कर्म फलानुसार जैसा चाहिये ऐसाही सृष्टि रचकर जीवों को उन के कर्मादि बिभाग पूर्वक शरीरादि चिरकाल तकदेता है याने सृष्टि पालन से इत्यादि रूप से परिणम मान माया का अधिष्ठान वही है अधिष्टान मात्र स्वरूप लक्षण और कर्तृत्वादितटस्थ लक्षण कहा इससे अधिष्ठान मात्र परमात्मा जीवात्मा सभमें व्यापकहै वह शुद्ध निराकार निर्गुण निर्धर्म निर्विशेष है साकार सर्वज्ञसर्व शक्ति न्यायकारी माया वच्छिन्न चित् रूप सगुण ब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है अल्पज्ञ त्वादि विशिष्ट माया का अंशभूत अविद्या वच्छिन्न जीव का स्वरूप है ब्रह्म आश्रय द्वारा विवर्ता धिष्ठान समष्टि का होने से परमात्मा जीव आत्मा दोनो में अनुगत भी

नित्यर्थः अकायम शरीरो लिङ्ग शरीर वर्जित इत्यर्थः अव्रणम अतम् अस्ना विरंस्नावः शिरायस्मिन्न विद्यन्ते इत्यस्नाविरम् अव्रणम स्नाविर मित्याभ्यां स्थूल शरीर प्रतिषेधः शुद्धं निर्मल मविद्या मलरहित मिति कारण शरीर प्रतिषेधः अपापविद्ध (मिति कारण शरीर प्रतिषेधः) धर्मा धर्मा दिपाप वर्जितंशुक्रि मित्यादीति वचांसिपुं लिङ्गत्वेन परिणेयानि सपर्यगादित्युप क्रम्यक विर्मनीषी त्यादिनो पसंहारात् कविःक्रान्त दर्शी सर्वदृक् नान्योतो स्तिद्रष्टे त्यादिश्रुतेः मनीषा मनसोदर्शयिता सर्वज्ञईश्वर

है यह विवेक इस हे सूचना किया ११

माध्व मतमें जीवअणु परमात्मा सर्वव्यापक का अंशमात्रराज मन्त्री की तरह इस से उस के मत में अर्थ ऐसा होगाकि वोहरि परमात्मा संसार में भी सब जगह मौजूद है क्या मट्टी की मूर्त्ति में क्या देह में और प्रकाशक है याने नित्य सर्व ज्ञान रूप बल का आश्रय है लीला से प्राकृत अप्राकृत दिव्य देह मात्र को जानकर उस के पैदा करने का बल उसमें है अल्पकार्य मान कभी २ अवतार लेता है और देह से भिन्न रूप से सब जगह मौजूद है अथवा एक देह के साक्षी जीव की तरह देह धारी नहीं किन्तु देह धारी होकर भी सर्व साक्षी ही रहता है क्यों कि वह व्यापक रूप से स्ना यादि देह परिच्छिन्न अणु जीव वत नहीं ।

इस से दुःख रहित है और दोष रहित (न्यायकारी होने से वैषम्य नैर्घृण्य भक्ति फलादातृत्वादि दोष उस में नहीं पाप सम्बन्ध से रहित है इस में कृष्णावतारादि कथा ओ में मूर्खों की दोष शङ्का का वेद भगवान् ने पहले ही जवाब सूचनकर छोड़ा

इत्यर्थः परिभूः सर्वेषां वपु परि भवतीति परिभूः स्वयंभूः स्वय मेव भवती नियेषमु परिभवति यश्चो परिभवति ससर्वः स्वयमेव भवतीतिस्वयंभूः सनित्य मुक्त ईश्वरो याथा तथ्यतः सर्वज्ञत्वाद्य था तथ भावो यथानित्य तस्मात्तथा भूतकर्मफल साधनतो ऽर्था नकर्त ऽवपद्यार्थो ऽव्यदधाद्विहितवान् यथानुरूपं ऽव्यभजादित्यर्थः शाश्वती भ्योनित्याभ्यः समाभ्यः संवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्य इत्यर्थः ८।१०

टी॰ योयमिति जीव परमात्मो भयसाधारण नायिकवा

———:o:———

वह कवि याने सर्वज्ञ है कवि नाट आदि की तरह अवतार लीला नाटक मात्र उपदेश के लिये भक्ति के शास्त्र पूजा धारा दि सूचन कर्ता है उसे पाप का संसर्ग नहीं होसकता इसी कवि पद का अर्थ भागवत में सूचन किया बर्हापीडनटवरवपुः वह भगवान् कृष्णचन्द्र मोर पुच्छरखने वाला नटके तुल्य नाटकाबता रही है यह इस का अर्थ है वह इसी वास्ते मनाषी स्वाधीन विचारने वाला सर्वत्र रहने वाला अथवा कंसादि दैत्य लोगोके परिभव याने दुर्दशा के लियेही अवतार लेनवाला जैसे गीता में भी भगवान् इसी कवि परिभूवेद के पदों का अर्थ कर चुके हैं

परित्राणाय साधनांवि नाशायच दुष्कृतां धर्म संस्थापना र्थाय संभवा मियुगेर सत्पुरुष भक्ति वाले गोपी आदि की रक्षा के लिये और दुष्ट कंस जरासंन्ध शिशुपाल आदि की दुर्दशा भुगाने के लिये और धर्म शास्त्रीय पद्धति भक्ति पूजा आदि भक्ति के चलाने के लिय मैं युगर में हुआ करता याने अवतार लेता हूं और वास्तव अजनित्य ही है वह यथार्थ रूपसे सृष्टि और उस के उपदेश और अवतार चरित्र वगैरह को चिरकाल

धा धिकरण भूतशुद्ध सच्चिदानन्द इत्यर्थः दीप्तिमानिति स्वयं प्रकाश रूपः प्रतिषेध इति सकल बाधाधिकरण शुद्धनिर्देशा येति भावः सर्वद्रक् ज्ञानिनो बाधप्रति योगितया विद्यमानस्ये तस्य चयथा तथा प्रतीयमानस्य सर्वस्य प्रकाश प्रयोजकदृक् स्वरूपः इत्यर्थः सएव सृष्टि रचयितृ मायो पाध्य वच्छिन्नो जगत्कारणस वताराद्विधात्री चमोयाकलिपतैः कारणत्वेन कल्प्यमान उपास्य मानश्च प्रती केपाषाणादौ बाधप्रति योगित्वेन भासमानमाया कएव ज्ञानवतां वस्तुतो नित्य मुक्त स्वीयएवात्मा लक्ष्यरूप इति पूर्वार्द्धोक्त राद्धाभ्यां स्वरूप लक्षण तटस्थ लक्षण लक्षित इतिभाव वस्तदाहस नित्येति ११

सृष्टि कालमें रचता हुआ और है अथवा पूर्वधं केअवताराद्दि अकायादि विशेष विशिष्ट परमात्मा हरिको भजन करनेवाला उसे पहुंचता हुआ और है वह स्वयं भूअज जीव यमादि काभ परिभूदुर्दशा करनेवाला मुक्तिकाल में सारूप्य सालोक्य सामीप्य वैसा देह धारी होना उस के लोक में रहना उसके पास बैठना ऐसा भगवान् की कृपा से लीला भोग के लिये देह धारी स्वतन्त्र होने से यथार्थ अपनी भक्ति के अनुकूल अपने भोगो को रचता हुआ और होगा

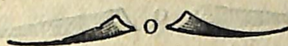
भट्ट भास्कर के मत में ऐसा अर्थहोगा कि वह हरि से भिन्ना भिन्न जीव मुक्ति कालमें अभेद से सायुज्य तक काष्ठा को पहुंच सकता है शुक्र याने प्रकाश बल वाला जैसे बुद्बुद जल में होतेहैं ऐसे उस परमात्मासे मिला हुआ अकाय याने उसविष्णु के काय देह को प्राप्त होता है सालोक्य सामीप्य सारूप्य तक भेद होने से उस अविष्णु काय देह के पास तक पहुंचता है

माध्वमते सहरिःपरमात्मा पर्यगाद्व्याप्तवान् संसारं शुक्रं प्रकाशको नित्य सर्वज्ञानाधिकरणत्वात् सकल जगदाविर्भाव हेतुत्वात् लीलया प्राकृता प्राकृत सकल हेतुर्भिमः अकायं अल्प कायः कादा चित्कावता रशालित्वा त्काय भिन्न निराकार रूपेण सर्वत्र विराजमानः एकमात्र देहसाक्षिता वज्जीव विलक्षण इति वाअस्नाविरस्नावाभिर्देह धारिणीः शिरादि भिरपरिच्छिन्नमिः अल्पार्थ कत्ववा वतारा भिप्रायेण नञोऽनुदरं तरुण्या इतिवत् अपरिच्छिन्नजीव बत्स्नावभिरदुःखं शुद्धं निर्दोष मपापविद्धं पाप संसर्ग रहितं कृष्णा द्यवतार कथादिषु मूढ शङ्क्यमान दोषान्

अथवा विराट्राकार में भी सायुज्य लेसकता है अव्रण याने भिन्न लोक में रहने का अन्तर व्रण नही उसे और उस से पैदा होने वाले दु खका भागी नहो और (अ)विष्णु को स्नान प्राणवा-हिनो नाडी के तुल्य प्राण प्रिय अथवा उन के साथ तक सायुज्य में मिलने वाला होता हे वह विष्णु का काय (देह) शुद्ध अनन्त कल्याण गुण वाला निर्दोष भिन्ना भिन्न ज्ञान और प्रभाधाम का अधिकरण उस स सामीप्य सालोक्य सारूप्य सायुज्य तक अणुजीव हरि भक्त पहुंच सकताहै वह अभक्त और यमादितक रिस्कार कर सकताहै वह स्वयं अपन आप हीसे तो होने वाला भिन्ना भिन्न रूप से है इसी से उस की संपत भगवान् प्रसाद से बढ जाने सेअपन भोग्यां को रचनेकी शक्ति होजानसें वैसे रचता हुआ और है और होगा १३

निम्बादित्य के मत में इस का ऐसा अर्थ होगा कि वो विवर्त्त भिन्ना भिन्न जीव अणुरूप जीवन्मुक्त ज्ञानी परमभागवत प्राप्त होता है उस भगवान् के ज्ञानादि बल वाले देह को

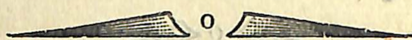
बकाद्यः सूचितो ऽनेनकविः क्रान्तदर्शनः सर्वज्ञ त्वादुपदे शार्थंन।
टकरचना तुल्यरामाद्य वतारधारित्वाद्वाक विवन्नट वच्चवर्हा
वेषंनट वरवपुरिति भागवत पद्यर्थो त्र्यथनितः मनषो स्वच्छन्द
चारी परिभूः सर्वंगो भावी परि भार्थमेव वाजरा सन्धादि दैत्या
नांधृत।बतारः विनाशाय चदुष्कृता मित्युक्तिःसूचितानेनस्वयंभूर
जोवस्तुतो याथा तथ्यतोर्थान् सृष्टि रूपान् उपदेश्य तत्तच्चरित्र
रूपान्वा व्यदधात् विहितवा नितियद्वा शुक्रादे निरुक्त विशेषण
विशिष्टं परमात्मानं हरिंपरिभूर्यमादीनां स्वयंभूरजोजीवो
हरिभक्तः पर्यगान्मुक्तिकाले सारूप्य सालोक्यात्मनातदीयंकृपा



सारूप्य के वक्त वैसा रूप वाला होता है अव्रण निर्दुःख दुख
रहित तो सालोक्य में ही होजाता है अहरि का प्राण प्रिय तो
समीप्य में ही होजाता है शुद्ध उसी रूप को तो सायुज्य काल में
पहुंचता है जैसे रज्जु में सांप दूर सामीप्य से पास वहीं तक
हो अथवा सभी कालमें पवित्र शरीर शौच वगैरह जैसामन्त्रादि
से स्नानादि शास्त्र पद्धति प्रक्रिया है वैसे ही रखनी चाहिये
अथवा अनन्त कल्याण गुणवाले परमात्माक देह को पहुंचता है
वह देह निर्दोष है दूसरों के तिरस्कार यमं तक करने के उस को
पहुंचने वाले की सामर्थ्य होती है वह स्वतन्त्र हरि भक्ति की
कृपा से भोग्य रचन की सामर्थ्य वाला होजाने से वैसे ही मुक्त
के आनन्द के लिये सृष्टि सच्ची बना लेता है दिव्य देह धारण
कर चिरकाल तक फिर वैदिक से नीच आने की कोटि में नहीं
रहता मामुपत्यतु कौन्तेय पुनर्जन्म नविद्यते मुझे पाकरहेअर्जुन
फिर नीचे कोटी का देहनहीं होता ऐसा गीतामें लिखाहै १५

सादित लीलोपभोग विग्रहः यथार्थं भक्त्यनु रूपमर्थानुभोग्या म्यदथादिति भावः १२

भट्ट भास्करमते सपर्यगाद्भिन्ना भिन्नो जीवस्तम भेदेन मुक्ति काले सायुज्यान्तां काष्टा मवाप्तवान् शुक्रं प्रकाशकम भेदेन सर्वानुगत जलरूप मिवबुद्बु दोऽकायनस्य विष्णोर्हरेःकार्यं देहं बिराडाख्यं लीला भोग योग्यताऽरूप्यादि कार्यंवा भेदेसा रूप्यान्तमेवअव्रणंलोकभेदेनान्तर रहितं सालोक्यंवदुःखरहितंवा अस्यविष्णो र्हरेस्नाविरं रूपंशिरा इवदेहस्या त्यन्तसमीपं शुद्धमन न्तकल्यानगुणमकायनिर्दोष भिन्नाभिन्नं ज्ञानं ज्ञानाधिकरणं सायु



रामानुज के मतमें इस का ऐसा अर्थ होगा कि वो अणु जीव स्थूल चिदा चिद्विशिष्टा द्वितीय हरि भक्त नारायण समा-श्रित सूक्ष्म चिद्विशिष्टा द्वितीय (अ)हरि के चतुर्व्यूह नारायण काय (देह) को जो बलवान् एक अद्वितीय ज्योतिः प्रकाशमय वासुदेव प्रधान है उसी से सायुज्य कायमें मिलताहै जैसे नाल कड़ी एक रथको मिल बनाती है और सारूप्य काल में उसीके अकाय समान देह को पहुंच जाता है निर्दुःख विराट कारण कार्य विशिष्ट द्वितीय तो सालोक्य में ही हो जाता है वह सामीप्य में उस(अ)भगवानकास्ना वाहिनीवत् प्राणप्रियतो पहले बन जाता है अथवा वह भगवान् ब्रह्म नाडीमें चिन्तनीय है व उसकी तरह भाग के लायकपन को ललताहै अनन्त कल्याणगुण वह (अ)वासुदेव का देह है पाप रहितहै दोष शून्य है उस का भक्त हरि भक्ति रहितो का तिरस्कारयमनक भी कर सकता है स्वच्छन्द हुआ भक्ति के फल के भोग्यों को यथार्थ रूप से लीला कैवल्य मूर्ति हुआ खुद रचता हुआ अथवा धर्मज्ञान प्रभा

जीवः वान्त: करण लयक्रमेण सालोक्य सामीप्य सारूप्य सायुज्यां निअवाप्नोति ज्ञान काले परिभूस्तिर स्कर्ता ऽभक्तानां स्वयमूर जोस्वयमेव भिन्ना भिन्न स्ववपुर्भव तीति तथावा याथा तथ्यतो र्थान् व्यद धाद् विरंचितवान्भक्तिभोग्यास्प्राक्तन मुक्तित्रयेइति भावो:विभाव्य:सुधीभिः १३

निम्बा दित्यमते सपर्यगा द्विवर्त्त भिन्नो ऽभिन्नोंणुजींवो वाप्तवान्मुक्तिं ज्ञानि स्वरूपं शुक्रं प्रकाशकं परमकाष्ठा यांरज्जु रूपभिव भुजङ्गो अस्यकायमकायं सारूप्यादि काले अव्रणं निर्दुःखं सालोक्यकालेपाअस्यस्ना विरंसामीप्यकाले शुद्धं सायुज्य काले पवित्रतावत् सर्वकाले शुद्धमनन्त कल्याण गुणम पापविद्धं

रूप और धर्मि रू र भी खुद होता है और प्रभारूपतेसंपूर्ण देह में व्याप्त हो जाता है १५

वल्लभ मतमें इस का ऐसा अर्थ होगा कि वोप्राप्त होता है ब्रह्म संबन्ध वाला हरि परायण समर्पण लेकर सायुज्य काल में भगवान् के शुक्र बलवत् ज्योती प्रकाश रूप उसी कृष्ण चन्द्र आनन्द कन्द के देह को सारूप्य कालमें दुःखरहित तो हो जाता है सालोक्य काल में ही श्री कृष्ण के गोपियों की तरह प्राण प्रिय तो होजाता है अत्यन्त सामीप्य काल में ही सालोक्य में भी ये मुक्ति होजातीहै शुद्ध अनन्त उत्तम गुणवाले पाप रहित निर्दोष भक्त्यादि सत्कर्म फल देने में न्याय कारी कवि सर्वज्ञ यापण्डित का व्यनाटकादि से भगवान् के संभोग शृङ्गारस को अनुभव करने वाला शुद्धाद्वितीय जीव परमात्मा श्री कृष्ण चन्द्र को अनन्य शरणता से भक्ति केमहिमासे प्राप्त जो फल सत्य संकल्पता आदि मनीष वाला परिभूकाल का भी तिरस्कर्ता स्वयं सभ प्रकार के लीला देह भक्ति फलकी प्राप्ति

निर्दोषम् परिभूतिरम्कलान्येषांन भक्तानां स्वयंभूः स्वच्छादः यथार्थमर्थान्भोग्या व्यदधा च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यानितमाभुपेत्य तुकौन्तेय पुनर्जन्म नविद्यते इति गीतासंवादादिति भावः १४

रामानुजमते स्थूलचिद विद्विशिष्टः पर्यगात् प्राप्तवान् सूक्ष्मचिदचि द्विशिष्टं शुक्रम द्वितीयं बलवत ज्योतिःसायुज्यकाले अस्यहरेश्च तुष्यूँहस्य कायनानाकाष्ठानी वैकरथंमेकंदेहं तत्स्वरूप वादेहं सारूप्य काले विराट कारणकार्य विशिष्टा द्वितीयमव्रण निंदुखं सालोक्य काले वातथा अस्यविष्णोःसामीप्यलक्षणत्वात् स्नाविरम् शिरावत दूभागतल्यं ब्रह्म नाड्यां वाचिन्त्यं शुद्धमन

से अप्राकृत उपभोग सिद्ध करता है शुद्धाद्वितीय परमात्मा हुआ परमार्थ उपभोग को रचता हुआ प्रहले भो १६

नकुलीश पाशुपत मत में वो परमात्मा पशुपति सभ जीव को व्याप्त करने वाला बलवान् स्वाभावि की ज्ञान बल क्रियाच वह तो स्वभाव से ही ज्ञान बल वाला है अथवा लिङ्ग रूप से शुक्र देता है पैदा करने वाला सभ जगत् का महाभारत में भी लिखा है नचक्राङ्कान वज्राङ्कानगदाङ्कयतःप्रजाःलिङ्गा काराभगा कारातस्मा न्माहेश्वरीप्रजाःनचक्र से(अ)काचिन्हहोता है अगर होता है तो शायद किसी के रेखा रूप हाथ में होता है नवज्र किसीके पासहोताहै नगदा किसीके पास होतीहै कुल परजा के साथ रहने वाले सर्व व्यापक परमात्मा के दोही रूप हैं एकर लिङ्ग और एकर शक्ति रूप भगा इससे सभ महेश्वर की ही पूजा है और श्रुति में महेश्वर ही जगत् का कारण माया पच्छिन्न चित् रूप मायिक संसार व्यापक मायिनं तुमहेश्वरम् इस श्रुति से कहा है स्तुहि श्रुतं गर्त सदंयुवानं मृगंन भीममुपह

मात्कत्वात्व गुणमयत्व त्रिदुं निर्दोषं परि मूर्तिरस्कलता श्वेर्षां हरि भक्ति रहितानां स्वयंभूः स्वछन्द रूपंयाया तव्यानापांन् भोग्यान् भक्ति फल स्वरूपा त्यदधाद्विहितवान् लीलाकैवल्य मूर्त्तिर्यद्वा स्वयमेव भवति धर्मिज्ञान रूपः परिभूः सर्वतत्व दहेपूभा रूपधर्म ज्ञान रूपश्चेति भावः १५

वल्लभमते सपर्यगा दवाप्तवान् शुक्रं बलं ज्योतिरूप स्वप्रकाश रूपंवा सायुज्य रूपपरम मुक्ति काले शुद्धा द्वितीयम् हर्यात्मक मकायमस्य हरेःश्री कृष्ण चन्द्रानन्द कन्दस्यका स्वरूप मुक्ति काले अव्रणं निदुःख मस्नाविरं अस्यविष्णोः श्रीकृष्ण

हनुपुत्रं मृडा जरित्रे रुद्रस्तवानो अन्यंते उस्मन्निवपन्तु सेना ऋग्वेद २।१।८ मन्त्र में महेश्वर का स्वरूप लिङ्ग ही चाम का बताया है उसका अर्थ मेंरुतन्त्र में भी पक्षि राज की सिद्धि में विनि योग है उसी रीतिसे तो बड़ा क्रूर आघातगग यान पशुसिंह आधा युवा पुरुष उपधात वाली चोंच सहित तेरा रूप जो मेरे मारने को लग रहे हैं उनदुष्टों के उपर पड़े ऐसा अर्थहै औरशिव सामान्य रूप में भी विनियोग है वह सभ काम्यध्यानभेद मूर्त्ति कामना के भेद से शिव ही के तो है सभ ध्यान जिस में करते वह पाषाण मूर्त्ति व पाषाण लिङ्ग व सत्य चाम लिङ्ग ही है यह मन्त्र कहताहै तुम वेदों में सुने उस भगवान् आंख के तुल्य छिद्र से आंसु तुल्य शुक्र गिराने वाला रोदनाद्रुद्रस्तस्य यद् श्रुअपतत्तद्रजतमभवत् जो उस का आंसु तुल्य शुक्र गिरा उसी से रजत आदि सभवने पारा उस से चान्दी आदि होसकते हैं गर्त्तं याने भगकि ऊपरवैठने वाला युवा अवस्थाका मृगहनने वाला ध्यान का आघात करने वाला आनन्द के हेतु उठा बड़े जोर से

चन्द्रस्य रुनाविरिंश्रिरावदिव तदीयपियंतम गोपीजनस्येवाति समी पत्ति शामीप्य सालोक्य मुक्ति काले शुद्धमनन्त कल्याण गुणम पाप विद्धं निर्दोषं कविः क्रान्त दर्शनो विद्वान् शुद्धाद्वितीय भूतोजीवः मनीषा परमात्मनः श्रीकृष्ण चन्द्रस्यतदनन्य शरणता प्राप्त भक्ति महिमन फलभूत सत्यसकल्प तादि लक्षणमन्त मीषताद्वान् परिभूः परि भवशील स्तिरस्कर्त्ता कालस्यापिकि मुतान्यस्य स्वयंभूः स्वयमेव सर्वं लीला देहस्य भक्ति प्रसादस्य प्राप्त्या भवति अप्रा कृतमुप भोगं साध यतिस्वयं भूयाथा तथ्य नो ऽर्थान् व्यदधा यथार्थं शुद्धा द्वितीयं परमार्थ सदलौकिकं मर्थं मुपभोग जातंविरचित वानित्यर्थः १६

न रुकने वाला इतना स्वरूप बता कर उस की स्तुति करता है हे भगवन् तुअपने स्तुति करने वालेको संभोग आदि से आनन्द दे तेरी सेना तेरे से आनन्दित हुई अपने मारने के लिये उद्यत हुए की मारने वाली हो याने बडे२ बली पुत्र पैदा करो सत्यज्ञान मानन्द ब्रह्म श्रुति में कहा आनन्द ब्रह्म है एषवा आनन्द याति येही आनन्द देने वाले इन्द्रिय और लिङ्ग के बिना किसी काम नही बाकी उसी वास्ते साक्षातपरम्परा से आनन्द हेतु होते है और इन श्रुतिओं में भी कर्म से आगे स्फुट हो जाय गा अथवा शुद्ध स्फटिक तुल्य ध्यान से उसका चिन्त न करतेहैं अथवा प्रकाश स्वतः स्वरूप है और काय याने ब्रह्मा से रचा हीनही किन्तु ब्रह्मा आदि का भी पैदा करने वाला और निर्दुःख और लक्ष्मी नाथ को अत्यन्त प्यारा अथवा विष्णु भी समाधि में उसी के आनन्द अनुभव उपासना करते है या ब्रह्म नाडी में

नकुलीश पाशुतमते सपरमात्मा पशुपतिः पर्यंगाद्व्यापक वान् सर्वं पशुजातं शुक्रं बलवत्तरं स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया चेत्यनेन संवादात् यद्वा लिङ्ग रूपेण शुक्र इत्याच्छुक्रमेव लिङ्गा कारा भगा कारा तस्मात्माहेश्वरी प्रजाः मायिनंतुमहेश्वर मित्या ख्यां संवादात् स्तुतिश्रुतमित्युक्ते रान्दहेतु त्वाच्छा ग्रोफुटी करणाच्च यद्वाशुक्रं शुक्लं रलयोः ययात् शुद्धस्फटिक तलम् स्याचिन्तम्

व्योमितियं वाप्काशात्म कत्वात् मकार्यं कस्येदं ब्रह्मणः कार्यं तत्रभवति ब्रह्मरूपद्य नन्तर्गतं ब्रह्मा दीना मपि कारणीभूत

चिन्तन करते हैं शुद्ध याने सदा पवित्र बडीभी अपवित्र वस्तु संसर्ग हो जल संपर्क मात्र से शिव रूप ही है सुखआदि सारे देह के ही कारण वह किस की अपेक्षा अपवित्र कहे जायें मन्त्रध्यान शास्त्र शुद्धित तो क्या ही कहेजायें अथवा अनन्त कल्याण गुण वाला इसीसे उसकोकुछपाप नही नियोग्यादिव्यभिचारिओं का तरीकाकुछआत्मामें पापपैदा करताहै जिसकारण दण्ड वेआपही भुगांता है इस का वही दण्डऔर दोष रहितहै कवि यानेसर्वज्ञ सभका पराजय कर्ता स्वयंभू अपने कारण से शून्य यथार्थ रूप से संसारिक और भक्ति फलों को रचता हुआ पहले भी अथवा वो जीव शुक्रादि विशेषण विशिष्ट स्वामि पशुपति नाथके शरण होता है सभ धर्म और छोड उसी के परायण होता है स्वामि के प्रसाद से सभ विद्या का लाभ होनेसे सभ का तिरस्कर्ता और सभ अपने लायक चीज बनाने वाला अथवा स्वामी के प्रसाद से सभ तरह के स्वातन्त्र्य का लाभ करने वाला मन से विचार करने वाला स्वामी के अनुग्रह से सभ लाभ करसकता है

त्व म् अव्रणं निर्दुःख मस्ना विरम् अस्नावि त्वोः स्नाविरम् स्नसवा हिन्यो नाडूपहताङ्ग पापग्रियंवद्धा विष्णुनाऽस्माधि समयेब्रह्म नाडी त्रिविधल्य स्येर्द्धिधनस्नाय संबन्धातद्धतपधि त्रंशद्धुमनन्तकल्या णगुणंसर्वदा शुद्धिमतापविद्ध रूपेणसंस्थितमुखादि हेतु अतएवा पाप विद्धं यद्वा निर्दोषम् एतेनसर्वेषु स्थलेन परिगा उपक्रमोप संहारेषु निर्देश व्यत्ययत्ययो बहुल मिति व्यत्ययेन कृतत्वात् कविः क्रान्त दर्शनः सर्वज्ञः परिभूः परिभव कर्ता सर्वेषां पराम शक्तिर्धिं विधेव श्रूयते इति संवादात् स्वयंभूरजः स्वकारण शून्यः याथा तथ्यतो यथार्थं व्यदधा द्विहितवान् अर्थात् सांसारिकान्

माहेश्वर के मत में इस का अर्थ ऐसा होगा वो परमात्मा व्यापक होता है अदृष्ट फल ढूंढने को शुक्र तक अथवा शुद्ध ज्योति स्वरूप ज्ञान मय अविष्णुक ब्रह्मा दोनो का पैदा करने वाला विष्णु पैदा कर उस से ब्रह्म उस से रुद्र पैदा हुआ ऐसा रण से रक्षा करने वाला अथवा पूजा समय में जिसके अवशब्द होता है बुबुबु अदृष्टानुसार फल देने से उस में किसीको विवाद नही स्नानादि हीन से अप्राप्य उसका त्रिपत्रय स्नान आदि नियम कर व्रत पूजादि होते हैं अहरि के स्नान आदि पूजा करने वाले भूतों का सेव्य प्रकट होने वाला अथवा सर्व व्यापक भूत राज अथवा अवतार काल में या धाम के लिङ्ग रूप में सूक्ष्म नाडी वाला शुद्ध अनन्त कल्याण गुण वाला पाप रहित निर्दोष सभके अदृष्ट जानने वालाबुद्ध्यातीत करनेसे मनीषाका संबन्धी सर्वेश्वर होने से स्वयं ही जगन्मय होने वाला वैषम्य नैर्घृण्यदोष छोड कर यथार्थ सांसारिक और मक्ति के फल को पहले भी रचवा हुआ चिरकाल तक अपने भोग के लिये १७

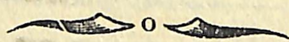
भक्ति फल भूतांश्च यद्वास जीवः पशुः तंपूर्वोक्त शुक्रादि विशेषण विशिष्टं पशुपतिं यदाशरण त्वेनस्वामिनं पर्यगा त्परित्य ज्यसर्वं धर्मानगात् तदाकवि: क्रान्त दर्शनःस्वामि प्रसाद लब्ध विद्योदयः परिभू स्तिर स्कर्ता न्येषां स्वयंभू स्वबलेन भावयति सर्वमभीप्सि मिति स्वयं स्वामि भक्ति फलत्वेन लब्ध स्वातन्त्र्यः मनीषी मन साविचार शीलो याथा तथ्यतो यथार्थं व्यदधाद्विरचित वान् सर्वं स्वभोग्यं स्वाम्यनु ग्रहादिति भावः १७

माहेश्वर मते सपरमात्मा पर्यगा द्रष्टव्यापतो ऽद्रष्टं पर्यालो चयितुं शुक्रं शुक्रान्तं यद्वा शुक्लं वर्यातिमंय ज्ञानवपुः अकायमव

प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक शाम्भव मत में इस का यह अर्थ होगा कि वो शिव शक्त्यात्मा जानता हुआ याने सोहं भैरव ऐसी प्रत्यभिज्ञा को (प्रत्यक्ष यद्दाद्वत) प्राप्त हुआ जोनित्य संविन्मत्व बलवत् स्पन्द रूप भैरव बल वाला या प्रकाश रूप है वा शाम्भवोपाय प्रकाश में प्रतीत होता है

स्पन्दकाय को नित्य संविन्मय होने से तादात्म्यसे कारण अवस्थः में सूक्ष्मता पति होता है वही उस से रहित अवस्था होती है उपद्रव रहित है स्नावादि स्पन्द से अतीत है शुद्धनाम अनन्त कल्याण गुण वाला है और निर्दोष है सर्वज्ञ व्यापकज्ञान वाला (पूर्वार्धमेप्रत्य भिज्ञेय वराद्धं में ज्ञाता भूतपूर्व भेदानुवाद से जितलाया) भय का जीतने वाला अपने आपही सबप्रकार के स्पन्द से सब प्रकार होने वाला रच लेताहै संपादनकर लेता है अपने से अभिन्न हो गूढा गूढ शिव शक्ति लिङ्गो को चिर काल तक अपनी भक्ति मर्यादा शक्ति पूजा औरतज्जनित काम्य नित्य प्रयागों को सिद्धि आदिरगैहक फल और आमुष्मिक

कथा कौत योरायो यस्मांद्विष्णूत्पत्तिद्वारा ब्रह्मणो रुद्रादकम ब्रणं अवसीत्य व्रणवते इति अथवा छागव रपूजन समये बाहे श्रैरंग् इति मुख शब्द करणात् रणरक्षक मिलि वाराजदन्त त्वा स्पर निपातो उद्भ्रष्टानु सारिन्यायकारि स्वाद्विवा दृशान्तेरिति भाव: यद्वानिं दु:खम् अस्नाविर मस्नायुअस्नालोवाआविरम् रल यो:सावर्ण्या दाखिलं त्रिपवण स्नान मन्तरार्थं वितुम शक्यम् यद्वा अस्ना सविष्णु पूजकः स्नानकारयिता स्य हरि पूज्यं भूतेषु आविरम् आवि भूंतमम् गमनंयस्य तथोभूतंआसनल्ल विशेषण रमर्थं वायस्यतं भूतराजंतभूतयोनिं परि पश्यन्ति धीरा इत्येनेन



परलोक सुखादि के लिये १८

शाक्त मतमें वह शक्तिरूप परमात्मा शुद्ध अर्थात् जलदी ही कूम काय याने कूम से पुत्रादि वंशका हेतु अथवा शिवविष्णु ब्रह्म रुद्रादि सृष्टि का हेतु देह सभ स्त्री रूप या देवी रूप या व्याप्त करने लायक सकल सांसारिक रूप देह को आत्मा वैपुत्र नामासि आत्मा हो पुत्र है ऐसी भावना के लायक भिन्न २ देह को प्राप्त किया।

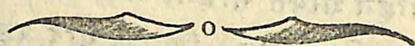
जो देह दु:ख रहितहै अथवा कूम कायमा याने कूमसेपैदा होने वाले याने पुत्र परम्परा व्रण याने भगछिद्रमें दंढं करपैदाश होती है (इस से वो देह धारण स्फुट हुआ अविष्णु आदिजिस को स्नानादि शक्ति पूजा में तत्पर रहते हैं शुद्धअनन्त कल्याण गुणवाली यन्त्र मन्त्र योनि पूजादि से शुद्ध स्वरूप वाली देवी परमात्मा पाप रहित निर्दोष कविः सर्वज्ञ विचार करने वाली अथवा गर्भ धारणा कणरत्यासनादि काम शास्त्र औरशक्तिपूजा में ध्यान भङ्गादि नहोना इससे शिक्षितरूप अथवा सभ जगत्

संवादात् यद्वाऽस्ति सूक्ष्म देह स्वात्लिङ्गात्म स्वाद्वावतार समर्थे ऽहनाविरं कादा चित्क देहवन्तम् शुद्धमनन्त कल्याण गुणमपाप विद्ध निर्दोष स्वरूपं कविरसौकृान्त दर्शनः सर्वा दृष्टष्ठि मनीषी बुद्धयलीता करणात्सकल मनीषा संबन्धी परिभूःसर्वोत्कृष्टत्वात् स्वयं भूस्स्वयमेव सर्व जगन्मयः संपद्यते इति तथा याथातथ्यातो यथार्थ मेवन स्वाग्रहा दन्यथा वैषम्यनैघृ ण्यदो षापत्तेः अर्थं सांसारिकान् भक्त्यादि फलभूतान् व्यदधा द्विरचितवान् शाश्वती भ्यस्सम माभ्यश्चिर मित्यर्थः इति भावः १८

भृत्य भिक्षा दर्शन मते सशिव भक्त्यात्मापर्यगात् परिगत

ही को प्रिय मोहन शक्ति मोहनी अवतार आदि अथवा सभ की धारणा रूप बुद्धि स्वरूप (जिस में याद रहता है) चण्डी में भी लिखा है मेधासि देवि विदिता खिल शास्त्र सारात् ही देवी मेधा रूपसंपूर्ण शास्त्रों को सार जान ली गई वो देवी परमात्मा तिरस्कार करने वाली भक्तके साथ द्वेष करनेवालों को अपने ही व्याप्त हो जाती है सभ जगह गूढ लिङ्ग होती है स्त्री रूप से यथार्थ ही रचलेती है अपनेप्राप्य भोगोंको और सृष्टि काल में सांसारि को को भी अथवा उस शुद्ध निंदोषरूप कामना रूप से काली आदि रूप धारण करती और लक्ष्मी सक बनने वाली बिष्णु आदिभी जिसकी पूजा करने वालेहैं निंदुःख निष्पाप उस देवी को प्राप्त होने वाला कवि याने पण्डित स्वयंभू अपने आप से काली दास आदि की तरह होजाता है तिरस्कर्ता वादिओं का शिघ्र ही होता है नाना पदार्थ रचकर भोग संपादन करता है कविता की अपूर्व सृष्टि को रचता ही है याथातथ्यत इस में झूठ नही

वान् सोहं मिति प्रत्यभिज्ञानं शुक् प्रकाश रूपक माणवशास्त्रभावो पाय प्रकाश लब्धंधा नित्य संविन्मयं अकायं कायेन स्पन्दात्म केनता दात्मस्पन्दकावस्था अवस्थायां तद्रहितं कारणे कार्यस्य सूक्ष्म तावस्तेः अत्रणं निरवद्यं अशुद्धमनघोपद्रव सामान्यस्पन्द रहित लक्षणात् अस्नाविरम् स्नावादि स्पन्दातीतं परम कारण त्वात् शुद्धमनन्त कल्याण गुणम पाप विद्धं निर्दोषं कविः क्रान्त दर्शनः परिभूः सर्व परि भवशीलः स्वयंभूः स्वयमेव सकल स्पन्देन सर्व विधभवन शीलः याथा तथ्यतः व्यदधा द्विरचितवान् अर्थात् सर्वान्स्वात्मक शिवशक्त्यात्म गूढा गूढलिङ्गान् शाश्वतीभ्य स्व माभ्ययिर नित्यर्थः १९



साहित्य मत में इस का यह अर्थ होगा कि रसरूप परमात्मा शुक् याने शुक्ल (रस एक भी माने जाते हैं) ज्योतिर्मय प्रकाश रूप आस्वाद रूप (क)ब्रह्मा की सृष्टि से विलक्षण कवि कल्पना के अलौकिक विभावादि काय से बना है असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य होनेसे निरन्तर है प्राण पर्य है अथवा भगवान् का ही स्नावयत प्राण धार है यान काव्य पाश्चवे के चिद्गीत काव्य खिला निच शब्द मूर्त्ति धरस्यैते विष्णो रंशा महात्मन जितने काव्य शब्द हैं और जितने गीत हैं शब्द मूर्ति भगवान् के सभ अश ही हैं यदि भगवद्भक्ति गाथा संयुक्त हों तो क्या ही बात है अथवा विष्णु होकर स्नाव तुल्य रस पूर्ति भावाला याने उसके अनुकूल वर्ण रूप काव्य का प्राणाधायक आत्मस्था नाप्रम शब्दार्थौ शरीरं रस आत्मा गुणः कटकादिवत् दोषाः काणत्वादिवत् रीतयोऽवयवव संस्थानविशेषवत् शब्द शास्त्रार्थशरीर काव्य का आत्मा रस है गहनों की तरह गुणदोष अन्धत्वादि

शाक्त मते सपरमात्मा शक्ति रूपः शुभाशु कम का य शिव विष्णु ब्रह्म रुद्रादिकं पर्यगात् प्राप्तवान् कमणी यमाकूम णीयं सर्वमातृभूतं स्त्रीरूपं वाकूमिक पुत्रादि वंशपरम्परारूप कायं वाप्राप्तवान् आत्मा वैजायते पुत्र इति संवादात् अव्रणं निर्दु संयद्वाकूम कायेनमहाविद्यादशकस्वरूपंयद्वाकूमकायंमातिप रिच्छिनतितथाभूतपुत्रपरम्य रामातृव्रणं छिद्र योनिरूपंपयगात्प रिगच्छतिअस्ना अविष्णुस्नाता पूजकोस्या उन्तर्भावि तण्यर्थ शुद्धं अनन्त कल्याण गुणं यन्त्रादिकतन्मन्त्र शोधित रूपंवाऽपाप विद्धं निर्दोषं कविः क्रान्त दर्शनः सर्वज्ञः मनीषी विचार्य कारी

———:o:———

की तरह उत्कर्षापकर्ष हेतु है रीति अवयव रचना के तुल्य है ऐसा काव्य प्रकाश कार भी मानते हैं

शुद्ध याने स्वच्छसत्व गुण के बढने से प्रतीत होता है अगर कहीं रत्यादि में कुछ पाप शङ्का है भी तो लौकिकमें ही अलौकिक में तो कुछ नही जो कवि पण्डित उस रस को सहृदय मात्रवेद्य को पायचुका है वो सामान्य कवि नही मनीषी अर्थात् विशेषव्यङ्ग्यार्थ भाव निपुण है परिभू संपूर्ण लोक शोकके दूर करने में समर्थ है क्यों कि रस तो निरन्तरऽनन्द मय है उसमें शोक कहां औरस्वयंभू अपने ही रस होने वाला है अर्थात् कविद्रष्टा का आत्मा ही तो रस है अपनेसे रामादि का भेदा भेदादि व्या मोवपूर्व के साधारणीकरण व्यापार से ही अपने में रहने वाले रत्यादि ही रस हो कर आस्वाद और उस के विषय होते हैं यथार्थ ही प्रतिभा से ही रस के पैदा करने ~ समर्थ अर्थों को फिर काल रचता रहता है २१

स

दीश्वर लक्षण बलीवावत् मनः प्रियं सर्वस्य जगतो वा बुद्धिरूपं वामेवामि देविविद्दिता भिल शास्त्र सारेत्या दिशंवावात् परि भूरितारस्कर्मा मत्त विद्वेविद्यां स्वयमेव भवति सर्व व्याप्त्योव भोग योग्य गूढ गूढलिङ्ग भक्ति फलदान कालेवक्ष्यमेवर्थभवति विश्वो रूपमिवविश्वयःसमस्ताःसकला जगत्सु इतिमार्कण्डेयस्मृतेः पुनाकालेव्वाथा तथ्यतोयथार्थं व्यवच्छा श्रतीश्यःसमाश्यर्म्विरम प्राप्यानुभोगान् सांसारिकान् वासृष्टि काले इति भावः १०

साहित्यमते सरसःपरमात्मा शुक्लं शुक्लं ज्योतिर्मयं प्रकाश इतक निति वावत आस्वाद मात्रात्म कत्वादिति भावः आकाय

अब यहां समीक्षा करनी चाहिये इन सभ मतोंका एक ही वस्तु में पूर्वोक्त विकल्प संमुच्चया सभव दोष रहेंगे सायुज्यादि मुक्ति के भेदमें भीवद्ध मोक्ष व्यवस्था नही होगी कर्म में सायुज्य तक विश्रान्ति एक वाक्यता करने में शङ्करा चार्य को साथ मिला कर एक वाक्यता करनेमें शङ्करा चार्य की मुक्तिमें विश्रा- न्ति ठहरे गी नही तो परम मुक्तिका भी उस के साथ विरोध होगा भिन्न विषय होने से इन का पूर्वोत्तरपक्ष भावभी नही तो निर्विशेष पर्यवसान ही ठीक हो गा और सभ तारतम्य से हुई मुक्ति अवर्गोर भक्ति का फल रूप विशिष्ट सगुणांश से हैं निर्गुण स्वतो परस्पर विरोध से हेयकोटि का है इस से धर्मादि विशिष्ट तद्भिन्न शुद्ध के साथ भक्ति फल मुक्ति कर्म के माया तीत निर्विशेष होना यह निर्विशेष पर्यवसा यि शुद्धा द्वितिय चिन्मात्र वादि समीक्षक का हरि भेरवादि का साक्षिध्य ध्यान भेदों से मिथ्या अनन्दानु भव कर क्या

अस्य स्वप्त्यनन्तर्गतम लौकिककविप्रतिभा निर्माण कार्यत्वात् अव्रणम च्छिद्रम संलक्ष्य कृत ऽयक्तुत रूप त्वात् नत्ना विक्रपा णाधिक प्रिय त्वात्पोण नाटी वदितरत् अंत्तहरिणा कीर्त्यमा नेनवा स्नाविरम् तज्जीवनंछिणो रंशा महात्मन इत्युक्तेश्च स्नाञ्चाः काव्यस्य प्राण वाहिन्यो रसात्मिक प्रतिभाश्रवणां स्तद्वर्दिति शुद्धं स्वच्छ स्तत्र समुद्रेकभवंस पाप विद्धम लौकिक काव्यदृश्य दर्शन श्रवण जायमान स्वाद रूपस्य पापा संगात् कविः पण्डितः जीवो यस्तं पर्यगात् सहृदयक श्रिवर वेद्यम् नसा मान्य कवि यितुर्मनीषी विशेष व्यङ्गयार्थ भावन निपुणतमः परिभूः सकलस्य शोक कला पश्यनिरन्तरा नन्दमय रसमय त्वा त्स्वयंभूः स्वात्मैव छिरसः स्वयमेव वाकवि कीर्त्यमान रामाद्य भेदेनैवा लक्ष्मणादि कर्मालक्ष्य रसोत्पत्तेः याथा तथ्यतः यथार्थ स्वजन क्षमार्थान् शाश्वतीभ्यः समाभ्यश्चिर निविभावः २१

अत्रेदं समीक्षित व्यंयदेवा वास्तुनि भेदेऽभेद चन्द्रियादे पूर्वमुक्त मेव दूषणम् सायुज्यादि मुक्तावपि फले भेदेवद्ध मुक्त

मायातीत निषेधा धिष्ठान निर्विशेष होते हुएका होना मुक्ति है यह मत है इस में इस मन्त्र का अर्थ है शुद्ध प्रकाश रूप अथवा शुक्ल यान सात्विक धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य विशिष्ट होने स बहुत प्रकार की सामर्थ्य वाला अदुःख भगवान् कृष्णादि हरि भैरव देहधारि अथवा उनक स्वरूप अथवा सर्वदा होने से निर्विशेष भाव का होना उस में व्रण काय स्वावादि मिथ्या पदार्थ का निषध मात्र ही है

लेशा विद्या से जीवन्मुक्ति काल में भी निर्विषय मान रूप स्थित स्थल सूक्ष्म कायादिका भी निषधाधिष्ठान होने से कारण

व्यवस्थानन्दादतः परम मुक्ति मादायेति भावाख्या अत्रापि शाङ्कर मुक्तितो मदीय सायुज्य मुक्तेरपि भेदाद्विरोधः स्या-दतः सायुज्यादी नामितरेषां सर्वेषां निर्विशेषैक्य रूपा नित्य मुक्ति रङ्गरीयसी अन्यथा केवल शब्दस्य निर्विशेषे शब्दाद्युपपा दयितुम शक्यत्वात् अन्या मुक्तयो दुःखपूहाभावे क्षयोक्त मा

इति निर्विश शुद्धा द्वितीयं चिन्मात्र पेक्षया शुक्ल प्रकाश रूपं विशेषणा पेक्षया शुक्लं भैरव शिव गणपादि सात्विक धर्म ज्ञान वैराग्यै श्वर्यादि विशिष्ट सयाधि विधसामर्थ्यं शत् अकायम व्रणं चनिर्दुःख कृष्णा कायं हरि सद्रूपं चिन्मात्र रूप तया रसार्वं दिकौया एवसप्तम भूमिका प्राप्त्युत्तर संभाव्य मान कायं वात दानीन्ना व्रणं प्रति योगितया ऽपिमुख दुःखा भावत ।

अहता चिरं मध्या व्यमान परम मुक्ति काले काय व्रण स्नाव रूप स्थूल सूक्ष्म शरीर बाधा धिकरणं चपरमार्थं सोलशा विद्यया प्रति योगित यातद्भम काले ऽपि शुद्धं च कारण शरीर स्यापि बाध प्रति योगितया भासमान स्यापिबाधा धिकरणत्वा

शरीर का भी बाध सामानाधि करण का निषेधाधिष्ठान होने शुद्ध विशेषणांश में धर्म ऐश्वर्य होने से विशेष्यांशमें ज्ञान वैराग्य भाव होने से तदुपरक्त सात्विक वृत्ति द्वारा विशेष्य वृत्तिअसक्ति रूप वैराग्य प्रति चिन्ह मात्र ज्ञान का विशेषण में भी मिथ्य होने से निर्विशेष शुद्ध द्वितीय रसा से पाप रहितअधर्मअज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य के हाले हुए विशेषण में भी निषेधाधिष्ठान निर्विशेष में विशेषण में परमात्म विशेषण शुद्ध के अभेद प्रत्य भिज्ञा होने से घट जाने से अधर्मादि रहित उस रूप को प्राप्त

चनिर्विशेष शुद्धा द्वितीयंच धर्मादि भिन्नमलै रेवोढुम् विचाव अधर्मा ज्ञाना वैराग्यौ नैश्वर्यं रूपलाम सकोटि रहितम् पर्यंवा दसीदीक्षितो जीव. कवि: पण्डित: मनीषी विचारशालीपरित स्तिरास्कर्त्ता ऽन्येषां स्वयंभू स्स्वयमेव तत्तद्भाव विशिष्ट प्रत्व भिज्ञावान् बाधित तत्तद्भावैरेव सर्वदाजीवान् पूजादि सकल भाव योग्य स्वदेव लोकच नाना विधत तत्तद्देवता भक्ति समासादित देवी प्रसाद लब्ध पारमैश्वर्यं लीला विग्रहेण सकला नन्द भोक्ता स्वयमेव भवतितथा याथा तथ्यतो ऽर्थान् व्यदधाद् बिरचितवान्भोग्यान् अर्थान् शाश्वती: समाभ्यिरम् इति भावो मातृपक्षी यार्थर सहित: २२ ॥

होता होगा भी हुआ भी दीक्षित जीव कवि और विचार शील पण्डित तिरस्कर्ता सब का अपने से ही नाना देव भाव की प्रत्यभिज्ञा वाला बाधित उस भाव से ले शाविद्या विष्ट रूप से जीता हुआ भी पूजादि सकल भाव के योग्य लोक और देव लोक में भी नाना विध देवता भक्ति प्रसादसे लब्ध परमैश्वर्य लीला देह से सब प्रकार के आनन्द भोगने वाला स्वयं ही होता है और अपन भोग्यों को पैदा कर सकता है औ शक्ति रचित अर्थों को भी रस स्वाद करसकता है इस से शाक्त और साहित्य और प्रत्यभिज्ञाके साथ मिला दिया गया यहीसमीक्षा का सर्व सार अर्थ हुआ २२

इति शुभम्